साहित्य दर्शन

प्रथम भाग

शचीरानी गुर्टू
एम० ए०

सन् १९५० ई०

मुद्रक
नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स, दिल्ली

'साहित्य-दर्शन' पर एक दृष्टि

डॉक्टर जी० एस० महाजनी एम० ए०, पी-एच० डी०

(कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी)

(वाइस-चांसलर—राजपूताना यूनिवर्सिटी)

साहित्य-दर्शन by गवारानी गुर्टू affords us a peep into the field of literature which covers a wide sector of space and time It is an ambitious theme and may, with justice, be compared with Prof Allardyce Nicol's 'World Drama' published last year Every work of wide general scope—whether it be a universal history of events or of literature—must select definite orientation, and it is necessary for the reader to know it for a correct appraisal of that work Prof Nicol, for *instance* takes us into his confidence by frankly announcing that he felt most interested in the development of the Western theatre from its earliest known days in Greece to its latest manifestations in the playhouses with which we are currently familiar For his treatment of the subject, therefore, the focal point was the theatre of the West and all other issues depended upon this fact What is the focal-point in साहित्य-दर्शन ?

Barring the opening section devoted to a discussion of the great epic writers of the world (वाल्मीकि, वेदव्यास होमर, वर्जिल, दान्ते) and the chapter in which we are treated to a review of some writers of historical novels (e *g* Victor Hugo, Alaxander Dumas, Sir Walter Scott, Bankim Chandra, Rahul Sankrityayan, VrindavanLal Varma, Rakhaldas Bandyopadhya, Shri Laxminarsinham, K M Munshi and H N Apte)—barring these two almost every other chapter examines a pair of literary figures and refers to their main works The principle of pairing these writers often widely separated, should indicate the vantage-ground from which the authoress takes the peep And it is interesting to share her own

thoughts first, as she moves her glasses from pair to pair, in several directions :—

(i) Re तुलसीदास and Milton :
यद्यपि दो महाकवियो की प्रवृत्ति कभी एक-सी नही होती...तथापि वस्तु भिन्न होते हुए भी आत्मा एक होती है।..(p. 32)

(ii) टॉलस्टॉय की भाति रवीन्द्रनाथ ने भी 'मेरे बचपन के दिन' नामक पुस्तक मे अपनी बाल्यावस्था के मोहक चित्र खीचे हैं। (p. 56)....इन दोनो कलाकारों के जीवन में ऐसा समय भी आया जब दु:ख और निराशा ने उन्हे आच्छन्न कर लिया। (p. 61)

(iii) Re Gandhi and Romain Rolland ;
यद्यपि दोनो का कार्यक्षेत्र भिन्न था....तथापि दोनो का उद्देश्य एक था, लक्ष्य एक, विचार-धारा की दिशा और दृष्टिकोण का केन्द्रबिंदु एक। दोनों ने ही मानवता, सत्य, शान्ति, प्रेम और अहिंसा का पुनीत संदेश दिया था (p. 73)

(iv) प्रेमचन्द और गोर्की—दोनों ही कलाकारो की यह विशेषता है कि उन्होंने अपने अपने देश के कथा-साहित्य को परिपुष्ट किया, उसे अग्रगामी बनाया और उसमे जीवन फूंका।....प्रेमचन्द के 'गोदान' और गोर्की के प्रख्यात उपन्यास 'मां' (Mother) मे बहुत कुछ साम्य है (pp. 100-101)
प्रेमचन्द और गोर्की दोनों ही यथार्थवादी कलाकार हैं (p.103)

(v) Re निराला and Browning:
हमे तो पूर्व और पश्चिम के इन महान् कलाकारो के स्वभावों में भी आश्चर्यजनक समानता दृष्टिगत होती है (p.148)

(vi) Re Shelley and पंत :
हम यह स्पष्ट कर देना चाहते है कि 'पल्लव' और 'प्रोमिथिअस अन्बाऊंड' में कथा-साम्य न होकर इन कवियों की अंतर्मुखी वृत्तियों का साम्य है (p.169)

(vii) गुप्तजी और Robert Burns के काव्य और उनकी प्रेरक मूल शक्तियों के इतने दिग्दर्शन से यही निष्कर्ष निकलता है कि ये दोनो सच्चे कलाकार है और अपने विचारों को, बिना किसी

अन्तर्शक्ति को सरल भाषा में ज्यों का त्यों प्रकट कर देते हैं। (p 196)

(viii) निस्सन्देह रामचन्द्र शुक्ल और Matthew Arnold ने अपने लेखों में यह प्रमाणित कर दिया कि साहित्यकार परिस्थितियों की देन नहीं, वरन् उसका शक्तिशाली व्यक्तित्व साहित्य में नवीन चेतना उत्पन्न कर देने वाला और परिस्थितियों को अभीष्ट दिशा में उन्मुख कर देने वाला होता है यद्यपि इसका भान उस समय बहुत कम लोगों को हो पाता है। (p 204)

(ix) वैष्णव और पाश्चात्य की साधना का ध्येय गम्भीर और समस्त मानवता की आन्तरिक जागरूकता का प्राणवान सन्देश देना है। (p 255)

(x) Elliot आस्तिक मनस्वी व अज्ञेय नास्तिक आत्मार्थी, दोनों समाज की वर्तमान् स्वभावरोधी विषमताओं से परिचित होकर भी रूढ़िवादी विचारधारा के पोषक हैं। दोनों ही व्यष्टि से समष्टि और पुनः समष्टि से व्यष्टि की ओर उन्मुख हैं। दोनों में आत्मवृत्त के प्रक्षेपण की वृत्ति है। (p 278)

(xi) जैनेन्द्र और Meredith में जो मनोरोगों की परिणति दृष्टव्य है वह गम्भीर आत्मचिन्तन का परिणाम है। विपरीत परिस्थितियों से आहत और अतिशय स्वचिन्तन से श्रान्त वाञ्छित अभिव्यक्ति के अभाव में उनका तीव्र राग मानसिक विराम में परिणत हो गया जिससे कभी कभी व्यंग्य का भीषण अट्टहास बज उठता है। (p 294)

(xii) उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो गया कि विश्व-साहित्य में विभिन्न उपन्यासकारों द्वारा अब तक अनेक ऐतिहासिक प्रयोग हुए हैं जो युगों की संस्कृति से किसी न किसी रूप में सम्बद्ध होकर उसकी धारा आगे बढ़ाते रहे हैं। वस्तुतः इतिहास संस्कृति और साहित्य का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध रहा है। (p 323)

(xiii) "डास्टावस्की ने जिस प्रकार अर्द्धविक्षिप्त, असन्तुलित और विकारी मस्तिष्कों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया ठीक उसी प्रकार शरच्चन्द्र ने भी जागरूक रह कर जीवन की गहराई को आँका और तत्कालीन बंगाल की प्राचीन परिपाटियों के विरुद्ध अपनी क्रियात्मक लेखनी

और निजी अनुभवों के बल पर विशेष टाइप के स्त्री-पुरुषों के अन्तर्भाव, राग-द्वेष के विविध मर्मस्पर्शी पहलू, आन्तरिक वैषम्य, विरोध, छलना, पतन आदि का अंतर्दर्शन कराया। (p. 334)

जिस प्रकार डॉस्टॉवस्की रूस का युग-निर्देशक कलाकार है, उसी प्रकार शरच्चन्द्र भी भारतीय-साहित्य की निर्बंध परम्परा के सजग प्रहरी हैं। दोनों ने ही जीवन-स्वरों के उत्तार-चढ़ाव का अनुभव किया है और वे स्वर उनकी आत्मा में प्रविष्ट होकर युगोच्छ्वास की मूर्त्त-अमूर्त्त जिज्ञासाओं और सूक्ष्म-मर्म-स्पन्दनों के रूप में उनके महान् कृतित्व में मुखर हो उठे हैं।" (p. 340)

(xiv) Re गेटे और प्रसाद—जैसे जल का बुदबुद नीचे से स्वत: ऊपर उठकर आता है, उसी प्रकार इन महाकवियों की अंतश्चेतना भी मन की गहराइयों से उतर कर ऊपर को झलक मारती है और विराट्-चेतना मे लीन हो उसी को व्यक्त करती हुई उसी मे समाहित हो जाती है—स्थूल-दृष्टि से दूर—न जाने कहां ? (p.128)

(xv) रवीन्द्र, पन्त और कीट्स तीनों ही पार्थिव में अपार्थिव प्रेम की व्यजना और वाह्य रूप-रंग में सौन्दर्यानुभवी अन्तरात्मा की सूक्ष्म अनुभूति कराना चाहते हैं। (p. 386)

(xvi) असाधारण व्यक्तियों की आन्तर-प्रेरणा मानवात्मा की शाश्वत पुकार है और उनका अमूर्त ससार भावाधिक्य मे आत्म-मर्यादा से अनुप्राणित होकर वाह्य गोचर मे बिम्बित हो उठता है। हार्डी और प्रसाद दोनों ही सापेक्षवादी द्वैत चिन्तक हैं और दोनों ने अनुभूति की अखण्ड एकरूपता का अविकारी आत्मा से असीमित सम्बन्ध जोड़ कर निर्पेक्षता मे सापेक्ष तत्त्वों को आरोपित किया है। (p. 389)

The above extracts unmistakably bring out the broad lesson sought to be conveyed. Despite the differences in environment, in manners, in cultures and civilizations, the human mind is cast in the same mould. The very opening sentence of the book is : चिरंतन काल से ही मानव-मन एक है (p. 3). On page 9 again we are told that: मानव-हृदय सभी देशों में एक-सा है। It is clear that the ear of the authoress is tuned to receive

concords, and her vision focussed to pick out semblances

Any such essay must be of the nature of a glimpse. Another author—*or* why even the same writer in a different mood—will conceivably give a variant presentation. There is, for example, no reason why Milton should not be included among the great epic writers of the world. Sufficient justification could be adduced to couple Gandhi with Tolstoy rather than with Romain Rolland. We know also that critics have been struck by the parallelism of Kalidas's Shakuntala with the heroine in Goethe's '*Werthers Leiden*' (rather than with that of Shakespeare's *Tempest*). But then the fact is that there can be no last word on such a vast subject as world-literature.

In the physical world, we are informed, the 100-inch telescope at Mount Wilson which enables astronomers to have a peep into the depths of the universe (beyond the Milky Way), reveals that—" the nebulae are found singly, in groups and in clusters but on the grand scale these local irregularities average out and the observable region *is approximately homogeneous*" (Italics mine). Very similar, and strikingly similar, is the picture of the homogeneity of the human mind through all times and climes, that the authoress presents. She deserves our warm felicitations for having accomplished a great task with credit,—and our sincere gratitude for having incidentally enriched the Hindi literature.

Jaipur
28th Oct. 1950

G. S. Mahajani

भूमिका लेखक
डॉक्टर वेस्टन मेकडानियल, डी० लिट०
न्यूयॉर्क (अमेरिका)

Preface

With man's ... for ... world ever renewing itself it is indeed a very significant ... that a critical study of world literature ... come from the pen of this distinguished author ... who has ... in memorable terms ... comprehensive analysis of the dynamic and progressive trends ... literary thought. Although this volume is written by an extremely careful observer it is highlighted with a warm glow of enthusiasm, the spiritual integrity of a sensitive artist. What she has to say she states effectively for hers is the supreme gift to write deftly with clarity, fidelity, and charm. She speaks with the boldness of one who is acutely aware of a changing world which reflects its triumphs through the creative efforts of its inhabitants. Hers is the sure eye, the appraising eye which evaluates accurately even prophetically moving panorama of world expression. Hers is the touch of one whose fingers rest upon the throbbing pulse of a world that is aching to redeem itself. And she has recorded these as attitudes and aspirations of a new Man with compassion and tenderness.

We welcome such a monumental work. We rejoice ... there is at last the possibility for a fair exchange of the ... cultures, the essential idealism reflected through the various contributions of world authors. Surely such a work merited by foresight and wisdom will lead eventually to universal understanding among the peoples of every race, creed, color and national origin.

Weston McDaniel

April 8, 1950

122 East 62nd Street
NEW YORK 21, N.Y., U.S.A.

भूमिका

जहां एक ओर मानव का 'एक विश्व' का स्वप्न नित-नए रूप में व्यक्त हो रहा है, वहां—निःसन्देह, यह एक महत्त्वपूर्ण घटना है कि विश्व साहित्य का विवेचनात्मक अध्ययन प्रख्यात लेखिका श्रीमती शचीरानी गुर्टू की लेखनी से प्रस्तुत किया जा रहा है, जिन्होने आधुनिक साहित्यिक विचारों की प्राणवान और प्रगतिशील प्रवृत्तियो का विश्लेषण स्मरणीय शब्दों मे गुम्फित किया है। यद्यपि यह ग्रन्थ एक बहुत ही सजग प्रेक्षक द्वारा लिखा गया है,—तथापि इसमें उत्साह का ज्वलत तेज और एक भावुक कलाकार की आध्यात्मिक-दीप्ति अन्तर्निहित है। इनके द्वारा जो कुछ भी प्रतिपादित हुआ है—वह कार्य-साधन की प्रणाली को दृष्टि मे रखकर ही किया गया है, क्योकि स्वच्छता, विश्वसनीय एवं आकर्षक पद्धति के साथ साथ लिखने की महती कला-दक्षता से ये अवगत है। इनकी वाणी में वह ओज है, जो अपने देश-वासियो की सृजनात्मक प्रतिभा को प्रतिबिम्बित करने वाली विश्व की परिवर्त्तित परिस्थितियो एवं सफलताओ की तीव्र अनुभूति कराती है। इनमें स्थिर दृष्टि है, सही मूल्याकन करने वाली दृष्टि, जो भविष्यद्रष्टा-सी विश्व-अभिव्यक्ति के गतिशील दृश्य-चित्रों का यथार्थ अंकन करती है। मुक्ति के लिए चिर-पीड़ित ससार की धड़कती हुई नाड़ी पर धरी गई अगुलियों का-सा इनका स्पर्श है—और नए मानव की विशेष प्रवृत्तियों एवं महत्त्वाकाक्षाओं को इन्होने करुणा एवं कोमलता से लेखनीवद्ध किया है।

हम ऐसे स्मारक-ग्रन्थ का अभिनन्दन करते है। यह हर्ष का विषय है कि विश्व-लेखकों की कतिपय रचनाओं द्वारा विम्बित मौलिक आदर्श को समाविष्ट करके अन्ततः विभिन्न राज-संस्कृतियो के समुचित विनिमय की संभावना तो पैदा हुई। निश्चय ही, दूरदर्शिता और विवेकपूर्वक लिखी गई यह कृति प्रत्येक जाति, समुदाय वर्ण और स्वदेशाभिमानी जनता को सार्वभौम सद्भावना की ओर अग्रसर करेगी।

१२२ ईस्ट ६२ स्ट्रीट
न्यूयॉर्क २१, एन. वाई., यू. एस. ए.
८ अप्रेल, ५० ई०

वेस्टन मेकडानियल

[अंग्रेजी से अनुवाद]

निवेदन

विभिन्न भाषाओं के साहित्यकारों की समीक्षात्मक तुलना दायित्वपूर्ण कार्य होते हुए भी आज के युग की प्रगति को लक्ष्य में रखकर उपादेय हो सकती है। प्रस्तुत पुस्तक में विभिन्न कलाकारों के कृतित्व का नाप तोल नहीं, वरन् प्रवृत्तियों की तुलना है। मैंने अपनी ओर से निष्पक्ष होकर यथार्थ मूल्यांकन की चेष्टा की है किन्तु अपने इस प्रयत्न में मैं कितनी सफल हो सकी हूँ—इसका निर्णय तो विज्ञ पाठक ही करेंगे।

पुस्तक की कलेवर-वृद्धि के कारण पहले अंग्रेजी उद्धरण देने का विचार न था किन्तु बाद में इसकी आवश्यकता समझी गई। आरम्भ के कुछ लेखों में जो अंग्रेजी उद्धरण छूट गए हैं—उन्हें अगले संस्करण में देने का प्रयत्न किया जाएगा।

विश्व विख्यात कवि, कलाकार और समीक्षक यूरोप निवासी शेक्सपियर मेकडानियल ने साहित्य-दर्शन की भूमिका लिखने की कृपा की, इसके लिए मैं कृतज्ञ हूँ।

एक और बात—जिसे लिखने की यहाँ आवश्यकता तो नहीं किन्तु जिसके बिना मैं अपने इस साहित्यिक प्रयास को अधूरा ही मानूँगी। 'साहित्य दर्शन' को लिखने की प्रेरणा बाहरी नहीं, भीतरी है। इसको समाप्त करने में भगवत्प्रेरणा ही मेरा सम्बल रही है। मेरी अन्तरंग अन्तःचिन्तना आज साहित्य साधना में परिणत होकर प्रकट हो रही है—यह मेरे लिए आत्म-तोष का विषय है।

७/२३, दरियागंज, दिल्ली
शरद् पूर्णिमा, २००३ सम्वत्

शचीरानी गुर्टू

विषय-सूची

विश्व के महाकाव्यकार

(बाल्मीकि, वेद व्यास, होमर, वर्जिल, दान्ते)

काव्य में 'शाश्वत सत्य' की छाप उसकी अमरता की सर्वश्रेष्ठ कसौटी है। आज से सहस्त्रों वर्ष पूर्व उत्पन्न साहित्य के आदिगुरु वाल्मीकि, व्यास, होमर, वर्जिल, दांते आदि महाकवियों की विराट् कल्पना अब भी मानव की हृत्तन्त्री के तार क्यों झकृत कर देती है, उत्तर एक है—सत्काव्य की भाषा अनन्त के मूक संदेश की वाहिका है जो सृष्टि के पृष्ठों पर रंगीन पेंसिल से अंकित है। विश्व-कवि टैगोर के शब्दों मे "हम उनकी ओर से आंखें नही मूद सकते, मानो हमें सम्बोधित करते हुए वे हठात् कह उठते है "देखो, यह हम हैं" और हमारा मस्तिष्क बिना यह प्रश्न किए हुए कि 'तुम यहां क्यों हो' उनके अस्तित्व के सम्मुख मस्तक झुका देता है।"

चिरंतन काल से ही मानव-हृदय एक-सा चला आया है। सत्काव्य में कवि की बाह्य एवं आन्तरिक अनुभूतियों का प्रकाश और सौंदर्य-शास्त्र की कसौटी पर उसके आकार-प्रकार एवं रूप-राशि का निराकार रूप, इसके अतिरिक्त उसके व्यक्तिगत सम्बन्धों की सकुंचित परिधि से ऊपर उठ कर लोक-सामान्य भाव-भूमि का स्पर्श, साथ ही दृश्य जगत् के नाना रूपों और व्यापारों के साथ उसके प्रकृत सम्बन्ध का सौन्दर्य-दर्शन और इस सौंदर्य-लोक में मनोविकारों का परिष्कार तथा जगत् के साथ हमारे रागात्मक सम्बन्ध की रक्षा और निर्वाह - युग युग से मानव को अपनी ओर आकृष्ट करते आये है। वह निस्सीम ज्ञान के दिव्य प्रकाश में, कवि-चिंतन के सार्वभौम सत्य में खोया हुआ-सा मनोमुग्ध दृष्टि से निहारता रह जाता है और तभी उसके हृदय के तार सहसा झनझना उठते हैं।

महाकाव्य की व्याख्या

महाकाव्य की परिधि अत्यंत विस्तृत है। उसकी कथा किसी व्यक्ति-विशेष की नहीं, वरन् व्यक्तित्व की होती है। उसमें किसी एक मानव का नही, वरन् मान-

कथा का इतिहास, मानव जीवन की व्याख्या और मानवीय-मनोवेगों का स्वच्छन्द प्रवाह मिलता है। वह कवि की लोकोत्तर, शक्तिमयी कल्पना-शक्ति का दर्शन कराता विश्व भावनाओं को तरंगित करता और उसे दिव्य रस के प्रवाह में प्रवाहित करता है। महाकाव्य का उद्देश्य है - जीवन की घनीभूत, विस्तृत, निगूढ़ अनुभूतियों का अपने महाकलेवर में समेटे रहना और मानवीय-उच्चादर्शों को उद्भावित करना। साहित्य दर्पणकार आचार्य विश्वनाथ के अनुसार जो सर्गों में बंधा हुआ हो - वह महाकाव्य कहाता है। उसमें एक नायक होता है - जो देवता या उत्तम कुल का धीरोदात्त गुणों से युक्त क्षत्रिय हो। एक वंश के कई राजा भी नायक हो सकते हैं। शृंगार, वीर और शान्त रस में से कोई एक रस अंगी होता है अन्य रस गौण होते हैं। नाटक की सभी संधियां रहती हैं। उसकी कथा ऐतिहासिक अथवा लोक प्रसिद्ध महापुरुष की होती है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चतुर्वर्ग में से उसका एक फल दिखाया जाता है। आरंभ में मंगलाचरण या वर्ण्य विषय का निर्देश होता है। कहीं कहीं खलों की निंदा और सज्जनों की प्रशंसा होती है उसमें कमसे कम आठ सर्ग रहने आवश्यक हैं। प्रत्येक सर्ग में एक छंद ही होता है किन्तु सर्ग का अन्तिम पद्य भिन्न छंद का होता है यद्यपि कहीं कहीं इसका अपवाद भी दीख पड़ता है। सर्ग के अन्त में अगली कथा की सूचना भी होनी चाहिए। उसमें संध्या सूर्य, चन्द्रमा, रात्रि, प्रदोष अन्धकार, दिवस, प्रातःकाल, मध्याह्न मृगया पर्वत ऋतु वन, समुद्र, संयोग, वियोग स्वर्ग, नगर, यात्रा, संग्राम, अभ्युदय आदि विषयों का यथासंभव सांगोपांग वर्णन होना चाहिए। उसका नामकरण कवि अथवा चरित्र-नायक के आधार पर होना चाहिए। प्रायः स्वतन्त्र नाम भी देखे जाते हैं।

पश्चिमी काव्य शास्त्र के अनुसार महाकाव्य में कोई सच्ची ऐतिहासिक लोक प्रसिद्ध बृहद् कथा वर्णित होनी चाहिए वह कवि की कोरी मनगढ़न्त कल्पना न हो। हां, उसे अपने विचारों और आदर्शों के अनुसार वह कुछ परिवर्तित अवश्य कर सकता है। महाकाव्य का विषय महत्व-व्यंजक, उसके पात्र असाधारण और शौर्य-गुण-सम्पन्न तथा नायक कोई महापुरुष होना चाहिए। कवि के लिये आवश्यक है कि वह कथा के क्रम में पड़ कर उसकी इस प्रकार कलात्मक अभिव्यंजना करे कि उसमें एकसूत्रता और शालीनता दृष्टिगत हो। वर्णन-शैली और भावगत सौन्दर्य भी अपूर्व होना चाहिए। उसमें एक ही छन्द का प्रयोग होना चाहिए। कथाओं, उपकथाओं और रोचक प्रसंगों के अतिरिक्त उसमें देवी-देवताओं और नियति की भी प्रमुखता होती है। महाकाव्य की कथा किसी व्यक्ति-विशेष की न होकर जातीय भावना को प्रतिबिम्बित करती है।

ग्रीस के महाकवि होमर
'इलियड' और 'ओडेसी' महाकाव्यों
के रचयिता
(ई० सन् से ४५० वर्ष पूर्व)

★

इटली के महाकवि वर्जिल
'इनियड' महाकाव्य के रचयिता
(जन्म–ईसवी सन् से ७० वर्ष पूर्व.
मृत्यु–ईसवी सन् से १९ वर्ष पूर्व)

हमारे यहाँ 'अभिव्यक्ति-मार्ग' पर जोर दिया गया है - पश्चिम में 'कला-पक्ष' पर, किन्तु दोनों में आधारभूत समानता यह मिलती है कि महाकाव्य में वर्णित विषय का उचित परिपाक, व्यंजना की प्रधानता और उसकी रस प्रवाह होना चाहिए जिसमें उत्कृष्ट व्यंजना, काव्यत्व और महाकवित्व नहीं-वह आकार में बड़ा होने पर भी महाकाव्य कहलाने का अधिकारी नहीं है। महाकाव्य में जीवन-समष्टि की अमरपूत झाँकी, पार्थिव-कामना एवं चेष्टाओं का अवगान, सत्य सौन्दर्य एवं स्वातन्त्र्य का अनूठा सम्मिश्रण और बाह्य एवं अन्तर्जगत् को परिप्लावित करने वाली मंगलमयी निर्मल मन्दाकिनी निःसरित होती है, जिसमें अद्भुत श्री, अद्भुत कान्ति और सम्पूर्णता व्याप्त रहती है। निःसन्देह, ऐसे महाकाव्यों में ही विश्वात्मा सचरण करती है और उनका प्रभाव उनके अपने समय देश और जाति तक ही सीमित नहीं होता, वरन् उनके पीछे आने वाले युगों, इतर देशों, जातियों एवं सभ्यताओं पर भी अमिट रूप से अंकित होता चलता है। भारत में बाल्मीकि कृत 'रामायण' और वेद व्यास रचित 'महाभारत' ग्रीस में होमर कृत 'इलियड' और 'ओडेसी' इटली में वर्जिल रचित 'इनियड' और दान्ते की 'डिवाइन कामेडी' इसी कोटि के महाकाव्य हैं। ये महाकाव्य इतने विशद और विविधता से पूर्ण हैं कि इनमें लोक ज्ञान का अनन्त कोष भरा पड़ा है। ये जितने प्राचीन हैं उतने ही समृद्ध भी हैं साथ ही इनमें महाकवियों की विलक्षण और ईश्वर प्रदत्त प्रतिभा का चमत्कार भी दीख पड़ता है।

महाकाव्यों के वर्ण्य विषय

बाल्मीकिकृत रामायण में मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम की कथा विशद रूप से वर्णित है। इसमें इतिहास और कल्पना का सुन्दर सम्मिश्रण है। क्या लोक-पक्ष क्या अध्यात्म, दोनों ओर इसकी गूढ़ता, गंभीरता और सरसता महान् है। राम की सामान्य जीवन-दशाओं को सामने रख कर उन्होंने अपनी कल्पना के उत्कर्ष द्वारा साधारण जनता के हृदय में उनका आदर्श मानव रूप प्रतिष्ठित किया। काव्य की उदात्त-गंभीरता एवं दार्शनिक-पुष्टता लोकोत्तर और मनुष्य की कल्पना से परे है। कथाओं उपकथाओं और जीवन वृत्तों द्वारा मानव की विराट् शक्ति का दिग्दर्शन कराया गया है।

वेदव्यास ने कौरव-पाण्डवों के महायुद्ध की बृहत् कथा बड़ी क्षमता एवं कुशलता से चुन बिठाकर एक महागाथा के रूप में प्रस्तुत की। आरम्भ की कितनी ही ने

नाओं का अन्त में जा कर समाहार होता है और स्फुट कथाओं के अत्यन्त विस्तृत और अनूठे वर्णन इस सागर के भीतर लहरें मार रहे हैं। महाभारत में पार्थिव शक्ति की पराकाष्ठा के साथ साथ अलौकिक तत्व का समावेश भी है। कथा सृष्टि जटिल, परम्परा - प्राप्त और मंथर गति से आगे बढ़ती है, इसमें कर्तव्याकर्तव्य और धर्माधर्म का बहुत ही सूक्ष्म विवेचन है और ईश्वर, जीव, सृष्टि, ईश्वर-प्रेम, जगत् की निस्सारता आदि पर प्रकाश डाला गया है।

होमर का जगत् दूसरा है। उसके प्रसिद्ध महाकाव्य 'इलियड' में ग्रीस की पुरातन ऐतिहासिक 'ट्रोजन-वार' नामक युद्ध की कथा है। जिस प्रकार रामायण में सीता-हरण पर राम-रावण में भयंकर युद्ध छिड़ा था, महाभारत में द्रौपदी के अपमान से क्षुब्ध पांडवो ने कौरवो के अस्तित्व तक को मिटा दिया था, उसी प्रकार 'इलियड' में भी सुन्दरी हैलेन पर कई वर्षों तक ट्रोजन-महायुद्ध चलता रहा। शक्तिशाली ट्राय-नरेश के पुत्र पेरिस ने स्पार्टा के अधिपति मेनीलास की परमसुन्दरी पत्नी हेलेन का जबर्दस्ती अपहरण कर लिया था। इस पर क्रुद्ध हो कर मेनीलास ने ग्रीक राजाओं की सहायता से ट्राय पर आक्रमण कर दिया। भयंकर युद्ध हुआ। इस संग्राम में देवताओं ने भी भाग लिया। अन्त में सत्य की ही विजय हुई और हेलेन फिर अपने महलों में पधारी।

'ओडेसी' में इथेका के राजा यूलीसेस की रोचक यात्रा, मार्ग में अनेक विघ्न और दैवी-दुर्घटनाएं, उनके साहस पूर्ण वीरोचित कार्य, पत्नी-पुत्र से पुनर्मिलन आदि की कथा का सविस्तृत वर्णन किया गया है। यूलीसेस ट्रोजन की लड़ाई मे मेनीलास की ओर से शामिल हुआ था। ट्राय के पतनके वाद अन्य ग्रीक योद्धा तो अपने अपने घर वापिस चले आए, किन्तु यूलीसेस एक टापू में कोलिप्सो नामक अप्सरा द्वारा वन्दी वना लिया गया और कई वर्षो तक वही फंसा रहा। उसके अन्य साथी भी रास्ते में नष्ट भ्रष्ट हो गए। यूलीसेस की पतिव्रता पत्नी पेनीलोप ने अत्यन्त धैर्य और साहस से इन कठिन वर्षों को पार किया। काव्य के अन्त मे पति-पत्नी और पुत्र का सम्मिलन बड़ा ही सुखद और अपूर्व है।

'महाभारत और 'इलियड' दोनों महाकाव्य इतने विशद रूप मे आजकल मिलते है कि उनका एक ही व्यक्ति रचयिता होगा, इसमें सन्देह है। मूल काव्य से क्षेपकों का निकाल देना भी संभव नही। इसी प्रकार वाल्मीकि-कृत रामायण

का प्रचार गा कर हुआ था और 'ओडेसी' को भी 'रैपसोडोई' लोगों ने गाया था अतएव उनमें भी प्रक्षिप्त अंश की सम्भावना अधिक है।

वस्तुतः महाकाव्य राष्ट्रभावना का प्रतिनिधित्व करता है। महाकवि की व्यक्त शक्ति जन रुचि को कई पीढ़ियों तक प्रभावित करती है, इसलिये उसी की विचार धारा जातीय संस्कारों में रम जाती है और यत्र-तत्र से फूट पड़ती है।

महाकवि वर्जिल ईसा से सत्तर वर्ष पूर्व रोम में एक कृषक परिवार में उत्पन्न हुआ था। प्रकृति की विराट् क्रोड़ में, मातृ भूमि की गिरि-उपत्यकाओं में, और घाटियों, मैदानों और वृक्षों के झुरमुट में, वह प्रकृति शिशु-सा स्वच्छन्द क्रीड़ा करता हुआ बढ़ा। उसके चतुर्दिक प्रकृति का अनन्त वैभव बिखरा पड़ा था, धरती और आसमान के व्यापक सौन्दर्य का उसने निरीक्षण किया। विराट् सनातन सत्य की छाया में उसकी प्रतिभा उद्भूत हुई। प्राकृतिक चित्रण और कल्पनालोक में मुग्ध उड़ान—यह ही दो प्रवृत्तियाँ उसके काव्य में परिलक्षित होती हैं।

उसके काव्य का कथानक इटली की प्राचीन ऐतिहासिक गाथा है। 'इनियड' का नायक एनियास है जो ट्रोजन-महायुद्ध का वीर योद्धा है और ट्राय के पराजय के बाद प्राच्य दिशा की ओर यात्रा करने चल पड़ता है। मार्ग में अफ्रीका के उत्तरी समुद्री तट पर स्थित कार्थेज राज्य में वह उतर जाता है। वहाँ कार्थेज की साम्राज्ञी डीडो से उसकी भेंट होती है जिससे कि वह ट्राय के पतन की कहानी सुनाता है। साम्राज्ञी उस पर आसक्त हो जाती है, किन्तु ऐनियास को देववाणी होती है कि कार्थेज में उसका क्षण भर भी रुकना ठीक नहीं है। वह चुपचाप जाने की तैयारी करता है। किन्तु डीडो को पता चल जाता है और वह उसी की तलवार से अपनी आत्महत्या कर लेती है।

उसके बाद ऐनियास इटली के पश्चिमी तट पर उतरता है और सैबी सीबिल के साथ नरक की यात्रा करता है, वहीं उसकी डीडो से फिर भेंट होती है, जो कि मृत्यु के बाद और भी भयंकर प्रतिहिंसक हो गई है और जिसकी आत्मा से घृणा की चिनगारियाँ फूट पड़ रही हैं। नरक की विभीषिकाओं को पार करके वह स्वर्ग में पहुँच जाता है जहाँ कि उसकी अपने स्वर्गीय पिता से भेंट होती है। उसका पिता उसको रोमन लोगों की वीरता, ऐश्वर्य और भावी सुखसमृद्धि का विश्वास दिलाता है और उसे वापिस लौट जाने को कहता है। मृतात्माओं के लोक को छो-

ऐनियास टाइवर के मुहाने पर पहुंच जाता है। वहा शक्तिशाली सम्राट् लेटीनस की सुन्दरी पुत्री से उसका विवाह हो जाता है और वे दोनों सुखपूर्वक रहने लगते हैं।

इस महाकाव्य मे प्राचीन देवी-देवताओं, मृतात्मा और रोम के ऐश्वर्य का बहुत ही सुन्दर दर्शन है। प्रत्येक वाक्य में स्वदेश प्रेम भी कूट कूट कर भरा हुआ है। वर्जिल होमर से बहुत अधिक प्रभावित था। उसकी अन्तिम आकांक्षा थी कि वह अपने महाकाव्य पर तीन वर्ष और लगाकर उसे अधिक उपयोगी, स्थायी और महत्वपूर्ण बनादे, किन्तु जब उसकी यह इच्छा पूरी नही हो सकी तो उसने मरते हुए अपने अनुयायियो को आदेश दिया कि उसके ग्रथ की लिखित हस्तलिपि नष्ट कर दी जाय। तत्कालीन सम्राट् आगस्टस ने ऐसा नही होने दिया और इस प्रकार यह महाग्रंथ नष्ट होने से बच गया।

मध्ययुग मे इटली का सबसे प्रख्यात और प्रतिभा सम्पन्न कवि दाते हुआ, जिसने कि अपनी भाव-प्रवण आतमा और बौद्धिक चमत्कार से सब को चकित कर दिया। सन् १२६५ मे उसका जन्म फ्लारेंस नगर मे हुआ। जब वह नौ वर्ष का था तो अकस्मात् उसकी भेंट सुन्दरी बीट्रिस से हुई, जो स्वयं ९ वर्ष की सुकुमारी बालिका थी। दोनो बालक परस्पर मिले, किन्तु बोले नही। दाते ने लिखा है, 'उसी दिन से वह मेरे प्राणो मे रम गई।" तभी से वह कवि की प्रेरक शक्ति और जीवन की मशाल बन गई। ९ वर्ष बाद दोनों का पुन. सम्मिलन हुआ। बीट्रिस ने अत्यन्त श्रद्धानत हो कवि की अभ्यर्थना की। किंतु बोले वे तब भी नही। जीवन मे वे केवल तीन बार मिले और भाग्य की विडम्बना! बीट्रिस कभी यह न जान पाई कि इटली का सबसे लब्ध-प्रतिष्ठ कवि उसके प्रेम का उपासक है तथा उसने उस पर एक महाकाव्य ही रच डाला है।

बीट्रिस का विवाह हुआ और पैंतीस वर्ष की आयु मे उसकी मृत्यु हो गई। उसकी मृत्यु के बाद दांते ने लिखा "मेरे जीवन की सारी खुशी चली गई। अब मैं सूना हूं, निराश, निरानन्द, भग्न-हृदय।" और उसके निराश हृदय के समान ही उसके महाकाव्य "डिवाइन कामेडी" की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि भी अन्धकार की निबिडता से आच्छन्न है। कथानक है गूढ़, रहस्यवादी और धुंधला-धुंधला। अपने महाकाव्य का नायक वह स्वयं ही है। नायिका है उसकी प्रेयसी बीट्रिस। कथा तीन खंडों मे विभक्त है, प्रथम खण्ड मे दांते अपनी प्रौढ़ावस्था में एक बीहड अरण्य

की परिष्कृति, और भावना एव अभिरुचि की पूर्ण समन्विति दृष्टिगत होती है। काव्यो की कथाएं वैयक्तिक साहसिक कृत्यों से भरी पड़ी है, जिनमे सग्राम और दैवी-दुर्घटनाओ का बाहुल्य है। मनुष्य देवताओं और नियति के हाथ का खिलौना है—उनकी दुर्दम्य शक्ति उनसे खिलवाड़ करती है। होमर के सभी पात्रो का जीवन प्रारब्ध-सूत्र मे बंधा है—वह जैसा चाहता है, उन्हे बनाता और बिगाडता है। वर्जिल भी जीवन की परवश-परिस्थिति को सिर झुका-कर स्वीकार करता है, और दाते तो संघर्षो के आघात से इतना आहत है कि उसका समस्त काव्य निराश-वेदना और व्यथित आहो से ओतप्रोत है। 'रामायण' और 'महाभारत' मे मानव-जीवन के विभिन्न आदर्शों, भावनाओ, अभावों, पूर्तियो एवं संख्यातीत विविधताओ का चित्रांकण करके जीवन मे सत्य की खोज का प्रयास किया गया है। मनुष्य नियति से बधा हुआ भी कर्म की अवहेलना नही कर सकता। उसे कार्य करते हुए निर्भीकतापूर्वक जीवन-पथ पर अग्रसर होना है और कठिना-इयों व परेशानियों में भी अविचलित रह कर सच्चे पुरुषार्थ का पोषण करते रहना है। हमारे यहा जीवन पर्यन्त सचेष्ट एव गतिशील रहते हुए भी ससार के अनन्त आवर्त्तों के आकर्षण से पृथक् रहने का आदेश दिया गया है। कर्मण्यता के साथ-साथ त्याग एवं धर्मतत्त्व की सूक्ष्म व्याख्या भी मिलती है। जिस प्रकार पाश्चात्य काव्यो में सौदर्य एव कला का अभूतपूर्व सामंजस्य है, उसी प्रकार पौरस्त्य काव्यों में कर्म और वैराग्य का। वहां कला की सत्ता पर जोर दिया गया है, यहां जीवन के उदात्त लक्ष्य पर। वहां की प्रवृत्ति बहुरूपी और बहुर्मुखी है, यहा की प्रवृत्ति अन्तर्मुखी और एकरस। वहां अभिव्यक्ति एव कल्पना का वैचित्र्य दीख पडता है, यहां सूक्ष्म पर्यवेक्षण का वैशिष्य देखने को मिलता है। वहां के काव्यो मे भाव-पक्ष की प्रधानता है, यहा के काव्यो मे बुद्धि-पक्ष का चित्रण है, किन्तु इन थोडी-सी विरोधी बातो के होते हुए भी उनमे मूलत. मानव-मनोवृत्तियो का ही आख्यान है और दर्शन, मनोविज्ञान, तत्त्वज्ञान, सौदर्य एवं कला का सुन्दर समाहार मिलता है।

चरित्र-चित्रण

भारत के कवियो ने अपनी काव्य कृतियो मे धार्मिक भावना को ही अधिक प्राधान्य दिया है। आदर्श और महत् चरित्र ही उनके प्रतिपाद्य विषय रहे। रामायण मे राम और सीता की ही प्रधान रूप से कथा है, अन्य पात्र तो कथा को विशद करने के लिए है। राम मर्यादा पुरुषोत्तम अत्यन्त बलशाली, तेजस्वी और दैवी गुणो से सम्पन्न है। सीता जी आद्या शक्ति श्री स्वरूपा है:—

जगाम सीता निश्चय महायशा
स राघव प्रज्ज्वाग्नि श्रिया ।

इस के अतिरिक्त लक्ष्मण, भरत विश्वामित्र, अगस्त्य, जनक रावण, मेघनाद आदि सभी पात्र अलौकिक शक्ति सम्पन्न हैं। 'महाभारत' में अर्जुन आदि पाण्डवों और भगवान् श्री कृष्ण के चरित्रों की अवतारणा भी धार्मिक दृष्टिकोण से ही हुई है तथा साधारण मनुष्य की पहुंच के परे है।

अनादि मध्यान्तमनन्त वीर्य
मनन्तबाहुं शशि सूर्य नेत्रम् ।
पश्यामि त्वां दीप्तहुताशवक्त्रं-
स्वतेजसा विश्वमिदं तपन्तम् ॥

किन्तु होमर ने अस्पष्ट एवं दैवी शक्ति से अलग मानव चरित्र के सूक्ष्म विश्लेषण द्वारा स्वाभाविक बनाया है। एकलीज यूलीसस, हेलेन पनीलोप के चरित्र चित्रण अत्युत्कृष्ट और व्यापक अनुभूति से ओत प्रोत है। उनमें गुण दोष दोनों का समन्वय है। एकलीज बहादुर सत्यवादी निर्भीक और उदार हृदय होते हुए भी क्रोधी और क्रूर है। यूलीसिस योद्धा, परिश्रमी, कष्ट-सहिष्णु, और पत्नी भक्त होता हुआ भी एक स्त्री के समक्ष कमजोर और दुर्बलचित्त है। हेलेन सौन्दर्य की साक्षात् प्रतिमा और पार्थिव गुणों से युक्त है किन्तु उसमें सीता का तेज और द्रौपदी की क्रियाशक्ति कहां है। पेनीलोप पतिव्रता, सुन्दरी सुशीला और व्युत्पन्न मति की है अपने पुत्र और पति में आसक्त है किन्तु उसमें वह शक्ति और सामर्थ्य कहां, जो दुष्टों को जला कर एक क्षण में भस्म कर दे। होमर जीवन-द्रष्टा है उसकी कल्पना शक्ति विलक्षण और दृष्टि पैनी है। भिन्न भिन्न चरित्रों की अवतारणा और सूक्ष्म विश्लेषण द्वारा उसने अपने काव्य में नाटकीय तत्त्वों का समावेश किया है।

इसके विपरीत वर्जिल का चरित्र चित्रण साधारण कोटि का है। उसमें यथार्थता और विश्लेषण शक्ति का उतना विकास नहीं हो पाता जो होमर में हमें मिलता है—तो भी डीडो के चरित्र चित्रण में उसे पर्याप्त सफलता मिली है।

दांते के चरित्रों में रंजनकारिणी चित्रमयी कल्पना, व्यंग्य चित्रों का बड़ा ही अपूर्व विधान और भावनाओं की अत्यन्त सुकुमार योजना मिलती है। सूक्ष्म मनोविज्ञान और दार्शनिकता की छाया में सौन्दर्य और प्रेम वेदना की विलक्षणता

का आभास भी मिलता है। कोई कोई चरित्र तो इतने ऊपर उठ गए है कि होमर को भी शिकस्त खानी पड़ती है।

कलात्मक धरातल

उदात्त भावना, विचार गांभीर्य, वर्णन की विशदता और प्रबन्ध-पटुता में पांचो महाकाव्य बेजोड़ हैं। भाषा प्रसंगानुकूल, ओजस्वी और प्रसाद गुण सम्पन्न है, रसों के अनुकूल कोमल कठोर पदों की योजना और अलंकारों का भी समुचित प्रयोग हुआ है। भाषा मानो इन महाकवियो के हृदय के साथ जुड कर ऐसी वशवर्तिनी हो गई थी कि वे अपनी अनूठी भाव-व्यंजना के साथ जैसा चाहें इच्छानुसार उसे मोड़ तोड़ सकते थे। होमर की उपमाएं अत्यन्त सरल एवं स्वभाविक हैं, सौंदर्य वृद्धि के लिए उन्हें जबर्दस्ती ठूस-ठूंस कर नहीं भरा गया है। प्रत्युत किसी वस्तु को प्रभावोत्पादक बनाने के लिए ही उनका उपयोग हुआ है। उपमानों का चयन भी मानव जीवन की प्रतिदिन की उपयोग मे आने वाली चीजो से हुआ है। कवि पोप एक स्थल पर लिखते हैं, "होमर ने कभी परिस्थितियों से खिलवाड़ नही किया।" नि संदेह उसकी उपमाएं रत्नों की भांति जड़ी हुई काव्य के सौंदर्य की अभिवृद्धि करती हैं।

फर्श पर झाड़ू की चोट से उठी हुई गर्द की उपमा होमर ने सूप से फटकते हुए धान की उड़ती हुई चोकर से की है। युद्ध के मैदान में शत्रुओं द्वारा त्रस्त एजाक्स की तुलना खेत में घुसे हुए उस गधे से की है, जो व्यर्थ ही बच्चो द्वारा पीटा और सताया जाता है। इसी प्रकार उड़ती और शोर मचाती चिडियों की हवा से हिलते हुए सूखे पत्तों की खड़खड़ाहट से, भिनभिनाती मक्खियों की एसेम्बली से उठती हुई भीड की ध्वनि से, एकलीज़ द्वारा डाटे हुए पेट्रोक्लस की तुलना उस रोती हुई बालिका से की है, जो भाग कर अपनी मा के पैरों से चिपट जाती है और तब तक चुप नही होती जब तक कि उसे उठा कर पुचकारा नही जाता।

होमर की उपमाओं और उत्प्रेक्षाओं का अनुकरण वर्जिल और मिल्टन ने भी अपने महाकाव्यो में किया। कहते है कि होमर अन्धा था। अनन्त काल क्षेत्र मे दिव्य-चिरन्तन शक्तियो के प्रति कौन अन्धा नही है? जो अर्न्तदृष्टि से प्रभु की विभूतियों का दर्शन करता है और अपनी सूक्ष्म अनुभूति शक्ति से पार्थिव व अपार्थिव वस्तुओं के मर्म मे पैठ जाता है, वही वास्तव मे सच्चा नेत्रवान है।

वर्जिल और दान्ते की उपमा उत्प्रेक्षाओं में वह चमत्कार, वाग्वैभव और भाव-गाम्भीर्य नहीं जो होमर में है—वे उसकी जूठी-सी जान पड़ती हैं—ऐसा प्रतीत होता है मानो हम किसी गगनचुम्बी [illegible] पर से उतर कर नीचे उतर रहे हों। होमर का काव्य वह उच्च शिखर है जहाँ से इन महाकवियों तक आने में निम्नस्तर का स्पर्श करना पड़ता है किन्तु यह सब होते हुए भी उनकी विशेषता है कि उनकी भाषा और भाव उस काल के पूर्ण अनुगामी हैं। उनकी लेखनी विश्व के अशेष मानवों के सनातन हृदयावेगों, भावनाओं, सुख-दुःखों और जीवन-तथ्यों को अनायास ही प्रकट कर देने की सामर्थ्य रखती है और पाठक को ऐसा भान होता है मानो वह अपनी ही अन्तरात्मा का इतिहास और जीवन की कहानी पढ़ रहा हो।

वाल्मीकि प्रकृति के अनन्य उपासक हैं। उन्होंने प्राकृतिक-उपादानों में रमकर सच्ची आत्माभिव्यक्ति की है और प्रकृति के ऐसे ऐसे अदृष्ट स्थलों एवं कमनीय क्रीड़ा-क्षेत्रों में अपनी दृष्टि पहुँचाई है जहाँ गुप्त से गुप्त रहस्य आनन्दमयी आभा से जगमगा उठे हैं।

> मिश्रितं सर्जकदम्ब पुष्पैर्नवं जलं पर्वत धातुताम्रम् ।
> मयूर केकाभिरनु प्रयातं शैलापगाः शीघ्रतरं वहन्ति ॥
> रसाकुलं षट्पदसन्निकाशं प्रभुज्यते जम्बुफलं प्रकामम् ।
> अनेक वर्णं पवनावधूतं भूमौ पतत्याम्रफलं विपक्वम् ॥
> मुक्तासकाशं सलिलं पतद्वै सुनिर्मलं पत्रपुटेषु लग्नम् ।
> हृष्टा विवर्णच्छदना विहङ्गाः सुरेन्द्र दत्तं तृषिताः पिबन्ति ॥

अर्थात्—सर्ज और कदम्ब पुष्पों से अनुरंजित नव जल से परिपूरित तथा पर्वत शिलाओं (गेरू) के संयोग से रक्तवर्ण होकर शैल-सरणियाँ कैसे वेग से बही जा रही हैं जिनकी ध्वनि का अनुगमन करते हुए मयूर बोल रहे हैं। काले-काले जामुन जिनका आस्वादन लोग कर रहे हैं रस से भरे भौंरों के सदृश प्रतीत होते हैं। अनेक रंग के पके हुए आम पवन के वेग से पृथ्वी पर गिर रहे हैं। श्याम पक्षी, जिनके पंख जल में भीग जाने के कारण अस्त-व्यस्त हो गये हैं—इन्द्र का दिया हुआ मोती के समान स्वच्छ जल आनन्द मग्न हो पी रहे हैं।

समस्त मानव-जीवन के प्रवर्तक भाव मानो प्रकृति में ही कवि के लिए संश्लिष्ट हो गये हैं। उनमें चित्रण की ऐसी प्रतिभा थी कि वे पाठकों के सम्मुख

शब्दचित्र द्वारा वस्तु-चित्र की वास्तविकता उपस्थित कर देते थे। चित्ताकर्षक दृश्यों की नैसर्गिक सुषमा में रमने की उनकी कितनी तीव्र प्रवृत्ति थी—यह निम्न-लिखित हेमन्त-वर्णन से ज्ञात होता है।

अवश्याय निपातेन किंचित्प्रक्लिन्न शाद्वला ।
बनानां शोभते भूमिर्निविष्ट तरुणातपा ॥
स्पृशंस्तु विपुलं शीत मुदकं द्विरदः सुखम् ।
अत्यन्त तृषितो वन्यः प्रतिसंहरते करम् ॥
अवश्याय तमोनद्धा नीहार तमसावृताः ।
प्रसुता इव लक्ष्यन्ते विपुष्पा. वनराजयः ॥
बाष्प संछन्न सलिला रुत विज्ञेय सारसाः।
हिमार्द्र बालुकै स्तीरैः सरितां भान्ति साम्प्रतम् ॥
जरा जर्जरितैः पद्मैः शीर्ण केसर कर्णिकैः ।
नालशेषैर्हिम ध्वस्तैर्ण भान्ति कमला कराः ॥

अर्थात्—अरण्य-पथ की हरी-हरी घास, जो पाला पडने से आर्द्र और मुरझाई-सी हो गई है, सूर्य की नव-रश्मियों से कैसी चमक रही है। अत्यन्त प्यासा हाथी ठंडे जल के स्पर्श से अपनी ठिठुरी सूंड को सिकोड़ता है। कुहासे की अधिकता के कारण वन पुष्प-विहीन और अन्धकार मे सोया हुआ-सा ज्ञात होता है। नदी, जिसका जल कुहरे से आछन्न है और जिसके सारस-पक्षी भी अपनी बोली के कारण ही सुने जाते हैं—पाले से ढके बालू के तटों से ही पहिचान में आती है। हिम-पात से जर्जरित कमल, जिनकी केसर-कर्णिकाए टूट-फूट कर बिखर गई है, पाले से मारे जाने के कारण उनकी केवल डठल-मात्र ही अवशिष्ट है।

वाल्मीकि की दृष्टि अपनी उपमा-उत्प्रेक्षाओ के चयन के लिए प्रकृति के विस्तृत क्रीड़ागार में अठखेलिया करती है तो संसार से विरक्त वेद व्यास प्रकृति की जड़ वस्तुओ मे संवेदनात्मक अनुभूति का आभास पाते है। उनकी उपमाए निरंकुश, प्रचण्ड और महत्व-व्यंजक है।

वाल्मीकि, व्यास, होमर और वर्जिल प्राचीन युग के कवि है, दाते मध्ययुग का, किन्तु किसी भी सत्काव्य की मर्यादा उसकी प्राचीनता तक ही सीमित नही है और न नवीन होने से उसका महत्व ही घटता है। कभी कभी किस प्रकार देश और काल की सीमा का अतिक्रमण कर सैकड़ो-हजारो मील और जल-थल

को पार करके महाकवियों की कल्पना परस्पर आ टकराती है—यह कौतूहल का विषय है। वाल्मीकि रामायण में सीता जी का सौन्दर्य अचिन्त्य है, महाभारत में द्रौपदी की सुषमा और सौकुमार्य भी अद्भुत कौशल से वर्णित किया गया है, होमर के काव्य इलियड में हेलेन अत्यधिक सुन्दरी और चिर-यौवना बतलाई गई है—वह जब दीख पड़ती है तो स्वर्ग की अप्सराएं भी लज्जित हो जाती हैं। वर्जिल और दान्ते ने भी अपनी अपनी नायिकाओं को परम सुन्दरी चित्रित किया है। लगता है मानो पांचों महाकवि दिव्य-सौन्दर्य और प्रेमोन्माद के रस में सराबोर हो खड़े हों। निःसन्देह लंकापुरी में अशोक वृक्ष के नीचे बैठी हुई विरहिणी, पतिप्राणा सीता के अश्रु-प्रवाह, उजाड़ वनों में भटकती और पति का अनुगमन करती हुई साध्वी द्रौपदी की करुण आहें और ट्राय के महलों में तड़पती हुई सुन्दरी हेलेन के आंसुओं के आंसू और उच्छ्वासों में कोई भी अन्तर नहीं है।

किसी आलोचक की यह उक्ति कितनी सत्य है—

'सत्कवि अतीत का गौरव-गायक, वर्तमान का चित्रकार और भविष्य का सूक्ष्म द्रष्टा होता है।'

कालिदास और शेक्सपीयर

कालिदास
(ईसवी सन् के दो शताब्दी पूर्व)

*

शेक्सपियर
(जन्म–२३ अप्रैल, १५६४
मृत्यु–२३ अप्रैल १६१६)

मानव-हृदय सभी देशों में एक-सा है।

अन्दर की वस्तु को बाहर की, भाव की वस्तु को भाषा की, निज की वस्तु को विश्व की और क्षणिक वस्तु को चिरस्थायी बना देने की आकांक्षा मानव-स्वभाव है।

देह और मन के महासन पर सृष्टि के आदिकाल से सुप्रतिष्ठित होकर बैठे हुये अन्तर के अनिर्वचनीय चिन्तन-स्रोत को, मानव के चिर-प्रसुप्त भाव-पटलों को युग-युग और देश-देश में महाकवियों की नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा ने नव-नवीन शब्द-देह अर्पित किया है। अनेक युग बीत गये, विश्व के विस्तृत प्रागण मे प्राणि-मात्र के हित-साधन में जो अनन्त भाव-निर्झरिणी प्रवाहित हुई-उसका रस पान कर सभी ने कृतकृत्यता मानी और आज भी प्रेम, आनन्द और ज्ञान के सीमाहीन समुद्र मे उनकी अयाह भाव-राशि को हम झाक कर देख लेने का विफल प्रयास किया करते है।

कालिदास और शेक्सपीयर विश्व-साहित्याकाश के सूर्य और चन्द्र हैं, जिनकी एकनिष्ठ साधना और लोकोत्तर-प्रतिभा ने उन्हे उस उत्तुग-शृंग पर प्रतिष्ठित किया है कि जहा से उनकी अमर कृतियों का आलोक युगयुगान्तर तक विश्व-साहित्य को आलोकित करता रहेगा। निःसंदेह, वे सच्चे कवि —समस्त भूमंडल के महाकवि।

यद्यपि इन दोनों के सम्बन्ध मे अभी तक अधिक ज्ञात नही, तथापि इतना तो निर्विवाद है कि उनका अधिकांश जीवन गरीबी, अपमान और संघर्षो में बीता, मानो सासारिक-थपेड़ों का आघात सहते सहते उनका चित्त जीवन की एकरसता से ऊब गया था और इन विषम परिस्थितियो में भी उन्होंने आनन्द की सृष्टि करने का निश्चय कर लिया था। गेटे के शब्दो मे "अतृप्ति ही ज्ञानकी जननी है। नियति मनुष्य को पार्थिव सुख-सम्पद् से संतुष्ट रखना चाहती है, किन्तु जो प्रकृत मनुष्य हैं वे उससे तृप्त न होकर सदा उन्नततर एव उज्ज्वलतर वस्तु पाने के लिये चेष्टा करते रहते हैं। बहुत कुछ प्राप्त कर लेने पर भी जिस अभाव का अनुभव हम लोगों को पीड़ित करता है उसकी सहायता से ही वे एक दिन सुन्दरतम का साक्षात् प्राप्त

करते हैं।' कहना न होगा कि इन दोनों कला-कोविदों की उदात्त उद्भावनाओं एवं सौन्दर्य पिपासु दृष्टि ने उनकी अमर कृतियों को जीवन और प्रकृति के संश्लिष्ट चित्रों से सुसज्जित कर दिया है तथा विश्व-साहित्य तक प्रादुर्भावित कर देने वाली उनकी विलक्षण प्रतिभा और विशाल व्यक्तित्व ने समस्त साहित्याकाश के अणु-परमाणुओं तक को महान बना दिया है।

बनारसीदास चतुर्वेदी ने एक स्थल पर लिखा है 'कलात्मक शैली की प्रभविष्णुता सुन्दर अभिव्यक्ति में है। कालिदास और शेक्सपीयर दोनों की विशेषता है कि उनके नाटक जीवन चित्रों की सूक्ष्म विविधताओं से ओतप्रोत, अन्तर्मुखी एवं बहिर्मुखी प्रवृत्तियों का दिग्दर्शन कराने वाले और सत्साहित्य के आदर्श तत्वों से परिपूर्ण हैं। उनके भीतर कवि एवं कलाकार अपनी साधना के समग्र समारोह के साथ विराजमान हैं और दार्शनिक चिन्तन, गहन अनुभूति एवं अद्भुत व्यञ्जना शक्ति के साथ साथ कोमल भावनाओं का उच्छृंखल आवेग इतनी भव्यता के साथ अनुस्यूत हो रहा है, कि साहित्य-पारखी आश्चर्य भरी मुद्रा में अवाक् देखता रह जाता है। 'शताब्दियों की लम्बी खाई को लांघकर आज भी कालिदास और शेक्सपीयर की तरुण-तरुणियां उसी भांति प्रेम की आग में जल रही हैं, उत्फुल्ल हो रही हैं और अश्रुओं में मुस्करा रही हैं। हैमलेट का पितृ-प्रेम, ओफीलिया की अन्तर्व्यथा, एण्टनी और क्लिओपेट्रा की कामाराधना, वृद्ध लीयर की दयनीय मनःस्थिति, मैकबेथ की कृतघ्नता, रोमियो-जूलियट की दुःखान्त प्रेम-कथा, सिलिया व रोजलिण्ड का प्रेमोन्माद, हेरमिओन का पति प्रेम और मिरण्डा का सारल्य आदि शेक्सपीयर के नाटकों के अगणित पात्रों का दुःख-सुख, हर्ष विषाद हमारे स्मृति-पटल पर अंकित सा प्रतीत होता है, जिसे हम जीवन पर्यन्त भुला सकने में असमर्थ हैं। इसी प्रकार कालिदास की सरल, भोली तपोवन-पालिता सुकुमारी शकुन्तला, राजोचित गुणों से युक्त दुष्यन्त, शकुन्तला की हमजोली, इठलाती यौवन से मदमाती सखियां, 'मेघदूत' में प्रियतमा की विरह-व्यथा से पीड़ित यक्ष, 'मालविकाग्निमित्र' में मालविका की उपासना में निरत अग्निमित्र, 'विक्रमोर्वशीय' में उर्वशी के वियोग में विलाप करते हुये पुरुरवा, 'रघुवंश' में इन्दुमती के प्रेम में उन्मत्त अज, 'कुमार सम्भव' में अपने स्वामी कामदेव की विरह-ज्वाला में झुलसती रति, आश्रम शासक दिलीप, शिव, मैना पार्वती कार्तिकेय आदि सभी हमारे नेत्रों के समक्ष बिल्कुल सजीव से चलते-फिरते दिखाई देते हैं।'

इन दोनों महाकवियो को मनोवैज्ञानिक अवस्था का कितना सूक्ष्म और गहरा अध्ययन था—वह उनकी रचनाओ को पढ़ने से तत्क्षण ज्ञात हो जाता है। मानव-स्वभाव के पारखी होने के साथ ही साथ वे जीवन की अनेकरूपता के भी सूक्ष्म-द्रष्टा थे और असुन्दर मे भी अपनी स्वाभाविक प्रवृत्ति के कारण सौन्दर्य एवं सौकुमार्य की कल्पना करते थे। प्रकृति की साधारण से साधारण वस्तु भी उन्हे अत्यन्त रहस्यमयी और अर्थपूर्ण दृष्टिगत होती थी, प्रत्युत् उनकी दृष्टि ही ऐसी थी जो वाह्य आवरण पर न अटक वस्तु के अंतराल को भेदने का प्रयास करती थी। प्रकृति के विविध उपादानों एवं प्रसाधनो पर दोनों मुग्ध थे और उसकी विचित्रता और विविधता में उन्हें असाधारणत्व की प्रतीति और अन्तर्चेतना का आभास मिलता था। कालिदास का सम्पूर्ण साहित्य तो एक तरह से प्रकृति का अमर चित्र-कल्प ही है। 'अभिज्ञान शाकुन्तल' मे शकुन्तला का मादक सौन्दर्य एवं रूप-लावण्य उस समय प्रस्फुटित होता है जबकि वह आश्रम के छोटे छोटे वृक्षो, पौधो और लताओं को सींच रही है।

> अधरः किसलय रागः कोमल विटपानु कारिणौ वाहू।
> कुसुममिव लोभनीयं यौवनमंगेषु संनद्धम्॥

अर्थात्—इसके ओष्ठ कोमल किसलयो की भांति लाल है, सुन्दर वाहे कोमल शाखा सी प्रतीत होती है और अंग-प्रत्यंगो मे उमडता तारुण्य पुष्पवत् आकर्षक और उपभोग्य है।

तपोवन में प्रवेश करते ही सम्राट् दुष्यन्त प्रकृति की रम्य-चारुता पर मुग्ध हो उठते है और उनका चित्त प्राकृतिक उपादानो के सौन्दर्यान्वेषण मे विभोर हो जाता है।

> नीवाराः शुक गर्भ कोटर मुख भ्रष्टास्तरूणामधः.
> प्रस्निग्धाः क्वचिदिङ्- गुदी फल भिद. सूच्यन्त एवोपलाः।
> विश्वासोपगमादभिन्न गतयः शब्दं सहन्ते मृगा–
> स्तोयाधार पथाश्च वल्कलशिखा निष्यन्दरेखांकिता॥

अर्थात्—तोतो की चोच से कुतरी हुई उनके कोटरो से गिरकर श्यामक की वाल वृक्षों के नीचे पड़ी है; यत्र-तत्र इगुंदी-फल पीसने की चिकनी शिलाये रक्खी है, मृग मनुष्यों से ऐसे परच.गये है कि हमारी आहट से भी नही चौकते, नदी से

पगडडिया तक भीगे वल्कल वस्त्रो से पानी की बूंदें टपक टपक कर गिरने से कैसी रेखायें बन गई ह ।

शकुन्तला को पतिगृह के लिये विदा करते हुए न केवल महर्षि कण्व, सखियां और आश्रमवासी ही विकल ह वरन् सारी प्रकृति ही विषण्ण और आंसू बहाती-सी प्रतीत होता ह । स्थावर-जगम सभी स्नेह-कातर है —

उद्गलित दर्भ कवला मृग्य परित्यक्तनर्तना मयूरा ।
अपसृतपाण्डुपत्रा मुञ्चन्त्य श्रूणीव लता ॥

अर्थात्—हिरण शोक में चरना छोडकर घास का मुह से उगल उगल रह ह मोरा ने नाचना छोड दिया है और लता पाले पीले पत्ते गिराकर मानो आसू बहा रही ह ।

'विक्रमोर्वशीय' में पुरुरवा अपनी प्रियतमा उर्वशी की खोज में पागल सा घूम रहा है । वर्षाकालीन मेघ नभ में छाए हैं, चारो ओर बिजली कौंध रही ह हवा जोरो से बह रही ह पक्षी बोल रहे ह, जो पुरुरवा के व्यथित हृदय को और भी सतप्त बना रहे हैं —

विद्युल्लेखा कनक रुचिर श्रीवितान ममाभ्रम्
व्याधयन्ते निचुल तरुभिर्मजरी चामराणि ।
घर्मच्छेदात् पटुतर गिरो वन्दिनो नीलकण्ठा
धारा हारोपनयनपरा नैगमा सानुमन्त ॥

अर्थात्—विद्युत् रूपी स्वर्ण रेखाओ से मण्डित यह मेघ मेरे सिर पर राज-छत्र सा छाया है । सुगन्धित मजरियो से लदे निचुल वृक्ष हिलते हुये चवर डुलाते स प्रतीत होते ह । गर्मी का ताप कम होने के कारण मधुर स्वर में बोलने वाले मयूर मागधो और चारणो की होड कर रहे ह और जल प्रपातों से झरती हुई बूदों के मुक्ताहार को भेंट करती हुई पहाडिया प्रजा की भांति मेरा अभिनन्दन करती-सी प्रतीत होती ह ।

इसी प्रकार रघुवश, 'कुमार सभव' मालविकाग्निमित्र' आदि ग्रन्थो में इस महाकवि की प्रकृति के साथ तादात्म्य भावना परिलक्षित होती ह और उनकी कल्पना प्राकृतिक-सौन्दर्य से परिप्लावित हो छलकती हुई उमड पडती ह । शेक्सपीयर के नाटको में कालिदास के नाटको की भांति प्रकृति के इतने सुन्दर, सम्मोहक

चित्र तो न मिलेगे, तथापि मानव के सुख, दुःख, हर्ष, विषाद, प्रेम, घृणा, क्रोध, ईर्ष्या, क्षोभ आदि मनोविकारों का कही कहीं प्राकृतिक-उपादानो पर बहुत ही सुन्दर ढंग से प्रभाव व्यक्त किया गया है। 'किंग लीयर' (King lear) मे वृद्ध लीयर का जब उसकी पुत्रियों द्वारा अत्यधिक अपमान होता है और वह अपनी असहाय, असमर्थ, जर्जरावस्था में भीषण तूफान, आंधी, मेंह, कड़कती बिजली मे घर से बाहर निकाल दिया जाता है तो उसके मस्तिष्क में भी विचारो का कम तूफान नहीं उठता। उसके हृदय मे भी भयंकर उथल-पुथल है, कसक है, पीड़ा है, अन्तर्द्वन्द्व मचा है। बाहरी तूफान और उसके अन्तर में उठते हुये विचारों के तूफान में आश्चर्यजनक सादृश्य है। लीयर क्रोधावेश में प्रकृति की भीषण उग्रता का सामना करता हुआ टकराता, भागता, लड़खड़ाता, संघर्ष करता, सिर के बाल नोचता-विक्षिप्त-सा-भागा जा रहा है। उसे तूफान से किंचित् भी भय नही है, घबराहट और परेशानी भी नही-मानों जीवन की मोहासक्ति से वह उपराम हो चुका है। वह तूफान *और आंधी को सम्बोधन करता हुआ कहता है :—*

"हवाओ ! बहो, खूब जोरों से बहो। अपनी उग्रता से सारी पृथ्वी को समुद्र में बोड़ दो अथवा समुद्र की लहरों को पृथ्वी पर फैला दो। झरनों और जल-प्रपातों ! खूब जोरों से धड़ाधड़ गिरकर सारे नगरों, महलो, गिर्जाघरों, ऊंचे मकानों को ध्वस्त कर दो। ओ कड़कड़ाती, चमचमाती बिजली ! अपने पूरे वेग से नीचे उतर कर मेरे सफेद बालो को जला डाल, सृष्टि के असंख्य पदार्थो को भस्मसात् कर दे और उन तत्वो को नष्ट भ्रष्ट कर दे, जो कृतघ्न व्यक्तियो का निर्माण करते है।"

निम्नलिखित पक्तियो मे वृद्ध लीयर की अन्तर्व्यथा, वेदना, मस्तिष्क की आंधी कितनी प्रबल हो उठी है ! कितनी भीषण ! और साथ ही कितनी असह्य व दयनीय :—

"मेघो ! खूब पेट भर कर बरसो, बिजली चमकाओ, शोले फेंको। वर्षा, वायु, बिजली और अग्नि-तुम मेरी पुत्रिया नहीं हो, जो मै तुम्हारी शिकायत करूंगा, तुम्हारी निर्दयता, कठोरता का उलाहना दूगा। मैंने तुम्हे अपना राज्य नहीं सौपा, पुत्र-पुत्री कहकर नहीं पुकारा, तुम मेरे प्रति कृतज्ञ नही हो, अतएव अपनी दुर्दम्य इच्छाओं को पूर्ण करो। मैं निर्धन, क्षीण, दुर्बल, दरिद्र और सभी से परित्यक्त बूढ़ा तुम्हारी सेवा में सिर झुकाए खड़ा हूं। मुझे अपने कठोर आघातों से कुचल डालो, चकनाचूर कर दो ; किन्तु हां-इतना तो कहूंगा कि तुम भी मेरी दुष्ट, नीच,

अनन्त ईर्ष्याओं का साथ दे रहे हो। उनके दुष्कृत्यों को सम्पन्न कराने में सहायक बन रहे हो—आह! यह सब कितना अनुचित है! मेरे सिर पर तो कुछ दया करो।'

'एज यू लाइक इट (As you like it) में आर्डन के वन्य प्रदेश का उल्लासमय वातावरण वहां के उपस्थित व्यक्तियों के मन को प्रभावित करता है और उनके मनोवेगों को उभाड़ता और उत्तेजना प्रदान करता है। हैमलेट (Hamlet) में आफीलिया की विक्षिप्तावस्था के साथ साथ नदी, शरत जल और आसपास का समस्त प्राकृतिक-वातावरण भी क्षुब्ध और अस्तव्यस्त दिखाई देता है। कहने की आवश्यकता नहीं कि इन दोनों महाकवियों में प्रकृति व बाह्य-उपकरणों में जीवन की अनुकृति से आभास पाने की प्रतिभा निसर्ग सिद्ध थी और साधारण से साधारण तुच्छ से तुच्छ, मनुष्यों के रात दिन के उपयोग में आने वाले पदार्थों के मर्म में पैठकर वे जीवन के रहस्यमय सत्य का अन्वेषण किया करते थे। स्पष्ट जगत् के रूपात्मक सौन्दर्य में उन्हें चरम-सत्य का साक्षात्कार होता था और प्रकृतिजन्य स्वाभाविक सुख एवं आनन्द रस में निमज्जित हो उनकी कल्पना ने जो विमल काव्य धारायें बहाईं-उनसे आज भी जो चाहे अपना कलश भर कर ले जा सकता है।

'उपमा कालिदासस्य' यह सूक्ति प्रसिद्ध है। प्रकृति के अंचल से सौन्दर्य और कल्पना के अनेकों कमनीय कुसुम चुनकर कालिदास ने अपने काव्य-ग्रन्थों को सजाया है और उपयुक्त अलंकारों को ऐसे कौशल से श्लोकों में सन्निविष्ट कर दिया है कि वे अपनी चमकीली आभा से पाठक को चकाचौंध सा करते प्रतीत होते हैं। रसों में प्रायः उन्होंने शृंगार रस को प्रमुखता दी है। सब कुछ कहे जाने पर भी जो आज संस्कृत-कवियों में कालिदास की महत्ता सर्वोपरि है उसका विशेष कारण है उनका भाव-सारल्य और भाषा का माधुर्य। काव्य की सरसता, शब्दों का माधुर्य, अपूर्व प्रसाद, प्रेम और शृंगार, अनुपम उपमायें, करुणा की अजस्र धारा, अलंकारों की छटा, रचना-कौशल एवं भाव-वैचित्र्य आदि कवित्व के समस्त गुणों के साथ साथ उनकी रचनाओं में जो एक अन्य विशेषता पाई जाती है वह है उनकी उपमाओं की सजीवता। निःसन्देह, कालिदास उपमा के आगार थे।

अनाघ्रात पुष्प किसलय मलून कररुहै
अनाविद्ध रत्न मधु नवमनास्वादितरसम्
अखण्ड पुण्याना फलमिव च

अर्थात्—"शकुन्तला उस पुष्प की भांति है, जो कभी सूंघा नही गया, उस कोमल किसलय के सदृश है, जो कर-स्पर्श से मलिन नही बनाया गया, अनवेंधे रत्न की भाति, न चक्खे हुये नवीन मधु की तरह और पुण्यो के अखण्ड फल के सदृश—।"

कालिदास की उपमाये इतनी व्यंजक, रस छलकाती और स्वत. स्फूर्त्त है कि पढ़ने वाले को ऐसा भान होता है मानो वे उनकी कल्पना से उत्पन्न न होकर अनायास ही किसी अज्ञात-लोक से आ गई है और स्वत. उन्होने काव्य-ग्रन्थों में अपना स्थान बना लिया है। शेक्सपीयर की उपमाओ मे कालिदास की उपमाओ की वह ताजगी, यथार्थता, और नूतनता कहा—तथापि कही कही—उनके नाटको मे भाव-व्यंजना बहुत सुन्दर और अनूठी हुई है। 'किग लीयर' मे लीयर अपनी ज्येष्ठ पुत्री गोनरिल के दुर्व्यवहार पर आश्चर्य प्रकट करता हुआ कहता है, "तू मुझसे उत्पन्न पुत्री नही, वरन् मेरे रक्त की विकृति है, व्याधि है, फोडा है, सडा और दुर्गन्धित घाव है, पीव भरा जख्म-जो मेरे मास मे उत्पन्न हो गया है।"

क्षण भंगुर जीवन की निरर्थकता की उपमा देते हुए शेक्सपीयर ने लिखा है.—"जीवन चलती छाया है, उस बेचारे गरीब अभिनेता की भांति, जो कुछ घण्टे रंगमंच पर अपनी तडक-भड़क दिखाकर विस्मृति के गर्त्त मे समा जाता है, उस मूर्ख पागल की व्यर्थ बकवास है, जिसमे न कोई सार है न तत्त्व।"...

शेक्सपीयर के 'टेम्पेस्ट' (Tempest) और कालिदास के 'शकुन्तला' नाटक में बहुत कुछ सादृश्य है। जिस प्रकार अप्सरा मेनका और राजा की पुत्री होते हुए भी शकुन्तला का नागरिक जीवन से दूर तपोवन में लालन-पालन होता है, उसी प्रकार मिरेण्डा भी राजकुमारी होकर अपने निर्वासित पिता के साथ एक निर्जन, एकांत द्वीप में निवास करती है। दोनों ही परम पवित्र, भोली, सरल बालिका है, छल-कपट से दूर, सांसारिक बातों से अनभिज्ञ। शकुन्तला राजा दुष्यन्त को देखते ही उसके अटूट प्रेम-पाश मे बध जाती है, "कि नु खल्विम प्रेक्ष्य तपोवन विरोधिनो विकारस्य गमनीयाऽस्मि सवृत्ता!" अर्थात्—इस पुरुष को देख क्यो मेरे मन मे तपोवन-विरोधी बाते उत्पन्न हो रही है।

मिरेण्डा भी राजकुमार फर्डिनेण्ड के रूप-गुण और पुरुषोचित्त सौन्दर्य पर तत्क्षण मुग्ध हो जाती है, "ओह! यह कैसा दिव्य रूप है—ऐसा सौन्दर्य तो मैंने कभी नहीं देखा।"

शकुन्तला और मिरण्डा, दुष्यन्त और फर्डिनेण्ड की प्रेम-पद्धति में भी बहुत कुछ समानता है। यौवन के उद्दाम ज्वार में प्रथम दृष्टि विनिमय से ही दोनों के हृदय में पवित्र प्रेम की गंगा प्रवाहित होने लगती है और उस निर्मल रस प्रवाह में उनका अणु अणु परिप्लावित हो उठता है। दुष्यन्त और फर्डिनेण्ड दोनों ही रनवास की चपल सुन्दरियों से इन भोली निष्कपट बालिकाओं को अधिक पसन्द करते हैं और उनसे गान्धर्व विवाह कर लेते हैं, किन्तु कहीं-कहीं मिरण्डा की सरलता और शकुन्तला का गोपन औचित्य की सीमा का उल्लंघन कर गया है।

ऐतिहासिक दृष्टिकोण से कालिदास और शेक्सपियर के नाटकों को कसौटी पर कसने पर और भी उनकी तुल्यरूपता सिद्ध होती है। दोनों ने ऐतिहासिक कथावस्तु को अत्यन्त उत्कृष्ट एवं मनोहारी बना दिया है। कालिदास ने दुष्यन्त के प्रसंग में अंगूठी का आख्यान डाल कर अपने नाटक में जान फूंक दी है और राजा दुष्यन्त को भी विश्वासघात के दोष से विनिर्मुक्त कर लिया है। इसी प्रकार शेक्सपियर ने भी इतिहास के सूखे खजाने से अनमोल रत्न चुनकर अपने नाटकों की कथावस्तु को ऐसे कौशल से प्रस्तुत किया है कि उनका महत्त्व द्विगुणित हो गया है।

कालिदास ने अपनी अमर कलाकृतियों द्वारा संस्कृत-साहित्य को एक नवीन दिशा की ओर उन्मुख किया, उसमें नई अनर्घता भरी और अपनी अपूर्व कला मर्मज्ञता, सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि तथा विश्लेषण-बुद्धि से नाट्य-साहित्य की परिधि को व्यापक और महत्त्वपूर्ण बनाया। महाकवि शेक्सपियर की लेखनी में भी ऐसी ही अद्भुत भावोद्बोधन शक्ति थी, जिसका कि व्यापक प्रभाव उनके परवर्ती साहित्य एवं समाज पर बराबर पड़ता रहा। यद्यपि उनके समय के अनेक कलाकार मार्लो (Marlowe), वेब्स्टर (Webster), बेन जान्सन (Ben Jonson), फ्लेचर (Fletcher) और डेकर (Dekker) आदि ने पर्याप्त ख्याति प्राप्त की थी, तथापि शेक्सपियर का व्यक्तित्व इतना विशाल एवं जटिल तथा उनकी प्रतिभा इतनी बहुमुखी थी कि जिनके प्राकट्य ने अंग्रेजी-इतिहास के गौरवमय अध्याय का जाज्वल्यमान पृष्ठ खोलकर विश्व के सम्मुख एक आश्चर्य समुपस्थित कर दिया। सचमुच यूरोप में शेक्सपियर के नाटकों की महत्ता बेजोड़ है। कहना न होगा कि इस साहित्य शिल्पी की सूक्ष्म अन्तर्भेदिनी दृष्टि इतनी तीक्ष्ण और प्रखर थी कि दुःखान्त, सुखान्त, प्रहसन, ऐतिहासिक जिस विषय पर भी उन्होंने अपनी कलम उठाई—उसी में आश्चर्यजनक सफलता प्राप्त की।

शेक्सपीयर की प्रारम्भिक कृतिया यद्यपि उतनी प्रसिद्ध नही है, फिर भी उनमें उनकी कलात्मक प्रतिभा का आभास मिलता है। 'रोमियो और जूलियट' (Romeo and Juliet) 'रिचर्ड तृतीय' (Richard III) और 'हेनरी षष्टम' (Henry VI) वस्तुत कलापूर्ण रचनाये है। सन् १६०१ से १६०८ तक शेक्सपीयर के जीवन का मध्यान्हकाल कह सकते है। उनकी बडी बडी कला कृतियां 'हेमलेट' (Hemlet), 'ओथैलो' (Othello), किंग लीयर (King lear), 'मेकबेथ' (Mecbeth), 'टाइमन आफ एथन्ज' (Timon of Athens), 'मेजर फार मेजर' (Measure for Measure) 'ट्रायलेस एण्ड क्रेसीडा (Troilus and Cressida) आदि इसी अवधि में लिखी गईं। इस समय तक उनका कलाकार का रूप पूर्ण सजग एव क्रियाशील हो उठा था। जीवन के अन्तिम वर्षो मे उन्होने 'टेम्पेस्ट' (Tempest), 'विन्टर्स-टेल' (Winters Tale), 'सिम्बलाइन' (Cymbeline) आदि नाटक लिखे। इन कृतियो मे उनकी अन्तरात्मा का दर्शन हुआ, मानो जीवन के चतुर्थ चरण मे आते-आते उनकी अन्तर्दृष्टि व्यापक और आध्यात्मिक-चेतना सजग और सचेष्ट हो उठी।

यद्यपि इन दोनो महाकवियो मे धर्म, समाज, संस्कृति, साहित्य एव भाषा की असमानता ऐसी ही है जैसे कि आसमान और खाई की—शेक्सपीयर अंग्रेजी-साहित्य के कलाकार है—तो कालिदास संस्कृत साहित्य के। एक की क्रीड़ाभूमि पश्चिम है, तो दूसरे की पूर्व; तथापि यह निर्विवाद सत्य है कि कोई भी सत्कवि देश और काल की सीमाओं से सीमित नही है। उनकी कल्पना तो देश-विशेष एव जाति-विशेष की सकीर्णता छोडकर समस्त विश्व का आलिगन करती है और यही कारण है कि विश्व भी उनके चरण चूमने को आतुर हो उठता है। कालिदास और शेक्सपीयर-दोनों ही की गणना विश्व के इने-गिने कलाकारो मे की जाती है। दोनो ही साहित्य एव कला के अनन्य उपासक है। दोनो ने ही जीवन के सार्वभौम, सार्वजनीन चित्र प्रस्तुत किये है। शेक्सपीयर ने अपने को फैलाया है, कालिदास ने अपने को केन्द्रित किया है। दोनो ने ऐसे चरित्रो की सृष्टि की है, जिनमे सूक्ष्म-चरित्र-विकास एवं मानव-अन्तर्द्वन्द्व का आभास मिलता है। कालिदास नारी की सौन्दर्य एवं सौकुमार्य की उपासना मे निरत है। शेक्सपीयर ने नारी-हृदय का अन्तर्द्वन्द्व अत्यन्त सूक्ष्मता से दर्शाया है। कही वह स्नेह-कातर, वात्सल्यमयी नारी है तो कही सहजात प्रवृत्तियो द्वारा परिचालित कठोर नारी। 'ओथैलो' मे सुन्दरी

डेसडेमोना अन्त तक अपने क्रूर पति को प्यार करती है। वह अपनी सेविका एमिला से कहती है 'मेरा प्रेम इतना अन्धा है कि मैं उनके शाप, क्रोध, निर्ममता, क्रूर प्रहार सभी कुछ हँसते हँसते सहन कर सकती हूँ।' और मरते दम तक वह अपने हत्यारे पति का पक्ष लेती है और उसे अपनी हत्या के अपराध से मुक्त कराने के लिए कहती है 'इन्होंने नहीं, मैंने स्वयं अपनी हत्या की है।' किन्तु 'मैकबेथ' में कोमलांगी नारी का रूप अत्यन्त भयंकर हो उठा है। लेडी मैकबेथ अपने पति को राजा डंकन की हत्या के लिए प्रोत्साहित करती है और मारने में सहायक होती है। 'रोमियो एण्ड जूलियट' में जूलियट प्रेम की साकार प्रतिमा है तो 'एण्टोनी एण्ड क्लियोपैट्रा' में क्लियोपैट्रा छल, कपट और धूर्तता की। 'अभिज्ञान शाकुन्तल' में भी भोली शकुन्तला का राजा दुष्यन्त द्वारा परित्यक्त होने पर उग्र रूप दिखाई देता है।

शकुन्तला—(सरोषम्) अनार्य ! आत्मनो हृदयानुमानेन पश्यसि ।
क इदानीमन्यो धर्मकञ्चुकप्रवेशिनस्तृणच्छन्नकूपोपमस्य तवानुकृतिं प्रतिपत्स्यते ?

अर्थात्—शकुन्तला क्रोध में भरकर कहती है 'हे अनार्य ! तुम अपना सा कुटिल हृदय सबका जानते हो। तुम-सा धूर्त कौन होगा जो घास फूस से ढके हुए कुएँ की भाँति धर्म का भेष बनाए रहते हो।'

इस प्रकार मानव की नैसर्गिक प्रवृत्तियों में प्रेम, क्रोध, घृणा, साहस, क्षमा, उदारता, विश्वास आदि को इन साहित्यकारों ने अपने नाटकों में बहुत ही सुन्दर ढंग से प्रदर्शित किया है। दोनों ने ही अनेक प्रकार के मनुष्यों तथा स्त्रियों की चित्तवृत्तियों, भावनाओं, विचारों की कल्पना करने की सामर्थ्य रखने के कारण अपने पात्रों में पूर्ण सजीवता भर दी है, मानो उन्हें अपने सम्मुख एक बड़ा ही विस्तृत और गहन भावों का संसार देखने मिला। मानव जीवन कितना विशृंखल, अस्थिर, अशान्त और ऊहापोह भरा है, तथापि जीवन धारा कभी अवरुद्ध न होकर समस्त विघ्न बाधाओं के मध्य भी प्रवाह करती रहती है—इनकी कृतियों के मूल में भी और यही प्रेरणा है। कहना न होगा उनकी रचनायें विभिन्न जीवन चित्रों के वास्तविक दर्पण हैं, जिनमें सम्पूर्ण मानव जीवन की झाँकी मिलती है।

कालिदास और शेक्सपियर—दोनों ही में विलक्षण प्रतिभा है और उनकी रचनाओं का क्षेत्र इतना विशद एवं विविधता से पूर्ण है तथा उनमें इन महाकवियों के अनगिनत अनुभव के इतने विचित्र और रंगीन चित्र भरे पड़े हैं कि इनके साहित्य के अमर भंडार को देख कर दाँतों तले उंगली दबानी पड़ती है। उनके नाटक कला और सौन्दर्य के उस विशाल महासरोवर के समान हैं, जिनमें सौन्दर्य-द्रष्टा-कलाकार छककर अपनी प्यास बुझाते हैं और अपनी परिवर्तित भावभंगी के साथ साथ तरह-तरह का रसास्वादन कर अपने को कृतकृत्य मानते हैं।

तुलसी और मिल्टन
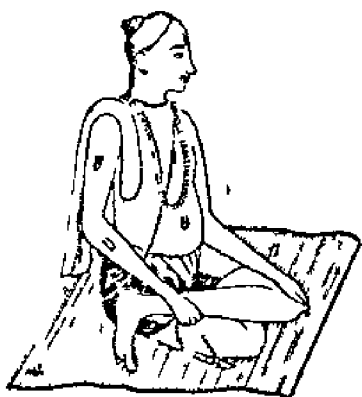
तुलसीदास
जन्म—गुसाईं चरित्र के अनुसार
संवत् १५५४ जनश्रुति के अनुसार
संवत् १५८९ मृत्यु संवत् १६८०

मिल्टन
जन्म—९ दिसम्बर १६०८
मृत्यु—८ नवम्बर १६७४

काव्य 'ज्ञान समष्टि का उच्छ्वास और उसकी सूक्ष्म आत्मा है'—उसमे जीवन के सभी तत्वो का सन्निवेश और जीवन की विभिन्न स्थितियो, दृश्यों, घटनाओ एवं प्रसंगो का सजीव लेखा होना है। काव्य मानवीय सत्य, सौन्दर्य एव शक्ति का प्रतीक है और सीम मे निस्सीम को तथा विशेष मे निर्विशेष को व्यक्त करता है। आधुनिक युग के सुप्रसिद्ध जर्मन कवि रेनर रिल्के के शब्दो में "काव्य-रचना के लिए केवल जीवन की स्वल्प स्मृतिया ही पर्याप्त नही है, प्रत्युत् कवि के लिए आवश्यक है कि जब बहुत सी स्मृतियां एकत्र हो जायें तो वह उन्हे विस्मृत करदे और पुनः लौट आने तक धैर्य पूर्वक उनकी प्रतीक्षा करे, क्योंकि इन स्मृतियों मे ही उसका सारा संसार निहित है और यह तभी सभव है जब कि वे स्मृतिया उसके भीतर उसके रक्त मे एक हो जाएं, उसकी दृष्टि तथा उसकी चेष्टा मे परिणत हो जाएं—भीतर रम जाए, जब उनका कोई नाम और चिन्ह शेष न रह जाए, वे उसमे आत्मसात् हो जाएं—तभी, केवल तभी—उसके जीवन के किसी सुनहरे क्षण मे कविता के प्रथम शब्द का उत्थान होता है, जो उसमे निकल कर बाह्य-जगत् मे विचरता पंछी बन जाता है।"

एकरूपता

तुलसीदास का 'रामचरितमानस' और मिल्टन का 'पैराडाइज़ लास्ट' (Paradise Lost) इसी कोटि के महाकाव्य है, जो अपने युग का ही प्रतिनिधित्व नही करते, जो केवल आज के इतिहास की ही अमर निधि नही है, प्रत्युत् युग-युग तक विश्व की भावनाओ को अंकित कर मानवात्मा को परितृप्त करते रहेंगे। जो सन्देश, जो सौरभ उन्होने बिखेरा है—वह अक्षुण्ण रहेगा—उसका कभी ह्रास न होगा। उस समय से पीछे आने वाली आज तक की पीढियो पर उनका प्रभाव समान रूप से अमिट है और आज भी वे विकसित मानव-जाति को कर्तव्य-मय जीवन-आदर्शों का पाठ पढाने से पीछे नही हटते। कहने की आवश्यकता नही कि ये दोनो अमर-काव्य अपने अपने स्रष्टा की सूक्ष्म अन्तर्भेदिनी दृष्टि और विलक्षण-प्रतिभा के परिचायक है—उनके मूक मनोवेगो की संगीतमयी भाषा हैं, जो उनकी अन्तस्तल की भावनाओ को प्रतिबिम्बित करते हुए भौतिक आवरण को चीर कर जीवन के मलभूत तत्वो को स्पर्श करते है। एक मे पूर्व की आत्मा है तो दूसरे मे

पश्चिम की कला। दोनों अपने अपने देश की विराट संस्कृति के वाहक हैं और वहाँ के सामाजिक संस्कारों का स्वर आगे बढ़ाते हैं। काव्य के उन्नयन और समुचित विकास के लिए जिन उपकरणों, जीवन-संश्लिष्ट चित्रों और कल्पना-वैभव की अपेक्षा है—उनकी भाव राशि और ज्ञात अज्ञात भावनायें उनमें बिखरी पड़ी हैं मानो दोनों महाकवियों ने अपने गम्भीर चिन्तन और अन्तर्भूत-अनुभूतियों को अमर स्वरों में बाँध दिया, चतुर चितेरों की भाँति वर्णों की सूक्ष्म और पैनी रेखाओं से अपने चित्रों को रंगा, जीवन और जगत के रहस्यों का पारदर्शी की नाईं उद्घाटन किया तथा अपनी काल्पनिक सृष्टि में जीवन के मधुर प्रवाह में झलमलाते विलास व सौन्दर्य की झाँकी दिखाई और स्वानुभूत सुख-दुखों को मिलाकर ऐसी अनुपम काव्य सृष्टि की जिसमें उन्होंने अपनी निर्माणमयी वृत्ति द्वारा जीवन की अखण्डता का उद्भावन किया।

यद्यपि दो महाकवियों की प्रवृत्ति कभी एकसी नहीं होती, अपनी अपनी पृथक प्रतिभा और व्यक्तिगत विचार धाराओं को लेकर उनके द्वारा उतारे गये जीवन के दो आलोक चित्र भी कभी सम नहीं उतरते तथापि वस्तु भिन्न होते हुए भी उनकी आत्मा एक होती है और उनके जीर्ण विकीर्ण तन्तुओं में एकसी सजीवनी शक्ति सन्निहित रहती है जो पीयूषधारा सी अनन्तकाल तक शुष्क धराधाम को आप्लावित करती है। कलाकार की मानसिक अवस्था विशेष में उसके अवचेतन भाव की गहन पृष्ठ भूमि में न जाने कितनी ज्ञात-अज्ञात प्रेरणायें काम करती हैं, न जाने जीवन के कितने रंग बिरंगे चित्र बनते और बिगड़ते रहते हैं, न जाने कितनी भूली भटकी स्मृतियाँ झलक मारती रहती हैं—तो भी इन सभी विभिन्नताओं और विचित्रताओं में एकता का अनुभव अनिवार्य है। जीवन की विशाल, विराट और संकुल सघनता में भावों के विषय और उनके द्वारा प्रेरित व्यापारों में विभिन्नता होने पर भी एकता, समरसता और एक स्वभावज भावना तो बनी ही रहती है। 'रामचरितमानस' और 'पैराडाइज लॉस्ट' दोनों ही काव्य मनुष्य की भीतरी वृत्तियों का बाह्य प्रकृति के साथ सामञ्जस्य घटित करते हुए उसकी भावात्मक सत्ता के प्रसार का प्रयास करते हैं और दोनों ही अमोघ अमृत घट हाथ में लिए विश्व की व्याधियों का उपचार करने में सतत संलग्न हैं। दोनों में दार्शनिक चिन्तन और कल्याण भावना, उज्ज्वल उदात्त-कल्पना, विलक्षण अनुभूति-क्षमता, अद्भुत काव्य शिल्प और युग युग का शाश्वत सत्य प्रकट हो रहा है। दोनों में निर्मल निर्भ्रान्त जीवन-ज्ञान है और अन्तर्मुख जीवन धारायें अपनी सहज चरमता पर पहुँच गई हैं।

तुलसी और मिल्टन दोनो ने अनन्त सौन्दर्य का साक्षात्कार कर उसके भीतर ही अनन्त शक्ति और लोक-रंजनकारी रूप का दर्शन कराया और दोनों ने लोकोत्तर भाव-भूमि में पैठ सत्स्वरूप का सान्निध्य प्राप्त किया।

अन्तर का समाधान

जिस प्रकार दारुण परिस्थितियों की टकराहट से एक दिन तुलसीदास की मूर्च्छना भंग हुई थी और एकांत शांत गंगा के कछार पर बैठ अपनी अलौकिक काव्य-कल्पना द्वारा उन्होंने अपना सब कुछ अपने आराध्य के चरणों में उडेल दिया था—उसी प्रकार जीवन की विभीषिकाओ में तच कर मिल्टन भी एक दिन गहरे जीवन-द्रष्टा बन बैठे थे और वर्षों से जो एक बृहत् काव्य लिखने की वासना उनके अन्तर में दुराग्रह बन कर समा गई थी—वह अनायास ही अनुस्यूत् हो अमर संगीत-लहरीमें प्रकट हो गई। २३ सितम्बर. सन् १६३७ को मिल्टन ने अपने एक साहित्यिक मित्र को लिखा था, "तुमने मुझसे पूछा है कि आजकल मैं क्या कर रहा हूं और क्या सोच रहा हूं। निश्चय ही अपने को अमर बनाने की लालसा मुझमे है और उसके लिए मै तैयारी कर रहा हूं। अपने पंख जमा रहा हूं, जिससे ऊपर उड़ सकूं, किन्तु अभी मेरे पंख अधिक उभरे नहीं है और बहुत ऊपर अन्तरिक्ष में उड़ने मे मैं अभी असमर्थ हूं।" चार वर्ष पश्चात् अपने उसी मित्र को उन्होने फिर लिखा, "अभी तक भी मैं यह निश्चय नही कर पाया कि अपने व्यापक अध्ययन को कैसे सफल बनाऊं।" अपनी इटली यात्रा मे उन्हें अनेक काव्य-प्रेरणायें मिलीं और उनका संकल्प दिन-दिन दृढ़तर होता गया, किन्तु अब भी काव्य के विषय के चुनाव मे संशय बना रहा। इसके अतिरिक्त एक और कठिनाई थी। उस समय विद्वानो की सम्मानित भाषा लैटिन समझी जाती थी, अतएव मिल्टन के मन मे भी कुछ खींचातानी सी होती रही, किन्तु इस विदेशी और अप्रचलित भाषा के प्रति उनके मन का यह अस्वाभाविक आग्रह अधिक नही चल सका और शीघ्र ही उनका निर्णय अपनी मातृभाषा अंग्रेजी के पक्ष में हुआ। उन्हीं के शब्दो में "अरस्तू का अनुकरण करते हुए मैंने भी यह सकल्प कर लिया है कि अपनी समस्त शक्ति और कला का उपयोग अपनी मातृभाषा को समृद्ध बनाने में ही करूं। केवल पांडित्य-प्रदर्शन ही मेरा ध्येय नही है, क्योकि यह तो अहमन्यता का सूचक होगा। मेरी अपने को टटोलने की वृत्ति है, और इस प्रकार अपनी ही भाषा मे अपने ही सहबन्धुओं के लिए मै उत्तमोत्तम वस्तुओं का विश्लेषक हो सकता हूं। एथन्स, रोम या आधुनिक इटली और ग्रीस देश की प्रतिभाओं ने जो अपने देश की सेवा की है, मै भी क्रिश्चियन होने के नाते अपने देश की सेवा करूंगा। मुझे देश-देशान्तरों मे अमर बनने की अभिलाषा नहीं है, यद्यपि मैं प्रयत्न करने पर

इसमें भी कदाचित् सफल हो सकता था, किन्तु मृत्यु तो ब्रिटेन की सीमित परिधि में गौरवान्वित होने से ही पूर्ण संतोष रहेगा।

सन् १६५२ के पूर्व ही मिल्टन की नेत्र-ज्योति लुप्त हो गई और सब कुछ उनके लिए मानो शून्य में समा गया। किन्तु सहसा इस अंध-तमस में भी नवालोक का उद्भास हुआ और स्थूल चेतना को भेदकर सूक्ष्म चेतना उभर आई। अन्तर्द्वन्द्व की रगड़ खाकर मिल्टन की अनुभूति-शक्ति प्रखर होती गई और भाषा में भी तीव्रता आ गई। आशाओं की राख, जीवन की परिश्रान्ति और कटु अनुभवों ने अंध कवि के चित्त को क्षुब्ध कर दिया, उनकी भावनाओं को मसोस डाला और आत्मिक-संस्कारों को हिला दिया, किन्तु क्रूर नियति का यह निर्मम आघात अभिशाप न बनकर वरदान सिद्ध हुआ और सन् १६५८ में 'पैराडाइज लास्ट' की रचना आरम्भ हुई। मिल्टन के विचारों को लिपिबद्ध करने में उनकी लड़कियों ने सहायता दी और पाँच वर्ष बाद सन् १६६३ में यह ग्रन्थ समाप्त हुआ। दो वर्ष इसे छपने में लगे और सन् १६६७ में यह प्रकाशित हुआ।

तुलसीदास के समक्ष प्रतिकूल परिस्थितियाँ होते हुए भी काव्य के विषय के चुनाव का तो प्रश्न ही नहीं था, क्योंकि उन्होंने बाल्यावस्था में ही राम की कथा सुनी थी और वही उनके जीवन की उपास्य निधि बन गई थी—हाँ भाषा के ऊहापोह में कुछ दिन वे भी पड़े रहे, क्योंकि उन दिनों संस्कृत की ही प्रतिष्ठा थी और देशी भाषा को विद्वानों का सम्मान प्राप्त न था। किन्तु तुलसीदास ने तो अपना 'रामचरितमानस' स्वान्तःसुखाय लिखा था, उन्हें सांसारिक-सम्मान की जरा भी चिन्ता न थी। 'का भाषा का संस्कृत प्रेम चाहिए साँच'—उन्हें लोक प्रचलित भाषा में लिखने की ही अन्तःप्रेरणा हुई और उन्होंने आत्म सुख के लिए भक्ति रस की अजस्र धारा बहाई तथा परोपकार भावना से प्रेरित हो राम-कथा के रहस्यों का उद्घाटन किया।

'रामचरितमानस' और 'पैराडाइज लास्ट' का विषय साम्य

'रामचरितमानस' ज्ञान और भक्ति, प्रवृत्ति और निवृत्ति, जीव और ब्रह्म, लोकज्ञान और तत्त्वज्ञान का अपूर्व सामंजस्य उपस्थित करता है। राम के अनन्त-शक्ति-सौन्दर्य-समन्वित रूप के दर्शन होते हैं, किन्तु उनकी अभिव्यक्ति भी साधारण जीवन में ही कराई गई है। राम ईश्वर हैं, उनका सौन्दर्य अचिन्त्य है, मर्यादा पुरुषोत्तम सामर्थ्य अपूर्व है, उनके गुण-शील-क्रम अनन्त हैं, वे भावग्राही हैं, शूरवीर हैं, सत्यव्रती हैं, शरणागतवत्सल हैं, करुणानिधान हैं। उनकी दृष्टि सब पर समान है। इसी हो

या पुरुष, सशक्त हो या अशक्त, ऊँच हो या नीच, निर्धन हो या धनी, उनके अनुग्रह को प्राप्त करने के लिए रूप, गुण, जाति, प्रतिष्ठा आदि अपेक्षित नही—वे तो केवल भक्तों के भाव के भूखे हैं—'रामहि केवल प्रेम पियारा।' ईश्वरोचित गुणों से युक्त होते हुए भी उन्होने मनुष्य के रूप मे ही पृथ्वी पर अवतार लिया है और आसुरी-शक्तियो को पराजित करना ही उनका ध्येय है। मोहाभिभूत जीव विराट् सृष्टि का एक क्षुद्र चेतन अंश है, वह महातमस और प्रवृत्तियो से इतना घिरा है कि उसके उद्धार के लिए ईश्वरीय-विभूति का अवतरण आवश्यक है। महामोह रूपी रावण, जो प्रवृत्ति रूपी लका मे निवास करता है और घोर अज्ञान एव अहमत्व मे पड़ा है, तथा शक्ति-स्वरूपिणी श्री सीता का सर्वनाश करने पर तुला है—अन्त मे राम रूपी अलौकिक भगवदीय शक्ति का आखेट होता है। जड़ जीव को यथार्थ सत्ता का बोध कराने के लिए तदाकार-परिणति अपेक्षित है। दम्भ, अभिमान, छल, कपट, ईर्ष्या, अविवेक और मन के मैल को विच्छिन्न करने के लिए चिन्मय शक्ति के प्रकाश की किरणें चाहिएं——तभी मोहासक्त जीव को अपने लघुत्व और असामर्थ्य का बोध होगा। इस अखिल-विश्व-ब्रह्माड मे सत्-असत, अन्धकार-प्रकाश, विद्या-अविद्या और धर्म-अधर्म का सदैव द्वन्द्व रहा है। 'रामचरितमानस' मे ब्रह्म के सत्स्वरूप की व्यक्त प्रवृत्ति का मोहासक्त रावण की कुप्रवृत्ति से द्वन्द्व है और जगत् की स्थिति-रक्षा के लिए उसी के आचरण का उत्तरोत्तर विकास दिखाया गया है।

मिल्टन के 'पैराडाइज लास्ट' का प्रतिपाद्य विषय भी मानव और दानव तथा दैवी और आसुरी शक्तियो का द्वन्द्व ही है। प्रकृति की तामसिक शक्तियो से स्वात्म रक्षा की चिन्ता करते हुए भी मनुष्य उसके भयंकर पाश मे आबद्ध हो जाता है और अनेक विषमताओ के मध्य भी वह अपने अस्तित्व को बनाये रखना चाहता है। उसका 'अहम्' अर्थात् उसके मन का शैतान ही उसके पतन का कारण है। अविद्या का आवरण उसके विवेक को अन्धा कर देता है, जिसके कारण वह भवचक्र मे पड़ा रहता है और अभिमान, अहकार, तथा विक्षेपो से घिरा रहता है। जब तक सत्य का चिरंतन स्वरूप उससे अदृष्ट है, जड पदार्थों मे ही उसकी आसक्ति रहती है। मिथ्यात्व का आवरण नष्ट होते ही उसे अपनी आत्मा में सत्य का दर्शन होने लगता है और अन्धकार पर वह आत्म शक्ति के प्रकाश से विजय प्राप्त करता है। 'पैराडाइज् लास्ट' के प्रथम परिच्छेद में नरक की भीषण पापमय यातनाओं का दिग्दर्शन कराया गया है। ईश्वरीय-आदेशो की अवहेलना करने से शैतान और उसके साथी स्वर्गच्युत कर दिये जाते है और वे भीषण अग्नि-कुण्ड की यातनायें झेलते झेलते संज्ञाशून्य और मृतप्राय से पड़े है, किन्तु इस दुरवस्था मे भी उनके मन का

घोर तमस सजग है और उनकी दुर्भिसन्धि प्रवृत्तियाँ सक्रिय और गतिशील हैं। शैतान उठता है और अपने साथियों से मन्त्रणा करके मानव की सद्वृत्तियों का ह्रास करने पृथ्वी लाभ के लिए चल पड़ता है।

'रामचरितमानस' में असुरों की परिभाषा करते हुए तुलसीदास जी लिखते हैं —

कामरूप खल जिनस अनेका । कुटिल भयंकर विगत विवेका ॥
कृपा रहित हिंसक सब पापी । बरनि न जाहिं विश्व परितापी ॥
कामरूप जानहिं सब माया । सपनेहु जिन्ह के धरम न दाया ॥
जेहि विधि होइ धर्म निर्मूला । सो सब करहिं वेद प्रतिकूला ॥
मानहिं मात पिता नहिं देवा । साधुन्ह सन करवावहिं सेवा ॥
जिन्ह के यह आचरन भवानी । ते जानहु निसिचर सब प्रानी ॥

रावण और शैतान दानव हैं, आसुरी शक्तियाँ हैं और दानव का उद्देश्य जड़ता का प्रसार कर दिव्य ज्ञान को आवृत करना है।

'रामचरितमानस' में तुलसीदास भारत की प्राचीन गौरवमयी रामगाथा का वर्णन करते हुए अपने युग से आगे बहुत आगे निकल गये हैं। उन्होंने अपनी अमूर्त आन्तरिक एवं भक्ति-प्लावित भावनाओं का मूर्त, बाह्य एवं लौकिक रूप दे दिया है। सूक्ष्म को स्थूल बना दिया है और अपने महाकाव्य में प्रेम, भक्ति और मर्यादा, लोक पक्ष और अध्यात्म-पक्ष का अपूर्व सामञ्जस्य दिखाया है। 'पैराडाइज लॉस्ट' में मिल्टन ने अपने युग के जातीय भाव एवं भावनाओं को ग्रहण कर अपने काव्य में निरा कवित्व और कल्पना का ही रंग नहीं भर दिया, प्रत्युत् मानव के मूल, विकास और पतन की गाथा, प्रागैतिहासिक काल का सूक्ष्म चित्रांकन, भगवान् द्वारा सृष्टि का प्रसार, दैवी और आसुरी शक्तियों का प्रादुर्भाव, द्वन्द्व, प्रतिस्पर्द्धा, संघर्ष, अन्त में ईश्वरीय-न्याय का उद्घाटन आदि का सफल प्रदर्शन कराया है। सृष्टि के आरम्भ में मानव कितना सरल, निरीह, निष्कपट और भोलाभाला है। वह अपने असली रूप में है। उसमें लज्जा, विशेष मनोविकार, दुर्भावनायें आदि कुछ भी नहीं है। प्रकृति के उन्मुक्त वातावरण में वह अठखेलियाँ करता हुआ स्वच्छन्द विचरण करता है। वह अपनी कोई पृथक् सत्ता नहीं समझता, वरन् उसे पग-पग पर भगवत्कृपा का आभास होता है। वह अपनी वस्तुस्थिति से सुखी है, सन्तुष्ट है और भगवान के प्रति कृतज्ञ है। उसे विराट् विश्व के प्रत्यक्ष से प्रत्यक्ष और गूढ़ से गूढ़ तथ्यों, रहस्यों और अन्तरंग भेदों में घुसने की चिन्ता नहीं है। उसमें क्रोध, घृणा, लोभ,

महत्व, लालसा आदि वासनाजन्य प्रवृत्तियो का अभाव है। वन, पर्वत, नदी, निर्झर, वृक्ष, लता, झाड़ी, पुष्प, आकाश, पृथ्वी और प्रकृति-सुन्दरी के हाथों सजाए निकुंज ही उसके क्रीड़ागार और पशु-पक्षी कीट-पतंगे ही उसके चिर-सहचर है। किन्तु ज्यो ज्यों उसका बौद्धिक विकास होता है, त्यों त्यो उसका जीवन जटिल से जटिल-तर बनता जाता है। वह अपने कर्त्तव्य-पथ से भटक कर नवोत्पन्न उलझनो और बहुरूपी व्यापारों में फंस जाता है। ज्ञान और नवचेतना का स्फुरण होने के साथ-साथ उसका जीवन-क्रम बदल जाता है, विचारो और भावनाओं मे परिवर्तन होता है, भावों के आदिम और सीधे लक्ष्यो के अतिरिक्त वह अपने बुद्धिबल से और-और लक्ष्यों की भी स्थापना करता है, अपनी आसपास की वस्तुओ को भिन्न दृष्टि से देखता है और ऐसे बहुमुखी व्यापारो में फंसता जाता है जो उसे अनैतिकता की ओर ढकेलते है। 'पैराडाइज़ लास्ट' में आदि-पिता आदम और आदि-जननी ईव भी अपनी स्वाभाविक-स्थिति मे चित्रित किये गये है। वे नितात भोले, निश्छल, निष्पाप, प्रकृति-अनुगामी और भगवदीय सत्ता को मानने वाले है। ज्ञान का हलाहल अभी उन्होने नही पीया है और सभ्यता के आवरण भी उनसे दूर है। आदम ईव में अनुरक्त है और ईव आदम को अपना सर्वस्व समझती है। दोनो अत्यन्त सुखी, निश्चिन्त, निर्द्वन्द्व और निर्विकार है। प्रकृति की समरसता का उपभोग करते हुए वे शान्ति का चिर-संगीत सुना करते है, अपने क्रीड़ा-कल्लोलो में स्वर्गीय-सुखों का अनुभव करते है और ईश्वर द्वारा निश्चित कर्तव्य-कर्मो में जुटे हुए मिथ्या-प्रपंचो से दूर है। सर्व प्रथम ईव मे दुष्प्रवृत्तियां घर करती है, उसे अपनी क्षुद्रता का भान होता है और महत्वाकांक्षा जाग्रत होती है। वह आदम से पृथक्, अकेली काम करने जाती है और शैतान की बातो मे फंसकर मनुष्य के लिए ईश्वर द्वारा वर्जित 'ज्ञान के फल' को चख लेती है। मोहवश आदम भी उसका अनुकरण करता है और इस प्रकार वे दोनों स्वर्गीय-सुखो से वंचित होकर सर्वनाश और हाहाकार की ओर लपकते है। इसका परिणाम यह होता है कि उनके जीवन की शान्ति भंग हो जाती है और उनकी अतृप्त वासनाएं विह्वलता और कृत्रिम भावनाओं की उद्भावना करती है। क्षण भर में उनके सोने का संसार छल और प्रवंचना के कारण विलुप्त हो जाता है और वे जन्म भर अनुताप करने के लिए छोड दिए जाते है।

अध्यात्म--पक्ष

तुलसी और मिल्टन की दृष्टि में विश्व की समस्त चेतना का मूलस्रोत परब्रह्म-परमेश्वर है।

रामब्रह्म व्यापक जग जाना । परमानन्द परेस पुराना ॥
विषयकरन सुर जीव समेता । सकल एक तें एक सचेता ॥
सबकर परम प्रकासक जोई । राम अनादि अवधपति सोई ॥
जगत प्रकास्य प्रकासक रामू । मायाधीस ज्ञान गुन धामू ॥

मिल्टन ने भी 'पैराडाइज लास्ट' के तृतीय परिच्छेद में भगवान के दिव्य स्वरूप, उनके चतुर्दिक बिखरे प्रकाश, आलोक-वैभव, राजकीय-सत्ता और सर्वशक्तिमान रूप का दर्शन कराया है। भगवान् का सौन्दर्य और सामर्थ्य कल्पनातीत है। सिंहासन के चारों ओर अलौकिक आभा बिखरी हुई है और समस्त शक्तियाँ कर-बद्ध खड़ी हैं। भगवान् के समीप ही उनके प्रतिबिम्ब रूप पुत्र विराजमान हैं। जिस प्रकार रामचरितमानस में प्रभु को पुत्र रूप में प्राप्त करने के लिए मनु-सतरूपा ने भीषण तपश्चर्या की थी और राम पृथ्वी का भार उतारने के लिए मनुष्य रूप में अवतीर्ण हुए थे, उसी प्रकार मिल्टन के काव्य में आदि पिता आदम और आदि-जननी ईव तथा समग्र मानवता का कल्याण करने वाले भगवान के अंशावतार क्राइस्ट ने जन्म लिया था। क्राइस्ट में भगवदीय शक्ति, शील, सौन्दर्य तीनों का परम अभिव्यक्ति समन्वित होकर प्रकट हुई और अन्धकार में मंगल-ज्योति जगाई। तुलसीदास और मिल्टन दोनों ही अवतारवाद के कायल हैं। जब जब पृथ्वी पर पीड़ा, अन्याय और अत्याचार का बोलबाला होता है, तब तब अन्धकार का पेट फाड़कर आनन्द ज्योति लोकरंजनकारी रूप में फूट पड़ती है। यद्यपि मिल्टन के काव्य में नर के रूप में नारायण की दिव्य-कलाओं का सम्यक् दर्शन जो तुलसीदास के ग्रन्थों में हमें होता है—नहीं मिलता।

ईश्वर और जीव में वस्तुतः कोई भेद नहीं है—जो भेद या पार्थक्य दृष्टिगत होता है वह ज्ञान-अज्ञान का है। जीव माया के वशीभूत है और काल, कर्म व मिथ्या प्रपंचों में फँसा हुआ जन्म मरण के बंधन में पड़ा है।

तव विषम मायावस सुरासुर नाग नर अग जग हरे।
भव पंथ भ्रमत अमित दिवस निसि काल कर्म गुननि भरे॥

'पैराडाइज लास्ट' के पंचम परिच्छेद में रैफल आदम से कहता है—

ओ आदम! वह परम प्रभु ही सर्व शक्तिमान है। उसी से सब उत्पन्न होते और यदि उनकी पवित्रता नष्ट नहीं होती तो उसी में समा जाते हैं।

यहाँ पवित्रता का अर्थ है जीव को ऐसी उच्च मनोभूमि की प्राप्ति जिसमें परम महत्व के सान्निध्य में उसे निरन्तर अपने असामर्थ्य और लघुत्व का पूर्ण बोध होता रहे। प्रभु की अनन्त शक्ति का जितना ही स्थायी संस्कार उसके हृदय में

जमता जायगा उतना ही स्पष्ट साक्षात्कार उसे अपने भीतर होगा और वह 'ज्ञान' के पथ पर अग्रसर होता जायगा। मोह का बंधन कर्म के साधनों से टूटता नही, वरन् और भी दृढ़तर होता जाता है। जीव को जाग्रतावस्था मे तभी समझना चाहिए जबकि उसे सासारिक वासनाओं से विरक्ति और इन्द्रिय-व्यापारो से घृणा हो जाए।

जानिहि तबहि जीव जग जागा। जब सब विषय विलास बिरागा॥

वैषयिक-उपेक्षा

परमार्थ साधन का मार्ग दुर्गम है। मन के अन्तर मे प्रज्वलित ज्ञान-दीप विषय की बयार से प्राय बुझ जाया करता है और इस प्रकार उसके मन का अन्धकार कभी विच्छिन्न नही होने पाता। ज्ञानाभिमानी साधक विषयों मे फंसकर अपना सर्व-नाश कर लेते है।

इन्द्रिन्ह सुरन्ह न ज्ञान सोहाई। विषय भोग पर प्रीति सदाई॥

मनुष्य का सब से प्रबल शत्रु है 'काम', जो उसे सदैव पतनोन्मुख करता है। 'पैराडाइज़् लास्ट' के नवम् परिच्छेद मे मिल्टन ने आदम और ईव मे 'ज्ञान का फल' चखते ही कुत्सित काम-वासनाओं का जाग्रत होना वर्णित किया है, जो उनके सर्वनाश और स्वर्गीय-सुखों से वंचित होने का प्रमुख कारण है।

"मानो एक नई मादकता से मत्त होकर वे दोनों आनन्द-सागर में तैरने से लगे। उनमें ऐसी स्फूर्ति जाग्रत हुई जैसे पंखों पर उड़कर उन्होंने सारी पृथ्वी को नाप कर फेंक दिया हो। उस सर्वनाशी फल के चखते ही अन्य बाह्य-विकारों की अपेक्षा उनमें इन्द्रिय-लिप्सा तीव्र हो उठी। आदम ने ललचाई दृष्टि से ईव को देखा। ईव ने चपल कटाक्षों से उसका स्वागत किया। काम-वासना से उनका शरीर जलने लगा। अन्त में आदम ने ईव को इस प्रकार उत्प्रेरित किया—

'आओ, इतना स्वादिष्ट फल खाकर समयोचित आमोद-प्रमोद में प्रवृत्त हो जायं। शरीर और मन कितना स्वस्थ है। जब से मैंने तुझे देखा और विवाह किया है—तब से आज तक तेरे सौन्दर्य को इतना कामोत्तेजक नहीं पाया। मेरी समस्त इन्द्रियां तुझसे मिलने को आकुल है। इस वृक्ष का गुणकारी फल खाकर तू पहले से बहुत सुन्दर हो गई है।"

ऐसा कहकर अपनी उद्दीप्त कामवासनाओं की पूर्ति के लिए, जिसे कि ईव भलीभांति समझ रही थी और जिसकी आंखें कामाग्नि-वर्षा सी कर रही थीं—वह उसका हाथ पकड़ कर एक जलाशय के किनारे की शीतल, सघन छाया में—

उसे ले गया। उसकी भी अनिच्छा न थी। वहां गुलाब, बेला आदि रंग बिरंगे पुष्पों से आवेष्ठित पुष्पमयी शय्या पृथ्वी की सुन्दरतम गोद में स्थित थी। यहां उन्होंने प्रेमोन्मत्त आनन्द विभोर हो अपने पारस्परिक अपराध और पापों के वर्जित सुखों का तब तक उपभोग किया जब तक कि मादक निद्रा ने उनकी कामजन्य उद्दण्डता से ऊबकर उन्हें अपने में विभोर न कर लिया।"

उपर्युक्त पंक्तियों में काम वासना ही मनुष्य की पतितावस्था की द्योतक है। जो अपने शरीर को ही अपना वास्तविक रूप समझकर इंद्रियों की तृप्ति के लिए विषय वासना की ओर प्रवृत्त होता है उसके लिए सर्वनाश का द्वार खुला खड़ा है। इसका सबसे बड़ा प्रमाण है कि 'पैराडाइज लास्ट' में आदम और ईव को अच्छे बुरे का ज्ञान फल खाने से नहीं होता प्रत्युत काम वासना में प्रवृत्त होने के बाद होता है। सर्व प्रथम उनमें लज्जा का स्फुरण होता है।

'वे सोकर उठे—परिश्रान्त और बेचैन से—प्रत्येक ने एक दूसरे को ध्यानपूर्वक देखा और वे शीघ्र ही समझ गए कि उनकी आंखें कैसे खुलीं और उनके मस्तिष्क कैसे तमसाच्छन्न हैं।"

आदम ईव से कहता है, हमारे मुखों पर हमारे दुष्कृत्य की स्पष्ट कालिमा झलक रही है। शीघ्र ही वे दोनों अपनी नग्नावस्था पर लज्जा जाते हैं और शरीर को कृत्रिम आवरण से ढकने की चेष्टा करते हैं। यहां तक ही बस नहीं है वरन अन्य मनोविकार भी उनमें उत्पन्न होते हैं।

'वे दोनों रोने बैठे गये उनके नेत्रों से केवल अश्रु की झड़ी ही नहीं लगी वरन उनके भीतर मनोविकारों की भीषण आंधी सी उठी—जिससे दुर्दम्य वासनाएं क्रोध घृणा, अविश्वास, संदेह संघर्ष ने उनको अशान्त बना दिया, उनके मस्तिष्क की एकाग्रता और चिरशान्ति को भंग कर दिया।

पैराडाइज लास्ट' में रेफल ने बारम्बार आदम को विषय वासनाओं से दूर रहने का आदेश दिया है।

'ध्यान रखना, ऐसा न हो कि वासनायें तेरे विवेक को आच्छन्न करलें।

नारी निन्दा

कुम्भीनास और मिल्टन—दोनों ही आत्मोन्नति की साधना में विषय-वासना, कामोपभोग और महत्वाकांक्षा अर्थात् स्वतंत्र पूर्ण बनने की अभिलाषा को गर्हित और हेय मानते हैं। यही कारण है कि उन्होंने नारी को विषयोपभोग का साधन बताकर उसकी हमेशा निन्दा की है।

नारि विवस नर सकल गोसाईं, नाचहिं नर मर्कट की नाईं।

और

दीप सिखा सम जुवति तन मन जनि होसि पतंग।
भजहिं राम तजि काम मदु करहिं सदा सतसंग॥

अरण्यकाण्ड मे भगवान् राम ने भक्तिपथ में विलासिता की प्रतीक नारी को त्याज्य और उपेक्षणीय सिद्ध किया है। वे नारद से कहते हैं.—

काम क्रोध लोभादि मद प्रवल मोह कै धारि।
तिन्ह मंह अति दारुन दुखद मायारूपी नारि॥

सुनु मुनि कह पुरान श्रुति संता। मोह विपिन कहुं नारि बसंता॥
जप तप नेम जलाश्रय झारी। होइ ग्रीषम सोषइ सव नारी॥
काम क्रोध मद मत्सर भेका। इन्हहि हरषप्रद वर्षा एका॥
दुर्वासना कुमुद समुदाई। तिन्ह कहं सरद सदा सुखदाई॥
धर्म सकल सरसीरुह वृंदा। होइ हिम तिन्हहि दहइ सुखमंदा॥
पुनि ममता जवास वहुताई। पलुहइ नारि सिसिर रितु पाई॥
पाप उलूक निकर सुखकारी। नारि निविड़ रजनी अंधियारी॥
बुधि वल सील सत्य सव मीना। वनसी सम त्रिय कहहिं प्रवीना॥

अवगुण मूल सूलप्रद प्रमदा सव दुख खानि।
ताते कीन्ह निवारन मुनि मैं यह जिय जानि॥

नारी परावलम्विनी और पुरुष की अपेक्षा कम सामर्थ्य वाली होने के कारण इन दोनो महाकवियो की दृष्टि मे सदैव दैन्य और कारुण्य प्रधान है, अतएव लोक-मर्यादा की रक्षा के लिये उसे पुरुष के अधीन होना चाहिये। स्वतंत्रता और स्वेच्छाचारिता उसके लिये सर्वथा घातक है।

"जिमि स्वतन्त्र भए विगरहिं नारी"

और "अवला अवल सहज जड़जाती" तथा तुलसीदास की यह प्रसिद्ध उक्ति "ढोल, गँवार, शूद्र, पसु नारी। सकल ताड़ना के अधिकारी॥"

'पैराडाइज् लास्ट' मे मिल्टन ने भी पुरुष को विवेकी और पुरुषार्थ प्रधान एव नारी को स्वाभाविक - चंचल, भावुक और अस्थिर - चित्तवाली चित्रित किया है। अपनी अत्यधिक भावुकता के कारण वह विवेकपूर्ण और कठिन कार्यों के उत्तर-दायित्व को नही संभाल सकती - यदि संभाले भी तो उसे पुरुष का ही आश्रय खोजना पड़ेगा। नारी विषय-प्रधान है और पुरुष विवेक-प्रधान—दोनो में आग-पानी का सा

विरोध है। विषयवासना का आधिक्य होने से नारी द्वारा सहज ही मर्यादा का उल्लंघन हो जाया करता है जिस पर लोक मर्यादा की दृष्टि से नियंत्रण वाञ्छनीय है। 'पैराडाइज़ लास्ट' में सर्व प्रथम ईव का पतन होता है तत्पश्चात् आदम का—वह भी अज्ञान या भुलावे में पड़ कर नहीं वरन् ईव के प्रति उसकी गहरी प्रेमासक्ति और स्त्रैणपन के कारण।

इसके अतिरिक्त ईश्वर द्वारा नारी का निर्माण भी इस ढंग से हुआ है जिसमें ईव की अपेक्षा आदम को ही प्रमुखता प्रदान की गई है।

"उन दोनों में स्त्री-पुरुष के जातीय विभेद के कारण अनेक विषमतायें थीं। आदम विवेक, शक्ति और सामर्थ्य का प्रतीक था, ईव सौंदर्य, कोमलता और मधुर आकर्षण की साक्षात् प्रतिमा सी ज्ञात होती थी। आदम का सर्वस्व ईश्वर था, ईव आदम को ही अपना सर्वस्व और ईश्वर मानती थी। आदम का सुन्दर प्रशस्त ललाट और चमकते नेत्र ओज व सुशासन के सूचक थे। उसके सिर के बाल दो लटों में विभक्त होकर उसके विशाल कंधों तक इतस्ततः लटक गये थे। ईव के रेशम की भांति चिकने, सुनहले और अत्यन्त लम्बे बाल सघन होकर उसकी क्षीण कटि तक लहरा रहे थे और लता के मुड़े हुए कोमल अग्रभागों की भांति उलझ कर उनमें घुंघराली लहरें पड़ गई थीं, जो उसकी परवशता की द्योतक थीं, किन्तु उसे प्रेम और प्रतिदान से ही जीता जा सकता था, वह भी लजीली शर्मीली और गर्वीली भावना से—इच्छा और अनिच्छा का प्रदर्शन करती हुई—सब कुछ उसे दे देने को तत्पर थी।"

आदम ईव की अल्पज्ञता से अनभिज्ञ न था, वह भी अपने हीन पद को तिरस्कार न समझ अपना परम सौभाग्य मानती थी क्योंकि सौम्य, शील, संकोच-सम्पन्ना होकर ही वह पुरुष से प्रेम और प्रशंसा की अत्यधिक प्रत्याशा रखती थी। एक स्थल पर ईव आदम से कहती है —

"ओ तुम! जिसके लिये और जिससे मेरा निर्माण हुआ है, जिसके प्राण और शरीर का ही मैं दूसरा भाग हूँ, जो मेरा स्वामी, सहचर और पथ-प्रदर्शक है, जिसके बिना मेरी कोई गति नहीं। निस्सन्देह, तुम्हारा कथन सर्वथा सत्य और अभिनन्दनीय है। हमें उठते बैठते ईश्वर को स्मरण करना चाहिये और अहर्निश उसके प्रति कृतज्ञ रहना चाहिये, क्योंकि उसकी कृपा से ही तुम मुझे प्राप्त हुए हो, जिसे मैं ढूंढने पर भी कहीं अन्यत्र न पा सकती थी।"

वह स्वतः निर्वल होते हुए भी आदम के सम्पर्क से सवल और शक्तिशालिनी हो गई थी - मानो—"पुरुषत्व ने सौन्दर्य पर विजय पाई और ज्ञान ने कोमलता को जीत लिया ।"

एक अन्य स्थल पर ईव आदम से कहती है, "मेरे प्राणधन ! मेरे स्वामी ! जो तुम आज्ञा करोगे वही विना किसी हिचकिचाहट के मान लूगी, क्योकि ऐसा ही ईश्वरादेश है । ईश्वर का आदेश तुम्हारे लिये और तुम्हारा आदेश मेरे लिये है ।"

किन्तु हीन पद और कम सामर्थ्य वाली होते हुए भी नारी की सब से बडी शक्ति है कि पुरुष उसके विना रह नही सकता । सशक्त होता हुआ भी वह उसके प्रेमपाश मे आवद्ध है सवल होता हुआ भी नितान्त निर्वल है और स्वामी होता हुआ भी उसका तुच्छ दास है । दशरथ और केकैयी के प्रसग मे तुलसीदास लिखते है—

कोप भवन सुनि सकुचेउ राऊ । भयवस अगहुड़ परइ न पाऊ ॥
सुरपति वसहिं वांहवल जाके । नरपति सकल रहहिं रुख ताके ॥
सो सुनि तिय रिस गयउ सुखाई । देखहु काम प्रताप बड़ाई ॥
सूल कुलिस असि अँगवनि हारे । ते रतिनाथ सुमन सर मारे ॥

'पैराडाइज़ लास्ट' में रेफल के वार वार सचेत करने पर भी आदम जानवूझ कर ईव की प्रेमासक्ति के कारण पतन के गर्त मे गिरता है और इस प्रकार स्वेच्छा से सारी मानवता के लिये मृत्यु का आह्वान करता है । महत्वाकाक्षिणी ईव जव उसे ज्ञान का फल चखने के लिये देती है तो 'पृथ्वी उसके रूप की मोहिनी पर कांप उठती है और प्रकृति आन्तरिक अनुताप से कराहती और अश्रु-विमोचन करती है ।" आदम के पतन के पश्चात् ईश्वर निम्नलिखित कठोर शव्दो मे उसकी भर्त्सना करते है·—

"क्या वह तेरी ईश्वर थी, जो तूने ईश्वरादेश की अवहेलना कर उसका आदेश माना, अथवा वह तेरी पथ-प्रदर्शक, गुरु और तुझसे महान् थी । छिः ! तूने अपने पुरुषार्थ को उसके मोह में पड़ कर खो दिया । ईश्वर ने उसके संरक्षण का भार तुझे सौंपा था, उसके ऊपर तेरा प्रभुत्व स्थापित किया था, तुझसे और तेरे खातिर ही उसका निर्माण किया था । तेरा गुण और महत्ता तो उससे भी बड़ी थी, फिर क्यों तू उसके चक्कर में पड़ा । उसका सौन्दर्य और रूपाकर्षण, जो तेरे मनोरंजन और उपभोग के लिए था—तेरे लिए जीवन का जंजाल बन गया ।"

नि.सन्देह, उच्छृंखल और स्वेच्छाचारिणी नारी समस्त पापो की जड़ है । सती-स्त्री की शुचिता और उज्जवल चरित्र मे तो कोई संशय ही नही, किन्तु जब

विराम है। विषयवासना का आधिक्य होने से नारी द्वारा सहज ही मर्यादा का उल्लंघन हो जाया करता है जिस पर लोक मर्यादा की दृष्टि से नियंत्रण वाञ्छनीय है। 'पराडाइज लास्ट' में सर्वप्रथम ईव का पतन होता है तत्पश्चात् आदम का—वह भी अज्ञान या भुलावे में पड़कर नहीं वरन् ईव के प्रति उसकी गहरी प्रेमासक्ति और स्त्रैणपन के कारण।

इसके अतिरिक्त ईश्वर द्वारा दोनों का निर्माण भी इस ढंग से हुआ है जिस में ईव की अपेक्षा आदम को ही प्रमुखता प्रदान की गई है।

"उन दोनों में स्त्री-पुरुष के जातीय विभेद के कारण अनेक विषमतायें थीं। आदम विवेक, शक्ति और सामर्थ्य का प्रतीक था, ईव सौन्दर्य, कोमलता और मधुर आकर्षण की साक्षात् प्रतिमा सी ज्ञात होती थी। आदम का सर्वस्व ईश्वर था, ईव आदम को ही अपना सर्वस्व और ईश्वर मानती थी। आदम का सुन्दर प्रशस्त ललाट और चमकते नेत्र ओज व सुशासन के सूचक थे। उसके सिर के बाल दो लटों में विभक्त होकर उसके विशाल कंधों तक इतस्ततः लटक गये थे। ईव के रेशम की भांति चिकने, सुनहले और अत्यन्त लम्बे बाल सघन होकर उसकी क्षीण कटि तक लहरा रहे थे और लता के मुड़े हुए कोमल अग्रभागों की भांति उलझ कर उनमें घुंघराली लहरें पड़ गई थीं जो उसकी परवशता की द्योतक थीं किन्तु उसे प्रेम और प्रतिदान से ही जीता जा सकता था, वह भी लजीली शर्मीली और गर्वीली भावना से—इच्छा और अनिच्छा का प्रदर्शन करती हुई—सब कुछ उसे दे देने को तत्पर थी।'

आदम ईव की अल्पज्ञता से अनभिज्ञ न था वह भी अपने हीन पद को तिरस्कार न समझ अपना परम सौभाग्य मानती थी क्योंकि सौन्दर्य शील, संकोच-सम्पन्ना होकर ही वह पुरुष से प्रेम और प्रशंसा की अत्यधिक प्रत्याशा रखती थी। एक स्थल पर ईव आदम से कहता है—

"ओ तुम! जिसके लिये और जिससे मेरा निर्माण हुआ है, जिसके प्राण और शरीर का ही मैं दूसरा भाग हूँ, जो मेरा स्वामी, सहचर और पथ प्रदर्शक है, जिसके बिना मेरी कोई गति नहीं। निस्सन्देह, तुम्हारा कथन सर्वथा सत्य और अभिनन्दनीय है। हमें उठते बैठते ईश्वर को स्मरण करना चाहिये और अहर्निश उसके प्रति कृतज्ञ रहना चाहिये, क्योंकि उसकी कृपा से ही तुम मुझे प्राप्त हुए हो, जिसे मैं ढूंढने पर भी कहीं अन्यत्र न पा सकती थी।"

वह स्वतः निर्बल होते हुए भी आदम के सम्पर्क से सबल और शक्तिशालिनी हो गई थी - मानो—"पुरुषत्व ने सौन्दर्य पर विजय पाई और ज्ञान ने कोमलता को जीत लिया ।"

एक अन्य स्थल पर ईव आदम से कहती है, "मेरे प्राणधन ! मेरे स्वामी ! जो तुम आज्ञा करोगे वही बिना किसी हिचकिचाहट के मान लूगी, क्योकि ऐसा ही ईश्वरादेश है । ईश्वर का आदेश तुम्हारे लिये और तुम्हारा आदेश मेरे लिये है ।"

किन्तु हीन पद और कम सामर्थ्य वाली होते हुए भी नारी की सब से बड़ी शक्ति है कि पुरुष उसके बिना रह नही सकता । सशक्त होता हुआ भी वह उसके प्रेमपाश मे आवद्ध है सबल होता हुआ भी नितान्त निर्बल है और स्वामी होता हुआ भी उसका तुच्छ दास है। दशरथ और केकैयी के प्रसंग में तुलसीदास लिखते हैं—

कोप भवन सुनि सकुचेउ राऊ । भयवस अगहुड़ परइ न पाऊ ।।
सुरपति बसहि बांहबल जाके । नरपति सकल रहहिं रुख ताके ।।
सो सुनि तिय रिस गयउ सुखाई । देखहु काम प्रताप बड़ाई ।।
सूल कुलिस असि अँगवनि हारे । ते रतिनाथ सुमन सर मारे ।।

'पैराडाइज़ लास्ट' मे रेफल के बार बार सचेत करने पर भी आदम जानबूझ कर ईव की प्रेमासक्ति के कारण पतन के गर्त में गिरता है और इस प्रकार स्वेच्छा से सारी मानवता के लिये मृत्यु का आह्वान करता है । महत्वाकांक्षिणी ईव जब उसे ज्ञान का फल चखने के लिये देती है तो 'पृथ्वी उसके रूप की मोहिनी पर कांप उठती है और प्रकृति आन्तरिक अनुताप से कराहती और अश्रु-विमोचन करती है ।" आदम के पतन के पश्चात् ईश्वर निम्नलिखित कठोर शब्दो में उसकी भर्त्सना करते है.—

"क्या वह तेरी ईश्वर थी, जो तूने ईश्वरादेश की अवहेलना कर उसका आदेश माना, अथवा वह तेरी पथ-प्रदर्शक, गुरु और तुझसे महान् थी । छिः ! तूने अपने पुरुषार्थ को उसके मोह में पड़ कर खो दिया । ईश्वर ने उसके संरक्षण का भार तुझे सौंपा था, उसके ऊपर तेरा प्रभुत्व स्थापित किया था, तुझसे और तेरे खातिर ही उसका निर्माण किया था । तेरा गुण और महत्ता तो उससे भी बड़ी थी, फिर क्यों तू उसके चक्कर में पड़ा। उसका सौन्दर्य और रूपाकर्षण, जो तेरे मनोरंजन और उपभोग के लिए था—तेरे लिए जीवन का जंजाल बन गया ।"

नि.सन्देह, उच्छृंखल और स्वेच्छाचारिणी नारी समस्त पापों की जड़ है । सती-स्त्री की शुचिता और उज्जवल चरित्र में तो कोई संशय ही नहीं, किन्तु जब

वह सुपथ का परित्याग कर कुमार्ग पर चलती है तो उसका रूप अत्यन्त भयंकर और विध्वंसकारी हो जाता है।

> काह न पावक जारि सक का न समुद्र समाइ।
>
> का न करै अबला प्रबल केहि जग काल न खाइ॥

यही कारण है कि नारी की इस प्रचण्ड शक्ति के प्रति इन दोनों धर्मनिष्ठ महाकवियों का हृदय कभी कभी विक्षुब्ध और भीषण अट्टहास कर उठा है।

काव्य—सौष्ठव

'रामचरितमानस' और 'पैराडाइज लास्ट' की सब से बड़ी विशेषता यह है कि इन दोनों में महाकाव्य के स्वरूप का पूर्ण विकास और इतिवृत्त, वस्तु व्यापार-वर्णन, भावव्यंजना और संवाद आदि काव्य के भीतरी अवयवों का समुचित समाहार मिलता है। रचना-कौशल, प्रबंधपटुता, कथानक का विस्तार, प्रकृति की अनेकरूपता और कतिपय मार्मिक स्थलों के विस्तार के साथ साथ विचारों की उदात्तता, रस-परिपाक तथा जीवन के व्यापक-क्षेत्र से रागात्मक तत्वों का संघटित कर सुन्दर, सशक्त भाषा में उनकी अभिव्यंजना हुई है। इतिवृत्त का तारतम्य कहीं विशृंखल नहीं होने पाया है और काव्य के दो प्रमुख पक्ष—अनुभूति-पक्ष और अभिव्यक्ति-पक्ष का सुन्दर सामंजस्य हुआ है। दोनों काव्यों में हृदय की सरसता तो सन्निहित है ही—वाग्वदग्ध्य भी प्रचुर मात्रा में मिलता है और सामयिक रुचि को रंजित करने वाले गुण भी वर्तमान हैं। चुन चुन कर ऐसे स्थलों का विस्तार किया गया है जो हृदय-स्पर्शी और मानवीय भावनाओं को विलोड़ित करने वाले हैं। 'रामचरितमानस' में विवाह के पूर्व राम-सीता का परस्पर दर्शन, राम वनवास, दशरथ की मृत्यु, भरत का अनुताप, अरण्य-पथ में सीता और ग्रामीण-नारियों का वार्तालाप, राम का विरह रुदन, श्री हनुमान और वानरों की भक्ति, लक्ष्मण-मूर्छा आदि प्रसंगों का विस्तृत चित्रण हुआ है। 'पैराडाइज लास्ट' में ईव की क्षमा-याचना का निम्नलिखित दृश्य कितना करुण हो उठा है—

> "आदम! मेरा इस प्रकार परित्याग मत करो। भगवान् साक्षी है—तुम्हारे प्रति मेरा कितना गहरा अनुराग और श्रद्धा है। अनजाने में मैंने तुम्हें रुष्ट किया है और दुर्दैव द्वारा मैं छली गई हूँ। मैं तुम्हारे चरणों में गिर कर तुम्हारे अनुग्रह की भीख मांगती हूँ। मुझे छोड़ो नहीं, मेरा आश्रय और कहाँ है? तुम्हारी कृपा दृष्टि, तुम्हारी सहायता और तुम्हारा पथ-प्रदर्शन ही मेरा सम्बल है। तुम्हीं मेरी शक्ति और जीवन की पूंजी हो। तुमसे बिछुड़ कर मैं कहाँ

जाऊंगी, कैसे रहूँगी। जब तक हम जीवित है, तब तक इस थोड़े से अवकाश को छोड़ कर—हम शान्ति लाभ करें।

रोते रोते उसने अपना वक्तव्य समाप्त किया। उसकी दयनीय स्थिति पर आदम द्रवीभूत हो उठा, उसका हृदय हिल गया। कुछ क्षण पूर्व ही जो उसकी प्राणप्रिया और जीवन सहचरी थी - वह अब दारुण शोक मे डूबी हुई उसके चरणो मे पड़ी उसके प्रेम की भीख मांग रही थी। अपूर्व सुन्दरी और कोमलांगी हो कर भी वह उसकी कृपा पर निर्भर थी। वह ही उसका पथ-प्रदर्शक और सहायक था, जिसे कि उसने भूल से नाराज कर दिया था, किन्तु जिसके बिना उसका एक हाथ मानो टूटा हुआ था। उसका क्रोध शीघ्र ही शान्त हो गया और प्रेम भरे शब्दो में उसने उसे आश्वासन देना प्रारम्भ किया।"

भाषा

इन दोनों महाकवियो की भाषा अत्यन्त परिमार्जित, प्रौढ और व्यवस्थित है और पद-विन्यास व अलकार-योजना भी अपने ढंग की बेजोड़ है। तुलसीदास की विशेपता है कि उन्होने अपनी भाषा मे संस्कृत-शब्दावली का दूध-पानी का सा अपूर्व मिश्रण किया है और प्रसंगानुकूल कही उनकी भाषा सरल, कही अत्यन्त गरिमामयी, कहीं अत्यधिक चिन्तन करते हुए गूढ़ और अंतर्मुखी होती गई है। व्यर्थ के शब्दाडम्बर और वाग्जाल मे वे कही नही उलझे है और अलकारो की योजना भी इस ढग से हुई है कि वे अपनी अलग चमक-दमक न दिखा कर भाव-व्यंजना में सहायक होते है। मिल्टन की भाषा परिमार्जित और ठोस होते हुए भी कही कही क्लिष्ट और अस्वाभाविक हो गई है तथा होमर, दाते आदि महाकवियो की काव्य-पद्धति का अनुकरण करने से उसमे लैटिन आदि विदेशी शब्दो का बाहुल्य और दुरूहता आ गई है। मिल्टन ने अपने काव्य की रचना मुक्तक छन्द मे की है, तुलसीदास ने तत्कालीन प्रचलित सभी काव्य-शैलियो को अपनाया है। मिल्टन की रस-धारा कभी टकराती, अवरुद्ध होती, बंधी हुई सी चलती है—तुलसीदास मे छलकता रस-प्रवाह है, जिसके अमृतमय रस-कणों का आस्वादन कर पाठक विचित्र आनंदानुभूति से भर जाता है। मिल्टन में एकागिता है, तुलसीदास मे सर्वांग पूर्णता। मिल्टन के काव्य में वैयक्तिकता अधिक है, तुलसीदास के काव्य में सामाजिक-सद्भावना की प्रचुरता है। मिल्टन मे भावो की परिशुद्धि और ईश्वरीय-न्याय की रक्षा की गई है। तुलसीदास मे ईश्वर-भक्ति और सासारिक-उपरामता पर जोर दिया गया है। मिल्टन की प्रवृत्ति भीतर से बाहर की ओर है, तुलसीदास की बाहर से भीतर की ओर। मिल्टन मे आत्महित-भावना निहित है, तुलसीदास में लोक-हित भावना

विश्लेषण, विकल्प या विज्ञान से नही है। वह श्रेयमयी प्रेय रचनात्मक ज्ञान-धारा है। – –'– आत्मा की मनन शक्ति की वह असाधारण अवस्था, जो श्रेय सत्य को उसके मूल चारुत्व में सहसा ग्रहण कर लेती है, काव्य मे संकल्पात्मक मूल अनुभूति कही जा सकती है।"

सत्काव्य के सृजन के लिये मानव जीवन की चित्य वातो और जगत् के नाना रहस्यों का जितना ही काव्यकार को ठोस ज्ञान और प्रगाढ़ अध्ययन होगा - उसकी कृति में उसके विचार उतने ही परिमार्जित और पुष्ट हो कर निकलेगें। जीवन की व्यापकता और उसकी सफल अभिव्यक्ति ही साहित्य और कला की चिरंतन चेष्टा है, जिसमें आत्मा का सत्य और सौन्दर्य मिलकर शिवरूप हो मानव-कल्याण करता है। तुलसीदास जीवन के कवि हैं - उनके 'रामचरितमानस' मे मानव की अन्तर्वृत्तियो को स्पर्श करने की शक्ति है—यही कारण है कि 'मानस' जनता के जीवन में घुल मिल गया है और उनकी शाश्वत अनुभूतियो का दिग्दर्शन कराता है। तुलसीदास जिस प्रकार जीवन के अंधकारपूर्ण रहस्यो का उद्घाटन करने मे सिद्ध-हस्त है - उसी प्रकार मानव की कोमल अन्तर्वृत्तियो के निरूपण में भी निपुण है- किन्तु मिल्टन की कला मे चिरतन सत्य का सुन्दर सम्मिश्रण होते हुए भी मानव जीवन के आदर्शो, भावनाओ, अन्तर्जगत् और वहिर्जगत् की विभिन्न समस्याओं का पूर्ण समाधान नहीं मिलता। उनकी वाग्धारा परिमित परिधि मे प्रवाहित होती है और जीवन के उन उच्च स्तरो को स्पर्श नही करती, जहा मनुष्य आनन्द विभोर हो पुलकित हो उठता हैं। अंग्रेजी समीक्षक वेली ने एक स्थल पर लिखा है,"मिल्टन की प्रवृत्ति सर्वसाधारण के छोटे-मोटे कामो मे घुसने की कभी न हुई।" डाक्टर जानसन लिखते हैं, "मिल्टन ने कभी मानव प्रकृत्ति का अध्ययन नही किया। चरित्रों की छाया से भी वे दूर रहे और अन्तर्द्वन्द्व, जीवन-संघर्ष, परेशानियो और उलझनो में भी वे कभी न उलझे। उन्होने पढ़ा वहुत अधिक था और पुस्तकें जो उन्हे सिखा सकती थी-वही उन्होने जाना और समझा। ससारी लोगो से वे वहुत कम मिलते थे- अतएव अनुभव द्वारा प्राप्त ज्ञान की उनमे सदैव कमी रही।"

मिल्टन में उच्च कोटि की प्रतिभा, उच्च कोटि की कल्पना और भावगाम्भीर्य होते हुए भी विचारो की सदाशयता और सुवोधता न थी। उनके काव्य में उनका गम्भीर - चिन्तन अंट नही सका, वह अवरुद्ध हो कर पनपने से रह गया। जिन ग्रीक एव लैटिन महाकवियो के अनुकरण पर वे अपने काव्य की रचना करना चाहते थे, जिन जिन पद-योजना और विशिष्ट उपमा-उत्प्रेक्षाओ की सहायता से वे अपनी भाषा को गम्भीर व ठोस वनाना चाहते थे - उसके अनुरूप अंग्रेजी भाषा

तब तक समझ और विकसित न हुई थी फलतः उनकी गम्भीर कल्पना, मार्मिक उद्गार और घनीभूत चिन्तन का भार सम्हालने में वह असमर्थ सी रही, जिसका परिणाम यह हुआ कि सब साधारण का मिल्टन का पेराडाइज लास्ट कभी उतना प्रिय न हुआ जितना कि तुलसीदास का 'रामचरितमानस' भारत में सभी के गले का हार बन गया।

तुलसी-ग्रन्थावली में पं० रामचन्द्र शुक्ल लिखते हैं —

'तुलसी के 'मानस' से रामचरित की जो शील-शक्ति और सौन्दर्यमयी स्वच्छ धारा निकली उसने जीवन की प्रत्येक स्थिति के भीतर पहुँच कर भगवान् के स्वरूप का प्रतिबिम्ब झलका दिया। रामचरित की इसी जीवन-व्यापकता ने तुलसी मन की वाणी को राजा रंक, धनी दरिद्र, मूर्ख पण्डित सब के हृदय और कण्ठ में सब दिन के लिए बसा दिया। किसी श्रेणी का हिन्दू हो वह अपने प्रत्येक जीवन में राम को साथ पाता है—सम्पत्ति में, विपत्ति में, घर में, वन में, रणक्षेत्र में, आनन्दोत्सव में, जहाँ देखिये—वहीं राम। गोस्वामी जी ने उत्तरापथ के समस्त हिन्दू जीवन को राममय कर दिया। गोस्वामी जी के वचनों में हृदय को स्पर्श करने की जो शक्ति है वह अन्यत्र दुर्लभ है। उनकी वाणी की प्रेरणा से आज हिन्दू जनता अवसर के अनुसार सौन्दर्य पर मुग्ध होती है, महत्त्व पर श्रद्धा करती है, शील की ओर प्रवृत्त होती है, सन्मार्ग पर पैर रखती है, विपत्ति में धैर्य धारण करती है, कठिन कर्म में उत्साहित होती है, दया से आर्द्र होती है, बुराई पर ग्लानि करती है, शिष्टता का अवलम्बन करती है और मानव जीवन के महत्त्व का अनुभव करती है।

तुलसीदास का आदर्श राम-कथा का प्रचार कर समग्र मानवता की सेवा करना था किन्तु मिल्टन का जीवन की बिखरी हुई वस्तुओं से कभी उद्धार न हुआ। उन्होंने कल्पना के उच्च शृंग से नीचे झाँक कर तो देखा किन्तु उनकी दृष्टि वहाँ कभी रमने न पाई - तो भी जो उनकी भाषा और शैली, दार्शनिक चिन्तन और गम्भीर विचार धारा के मर्म में पैठ चुका है वह सुगमता से वहाँ दबे रत्नों का अन्वेषण कर सकता है।

टालस्टॉय और टैगोर

श्री रवीन्द्रनाथ टगोर

जन्म—सन १८६१
मृत्यु—सन १९४१
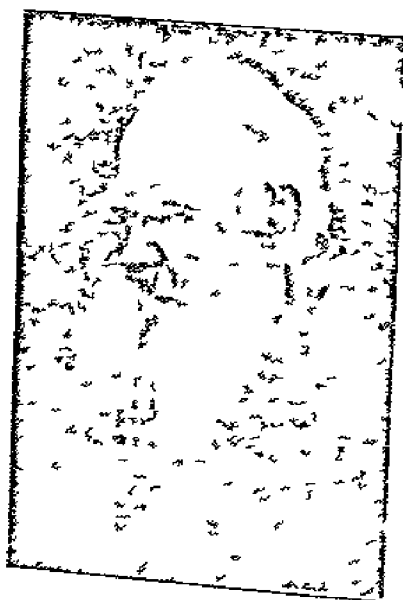
रूस के कलाकार
काउण्ट लियो निकोलविच टालस्टाय

जन्म—सन १८२८
मृत्यु—सन १९१०

विराट्-साक्षात्कार से रंजित महाकवि की कल्पना विस्मय-विमुग्ध जब चिरंतन सत्य के दर्शन में खो जाती है तो उस के हृदय में क्षण-प्रतिक्षण भाव-ऊर्मियों का उद्वेलन होता है - वह सहसा गा उठता है:—

निभृत ए चित्त माझे निमेषे निमेषे बाजे
जगतेर तरंग आघात
ध्वनित हृदये ताइ मुहुर्त्त विराम नाइं
निद्राहीन सारा दिन रात।
ए चिर जीवन ताइ आर किछू काज नाइ
रचि' शुधू असीमेर सीमा
आशा दिये भाषा दिये ताहे भालवासा दिये
गड़े' तुलि मानसी-प्रतिमा।

'पल-पल मे इस शून्य हृदय मे जगत् की तरंगों का आघात टकरा रहा है। उसी की प्रतिध्वनि सुन पडती है - क्षण भर का विश्राम नही - अहर्निश पलक झांपने को भी नहीं मिलता। जीवन की इन लम्बी, दुरूह घड़ियो मे और कुछ काम नही। निस्सीम को सीमा में बाधना है—आशा, भाषा और हृदय के सद्भाव अर्पण कर एक मानसी प्रतिमा का निर्माण करते रहना है, उसी की सृष्टि करनी है।'

कवि आंखे फाड़ कर देखता है। उसके समक्ष दूर - बहुत दूर तक प्रकृति का विराट् वैभव बिखरा पड़ा है। हरीतिमा मे ओतप्रोत प्रकृति-बाला का लहलहाता परिधान, धूल के धवल-कणो पर बिखरी स्वर्णिम किरणे उसके आभरण से प्रतीत होते है। सौन्दर्य-विभोर कवि आश्चर्य से भर जाता है। प्रणय के अनिर्वचनीय भाव-बंध को, अतस्तल के चिर प्रसुप्त भाव-पटलों को झकझोरने वाली यह कौन ? वह अवाक् सा प्रश्न कर बैठता है और अणु अणु के साथ उसकी अनुभूति समरूप हो झंकृत हो उठती है:—

ना जानि केनरे एतदिन परे
जागिया उठिल प्राण
ओरे, उथिल उठेछे वारि

ओरे, प्राणेर वासना प्राणेर आवेग
रुधिया राखित नारि ।

न जाने क्या इतने दिनों पश्चात् मेरे प्राण जाग उठे हैं, भाव-वारि तरंगित हो रहा है। प्राणों की वासना, आशा व आवेग को रोक रखने में समर्थ नहीं हो रहा है ।

अनादि काल से आत्मैक्य के लिए मानव-मन में गहरी उथल-पुथल है। वह स्पर्शोल्लास दुष्प्राप्य अगाध और गम्भीर अनन्त में लीन होकर उसकी थाह पाने के लिए आतुर है। नीरव हृदय में स्निग्ध वातायन कभी प्रेम और आनन्द की रसमयी धारा को उद्वेलित कर जाती है और तब हृदय-ग्रन्थि परिधियों को तोड़ कर महाकवियों की वाणी अन्तर्जगत् के भावों का अनुसरण करती हुई परस्पर टकरा जाती है।

बचपन

२८ अगस्त सन् १८२८ में रूस की धरती पर यासनाया पाल्याना ग्राम में एक सुन्दर गौरवर्ण प्रतिभा-सम्पन्न बालक ने जन्म लिया था जो कालान्तर में रूस का ही नहीं प्रत्युत् विश्व-साहित्य को गौरवान्वित करने वाला लेखक सिद्ध हुआ। बालक टाल्स्टाय (जिनका कि पूरा नाम काउन्ट लियो निकोलिविच टाल्स्टाय था) दो वर्ष का भी न होने पाया था कि माता का देहान्त हो गया और पिता व नौकरों के संरक्षण में उनका लालन-पालन होने लगा। बाल्यावस्था की धुंधली स्मृतियों में एक कटु अनुभूति जो उन्होंने कभी तीव्रता से अनुभव की होगी टाल्स्टाय ने अपनी पुस्तक 'संस्मरण (Recollections)' में लिखा है कि किस प्रकार नर्स स्नान कराते हुए टब में बैठा कर उनके कोमल अंगों को जोर से रगड़ती उनके शरीर को झकझोरती और फिर उष्ण जल को साबुन से किरकिरा बदन पर छोड़ती थी। कभी वह उन्हें डराने धमकाने की गरज से भयानक जन्तुओं का नाम ले देती और तब उनका कोमल हृदय भय से कांप उठता। टाल्स्टाय ने अपने फेमिली ट्यूटर के सम्बन्ध में भी उद्‌गार व्यक्त किये हैं और तत्कालीन शिक्षा प्रणाली की निन्दा की है। उन्होंने लिखा है कि तथ्य की शिक्षा प्राप्त करते हुये यदि भूलें भी पर लड़खड़ा जाते थे अथवा अभ्यास की कमी से ठीक न पढ़ते थे तो जोर से सनसनाती ट्यूटर की छड़ी पड़ती थी जिससे नितान्त कष्ट होता था और आंखों में आंसू बह निकलते थे।

मधुर स्मृतियों में सब से मधुर स्मृति थी टाल्स्टाय को अपनी स्नेहमयी जननी की, जिसकी प्यारी याद उनके जीवन की अमूल्य निधि थी। मां की मृत्यु के

पश्चात् जो एक कल्पित तस्वीर टालस्टाय ने अपने मानस में खीचीं थी वह थी अलौकिक आध्यात्मिक प्रकाश से पूर्ण और दैवी-गुणो से सम्पन्न आदर्श मां की तस्वीर–जिससे उनकी आत्मा का लगाव था और जिसने जीवन-पर्यन्त उनमे शक्ति और स्फूर्ति भरी थी। टालस्टाय ने अपनी मा के सम्बन्ध मे नौकरो और सम्बन्धियो से वहुत कुछ सुना था, उसकी लिखी हुई डायरी और पत्रो को पढ़कर भी उन्हें काफी जानकारी हो गई थी, किन्तु सवसे वड़ी खुशी थी टालस्टाय को इस वात की-कि उनकी मां का कोई चित्र नही है क्योकि उनकी वास्तविक मा कदाचित् उतनी महान् न हो जैसी कि उनकी कल्पना की मां थी।

अपनी मां के सम्बन्ध मे लिखते हुये टालस्टाय ने अपनी पुस्तक 'संस्मरण' मे लिखा है, "मेरी मां अपने वच्चो से वहुत स्नेह करती थी। उसकी डायरी पढ़ने से ज्ञात होता है कि वह मुझ से वड़े भाई कोको (निकोलइ) को सुयोग्य एवं सुशिक्षित वनाने के लिये कितनी चिन्तित थी। उसकी हार्दिक इच्छा थी कि उसके पुत्र साहसी और निर्भीक वने। वालक निकोलइ जव किसी करुण- दृश्य को देखकर रो पड़ता था तो वह उन्हे डाटती थी। पुरुष को सदैव दृढ होना चाहिए। मस्तिष्कीय सजगता एवं जागरूकता पर भी वह हमेशा जोर देती थी।"

एक अन्य स्थल पर टालस्टाय ने लिखा है :—

"मेरी मां को शायद मेरे पिता से वहुत अधिक स्नेह न था। वह उन्हे इसलिये प्यार करती थी, क्योकि वे उसके पति थे और मुख्य रूप से उसके वच्चों के पिता।"

टालस्टाय के पिता अत्यन्त खुशमिज़ाज, अलमस्त और सात्विक प्रकृति के व्यक्ति थे। उनकी चुहल और रसभरी वाते सारे परिवार को हसाते-हंसाते लोट-पोट कर देती थी। छोटे वच्चो के लिये वे तरह तरह के व्यंग-चित्र, कार्टून और हास्यास्पद रेखाचित्र खीचते थे, जिसपर वालक जी खोल कर हसते थे। रात्रि मे सोने के वक्त सभी वच्चे नमस्कार के लिये उनकी कुर्सी के इर्दगिर्द चिपट कर उनसे आशीर्वाद प्राप्त करने की आशा भरी प्रतीक्षा मे खडे रहते थे।

"मुझे एक वार की याद है" टालस्टाय ने अपनी पुस्तक 'संस्मरण' मे लिखा है "कि किस प्रकार एक वार हम लोगों के साथ खेलते हुये मेरे पिता अचानक रुक गये और सामने रक्खे हुये दर्पण की ओर देखकर मुस्करा पड़े। हम सव की आंखे भी तत्क्षण उसी ओर उठ गई। नौकर टिकोन की परछाई दर्पण में पड़ रही थी, जो एड़ी उठाये धीरे धीरे चुपचाप मेरे पिता के पिछले कमरे से सिगरेट चुराने जा रहा था। इस दृश्य से हम सभी हंस पड़े। दादी और बुआ तो वहुत देर तक समझी
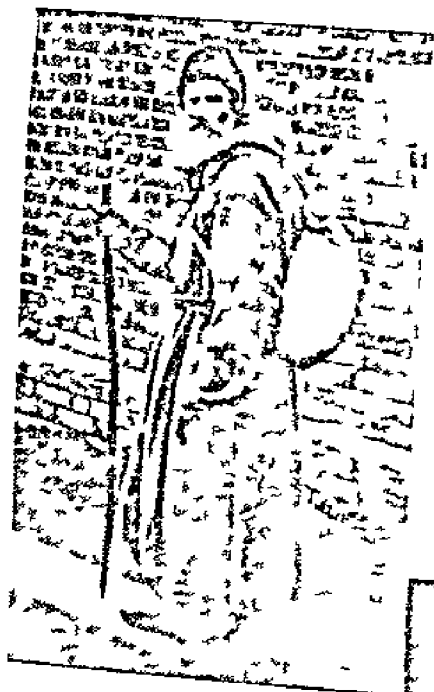
टॉल्स्टॉय
यास्नाया पोल्याना से मोस्को की
सड़क पर जाते हुए
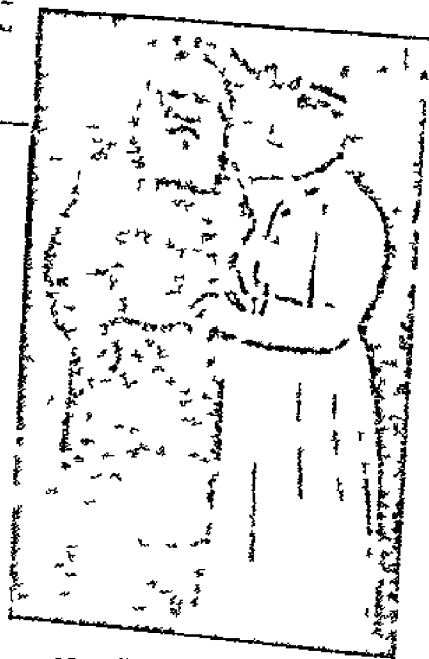
टॉल्स्टॉय अपनी पत्नी के साथ
मृत्यु के ६ सप्ताह पूर्व

ही नही, किन्तु जव उन्हे समझ पडा तो वे भी अपनी हंसी न रोक सकी । मैं अपने पिता की विशाल हृदयता पर मुग्ध हो उठा और उनसे विदा लेते समय मैंने अत्यन्त श्रद्धा के साथ उनके हाथों का चुम्वन किया ।"

टालस्टाय के परिवार में एक चचेरी वहिन भी रहती थी, जिसका पति विवाह के कुछ दिन वाद ही पागल हो गया था और जो अत्यन्त दीन-हीन, विपन्नावस्था मे रहकर नित्य प्रति धार्मिक पुस्तको का पारायण कर अपना समय विताती थी। एक और दूर की वृद्धा बुआ,जो टालस्टाय को वहुत प्यार करती थी, इनके साथ ही रहती थी। इन दोनो की धार्मिक भावना का टालस्टाय के हृदय पर गहरा प्रभाव पड़ा था ।

इसी प्रकार की अनगिनत वाल-स्मृतिया उनकी पुस्तक मे इतस्ततः विखरी पड़ी है, जिनकी अन्धकारमयी सघनता मे वे आशा और आनन्द की रश्मियो का नित्य अवलोकन करते थे । यासनाया पोल्याना के सुखद वातावरण मे उन्होने न जाने कितनी वार झिलमिल तारो के प्रकाश, पूर्ण विकसित चन्द्र, बादल के छोटे छोटे उड़ते सफेद टुकड़े, खिले पुष्प, पत्ते, वृक्ष, पक्षी, जानवर आदि को देख उनके मर्म में पैठ जाने की विफल चेष्टा की थी और भगवत्सृष्टि की अलौकिकता पर उनका मन न जाने कितनी वार विस्मय-विमुग्ध हो उठा था । ज्यो ज्यो उनकी आयु वढ रही थी-उनके जीवन मे एक मानसिक एकाकीपन का भाव पैदा हो रहा था, जोकि एक चिन्तनशील विदग्ध लेखक के मस्तिष्क की प्रारम्भिक पृष्ठभूमि थी ।

ठीक ये ही भाव जोड़ासांको के वालक रवीन्द्र के मन में भी उठते थे । उनकी मां प्रायः अस्वस्थ रहती थी, पिता वाहरी कार्यों में व्यस्त थे । जैसा कि प्रायः सम्पन्न घरो मे होता है-वे नौकरो के निरीक्षण मे पल रहे थे—वड़े हो रहे थे । नौकर उन्हे वाहर न जाने देते थे । कमरे की सीमा मे ही उन्हे वैठने, खेलने, खड़े होने की इजाज़त थी, अतएव एकान्त मे रहते रहते उनकी प्रवृति भी अतर्मुखी होती जा रही थी । किन्तु इस सवके वावजूद भी उनकी वुद्धि इतनी प्रखर थी कि कमरे की चहार दीवारी मे वन्द रहकर भी वे कल्पना के पखो पर वैठकर सुदूरवर्ती देशो का भ्रमण करते । विश्व का कोलाहल उन्हे अपने एकान्त, सूने हृदय मे सुनाई पड़ता और वाहर प्रकृति की सुरम्यता और फैलाव को वे चुपचाप खिड़की से झांक कर देखा करते । प्रकृति के मादक-सौन्दर्य का पर्यवेक्षण कर उनका हृदय आनन्द से भर जाता, कभी उषाकाल की सुनहरी किरणो के सम्पर्क से चमकती ओस-मुक्ताओ को निरख उनमे वाल-सुलभ कौतूहल जाग्रत होता। कभी नील, विस्तृत गगन, कभी

भीनी बयार से प्रकम्पित वृक्षों के हिलते पत्ते और कायरे-शाखिलाओं का उनपर न्यस्त कर फुनकना कभी अपने घर के बगीचे अथवा बर, नारियल आवले, मिटठे आदि के वृक्ष बाग्ग स्वाद के मन को मुग्ध कर लेते। कल्पना के कुल में बन्दी होकर प्रतिकूल परिस्थितियों में भी उनमें गहन जागरूकता एवं आत्मनिष्ठा बनी रहती।

टालस्टाय की भांति रवीन्द्रनाथ ने भी मेरे बचपन के दिन नामक पुस्तक में अपनी बाल्यावस्था के मार्मिक चित्र खींचे हैं। पुस्तक पढने से ज्ञात होता है कि उनकी उन्मुक्त आत्मा कोई बंधन न चाहती थी। नौकरों के कटु-व्यवहार और शिक्षकों के कठोर अनुशासन से उनका मन विक्षुब्ध हो उठता। स्कूल का वातावरण भी उनके अनुकूल न था। क्लास में पढ़ाई चलती रहती और उनका मन-पंछी न जाने कहाँ कहाँ विचरण करता। फिर वे पढ़ाई से बचने के लिये तरह तरह के बहाने ढूंढने लगे। वे चाहते थे किसी तरह बीमार हो जाऊं और इस पढ़ाई से पिण्ड छूटे। सर्दी की ठण्डी रात्रि में कभी खुली छत पर जा लेटते कभी घुटने घुटने जल में जा खड़े होते और जूतों को भिगो कर दिन भर घूमते रहते जिससे ज्वर हो जाए अथवा जुकाम हो जाए और स्कूल न जाना पड़े। मास्टरों और ट्यूटरों का भी दिन भर तांता सा लगा रहता। बालक रवीन्द्र को क्षणभर खेलने, नाचने, सांस लेने तक का अवकाश न था। उनका मन विद्रोह कर उठता। आयु छोटी होते हुये भी उनमें तीव्र अनुभूति शक्ति एवं गहरी संवेदनशीलता थी। शिक्षकों के समक्ष वह हठ पकड़ लेते और पढ़कर न देते। "मेरे बचपन के दिन" पुस्तक में वे एक स्थल पर लिखते हैं —

दिये के धुंधले प्रकाश में मुझे मास्टर महाशय प्यारे सरकार लिखित पहली पोथी पढ़ाया करते थे। किताब खोलते ही मुझे जमाई आई और आंखों में न जाने कहां से अगाध नींद फूट पड़ी। मैं बार बार अपनी आंखें मींजता पर नींद कम होने का नाम न लेती। बीच बीच में मुझे मास्टर साहब के एक अन्य सुयोग्य शिष्य सतीन की प्रशंसा भी सुनने को मिलती, जिसने ऐसा गजब का दिमाग पाया था कि उसके समान मेधावी बालक शायद ही कलकत्ते में दूसरा होगा। उसे जब नींद लगती तो आंखों में सुरती मल लिया करता और इस प्रकार कभी कभी तो वह रात भर पढ़ता ही रह जाता। ऐसा होनहार विद्यार्थी था वह! और मैं? मेरे बारे में कुछ कहना ही बेकार था। मास्टर साहब की सम्मति थी कि अपने कुल में सबसे गावदी मैं ही रहूंगा। पर उनकी यह धमकी भी मेरी नींद पर कुछ असर न करती और ज्यों ही नौ बजते और मुझे छुट्टी मिलती कि मैं झट अन्दर पहुंचता।

रवीन्द्र वावू के पिता महर्षि श्री देवेन्द्रनाथ ठाकुर वहुत ही उदार और धार्मिक प्रवृत्ति के व्यक्ति थे। उन्हे निर्जन, एकान्त, शान्त स्थानों में बैठकर चितन रत रहना अच्छा लगता था। पिता महर्षि का अपने पुत्र पर अनुग्रहपूर्ण स्नेह था। हिमालय के प्रवास में उन्होने इन्हे साथ ही रक्खा। पर्वत के सर्वोच्च शृंग पर एक कुटिया थी, जिसमे पिता-पुत्र दोनों रहते थे। चतुर्दिक मनोरम,उल्लास-मय वातावरण, धवल हिम-राशि पर सूर्य की किरणो का नर्त्तन और घनी हरियाली मे हवाई अठखेलियां-ये दृश्य वालक रवीन्द्र के मन को आकर्षित कर लेते। यही से उन्होने प्रकृति में विभोर होना सीखा और यही से उनके हृदय का सत्यं, शिवं, सुन्दरम् के साथ समन्वय हुआ।

वंगाल के वोलपुर ज़िले में महर्षि ने शांतिनिकेतन की स्थापना की थी, जहा वे अध्यात्म चिन्तन और दर्शन-ग्रन्थों का अनुशीलन किया करते थे। रवीन्द्र नाथ ने यह स्थान वहुत पसन्द किया और अपने पिता के साथ कुछ दिन वे यहा रहे। यहां की प्राकृतिक-शोभा मे वे अपने अस्तित्व को भुला देते और अपने हृदय-दर्पण में सृष्टि के विराट्-रूप का दर्शन कर फूले न समाते। सात वर्ष की आयु मे उन्होने अपनी सवसे पहली कविता लिखी थी, जिसे पढकर उनकी विलक्षण प्रतिभा पर सभी आश्चर्य चकित रह गये थे।

प्रतिभा सम्पन्न वालक टालस्टाय ने भी नौ वर्ष की अवस्था मे अपनी पहली कविता "टुमाइ डीयर आण्टी" (To my dear Auntie) लिखी थी, जिसका भावार्थ निम्नलिखित है :—

"मेरा चाहा खुशी का दिन आ गया है। मै प्रसन्नतापूर्वक यह सिद्ध कर सकता हूं कि मेरी मा जव मुझे दुलारती और प्यार करती थी तव मै निरा मूक और जड़ न था।

और अव तो मै सव कुछ अच्छी तरह समझने लगा हूं। जो कुछ तुमने मेरे लिये किया उसे कभी न भूल सकूगा। तुमने अपना सारा जीवन ही हमारे लिये अर्पित कर दिया। तुम्हारा हृदय कितना विशाल है और आत्मा कितनी महान्।

मै इस अनिर्वचनीय सुख का आस्वादन कर रहा हूं, जो आज दिन मेरे हिस्से मे पड़ा है। मै हृदय से यह इच्छा करता हूं कि भगवान् तुम्हे तुम्हारे सत्कार्यों के लिये आशीर्वाद दे।

कदाचित् हमारी देखभाल के लिये वह फिर सौभाग्य-देवी को हमारे यहां भेजे। तव फिर वही पहली सुख-शांति हम पर वरसेगी और हम आनन्द और सुख से रह सकेगे।

उन पूर्व दिनों की स्मृति में आज का दिन मेरे लिये अत्यन्त सुखमय और कल्याणकारी हो गया है। मैं चाहता हूँ—तुम्हारे जीवन का स्रोत हमेशा स्वच्छ और चमकते जल से स्वालब भरा रहे।"

इस कविता से काउन्ट टाल्स्टाय की चिन्तन शक्ति की गहराई का आभास मिलता है जो उनकी भावी प्रबुद्धता और अन्तर्चेतना का परिचायक है।

शृंगार भावना

टाल्स्टाय और टैगोर दोनों का ही जीवन विधाता ने अत्यन्त घटनापूर्ण और औपन्यासिक क्रम से बनाया था। दोनों के ही जीवन में अनेक उतार चढ़ाव आये और अघटित घटनायें घटीं। दोनों ही राजकीय-वंश में उत्पन्न हुये और सुख वैभव में जीवन बिताया। दोनों के यौवन में एक उन्माद था—एक शृंगारिक-भावना जिसमें आध्यात्मिक चेतना का भी साथ ही साथ प्रस्फुरण हो रहा था। आध्यात्मिक-आनन्द की अनुभूति एवं वासनामय-प्रेम के प्रति आकर्षण—दोनों प्रवृत्तियों का द्वन्द्व इन कलाकारों की युवावस्था की कृतियों में परिलक्षित होता है। यौवन के विलास विभ्रम में दोनों के हृदय उफने पड़ रहे थे। शारीरिक-सौन्दर्य उन्हें अपनी ओर खींच रहा था—उनके प्रसुप्त भावों को गुदगुदा रहा था, झकझोर रहा था। उषाकालीन लालिमा को देख उनका हृदय अनुरंजित हो उठता था चन्द्र की स्निग्ध ज्योत्स्ना को देख भोगजन्य-सुख की स्मृति कर तड़प उठता था, रजनी की सान्त्वना का अनुभव कर बरबस चंचल हो उठता था। रवीन्द्रबाबू के मन के इस आकस्मिक परिवर्तन की सूचना हमें 'प्रभात-संगीत' द्वारा मिलती है।

सहसा आजिए जगतेर मुख
नूतन करिया देखिनु केन
एकटि पखीर आध खानि तान
जगतेर गान गाहिल जेन।

न जाने आज सहसा जगत् का मुख नया क्यों दीख रहा है मानो एक पक्षी की अधतान में ही जगत् के संगीत को उड़ेल डाला।

'प्रकृतिर-प्रतिशोध' 'छवि ओ गान' और 'कड़ि ओ कोमल' आदि रचनाओं में यौवन का उन्मत्त आनन्द छलका पड़ रहा है।

बहु दिन परे आजि मेघ गेछे चले,
रविर किरण सुधा आकाशे उथले।

स्निग्ध श्याम पत्रपुटे आलोक झलकि उठे
पुलक नाचिछे गाछे गाछे ।
नवीन यौवन येन प्रेमेर मिलने कांपे
आनन्द विद्युत आलो नाचे ।

'बहुत दिनों के पश्चात् आज मेघ चले गये । सूर्य की अमृतमयी रश्मियां आज सारे आकाश में प्रेम-सुधा बरसा रही हैं । स्निग्ध-श्याम-पत्र-पुटो मे आलोक झिलमिला रहा है, वृक्ष वृक्ष पर पुलक आनन्द नाच उठा है । प्रणय-मिलन के नवीनोन्माद मे हृदय मे सिहरन हो रही है और आनन्द का विद्युत-प्रकाश नर्तन कर उठा है ।'

इन दिनो की रचित टैगोर की कवितायें प्रेमरस से सराबोर हैं, उनमे हृदय का उन्माद स्पन्दित हो रहा है । कवि को समस्त प्रकृति एक रूपसी नारी की भाति अलसाई अंगडाई लेती और बडी अदा के साथ आंखमिचौनी करती सी प्रतीत होती है । उसके अंग अंग मे विलास है, रम्य चारुता है, चपलता है, यौवन की क्रीडा है । कवि अपने भावो को रोकने मे समर्थ नही हो रहा है ।

आमार यौवन-स्वप्ने येन छेये आछे विश्वेर आकाश,
फुल गुलि गाये ऐसे पड़े रूपसीर परशेर मतो ।
पराणे पुलक विकाशिया बहे केन दक्षिण वातास,
जेथा छिल जत विरहिणी सकलेर कुड़ाये निःश्वास ।
शत नुपुरेर रुनझुन वने येन गुंजरिया वाजे ।
मदिर प्राणेर व्याकुलता फुटे फुटे वकुल मुकुले ।
के अमारे करे छे पागल-शून्ये केन चाइ आंखि तुले,
येन कोन उर्वशीर आंखि चेये आछे आकाशेर माझे ।

'हमारे यौवन-स्वप्न ने मानो विश्वाकाश को आच्छादित कर दिया है । पुष्प हमारे शरीर पर इस प्रकार झर रहे है जैसे किसी नव यौवना सुन्दरी का स्पर्श । प्राणो को पुलकायमान करके मलय-वातायन क्यो वह रहा है, जितनी भी वियोगिनियां है-उन सब के नि श्वास मानो यहां संचित है ।

सैकड़ो नूपुरों की रुनझुन वन मे गुजरित हो रही है । प्राणों की मादक आकुलता वकुल-कलिकाओ मे फूट-फूट पड़ती है । अकेला समझकर मुझे कौन पागल वना रहा है, जैसे कोई उर्वशी आकाश मे आंखे विछाये अपनी ओर बरवस खीच रही हो ।'

अपनी कुछ रचनाओं में तो रवीन्द्रबाबू ने नारी के नग्न-सौन्दर्य का चित्रण किया है, तथापि एक बात विशेष ध्यान देने की है कि उनमें देहाकर्षण की अपेक्षा भावाकर्षण का ही प्राबल्य है और पवित्र सच्चा सौन्दर्य मनोकांक्षा है।

टाल्स्टाय की युवावस्था में एक मारुशा नाम की लड़की ने सर्वप्रथम उनमें वासनात्मक प्रेम जाग्रत किया। वे नैतिक-स्तर से पतित होने के कारण जीवन पर्यन्त शर्मिन्दा रहे। अपने उपन्यास 'रिजरेक्शन (Resurrection) में कत्यूशा के भ्रष्टाचार के सम्बन्ध में जब उन्होंने लिखा तो उनकी पत्नी ने डाटकर कहा 'क्या इतने बूढ़े होकर भी तुम्हें ये बातें लिखना शोभा देती है?' और टाल्स्टाय ने कोई उत्तर नहीं दिया, किन्तु उसके कमरे से बाहर जाने के पश्चात अपने पास बैठे हुये एक मित्र से आँखों में आँसू भरकर कहा, "देखते हो—यह कैसे मुझे लज्जित करती है। जब जब मुझ से ऐसी कोई गलती हुई है तो मैं कितना रोया और पछताया हूँ।'

अपने यौवनकाल में इन्द्रिय जन्य-सुख की आकांक्षा रखते हुये भी टाल्स्टाय ने सदैव ऐसी बातों से घृणा की। अल्हड़ और युवा होते हुये भी उनमें तीव्र आध्यात्मिक अन्तश्चेतना थी और वे अपने हृदय को नित्य टटोल कर देखते रहते थे। कभी कभी शान्त हुये नक्षत्रों भरे नीलाकाश में वे घण्टों प्रेम भरे स्वप्न देखते और उस उन्मत्त मादकता में वे उस दिव्य-सौन्दर्य को समझना चाहते जो उनके गन्दे विचारों का परिष्कार करे। एक चिन्ताशील युवा दार्शनिक की भांति उन्होंने अपने प्रेम को तीन भागों में विभक्त कर लिया था—प्रेम, सौन्दर्य और समर्पण में। उन्होंने अपनी प्रेयसी की एक कल्पित तस्वीर मन ही मन गढ़ ली थी, जिसमें उनकी सरस एवं स्निग्ध भावनायें केन्द्रित थीं। वह सुन्दर प्रतिमा उनके मानस में अन्तर्निहित थी और उनमें अव्यक्त आकांक्षाओं की सृष्टि करती थी। अपनी प्रेयसी को वे सर्वत्र ढूंढते थे और आशा निराशा के झकोरों में उनका मन सदैव दोलायमान रहता था। कभी कभी बहुत सोचने पर वह उनकी कल्पना में आ जाती थी, किन्तु वातावरण की सरलता और प्रकृति का उन्मुक्त सौन्दर्य उनमें व्यथा और असंतोष उत्पन्न कर देता। कभी कभी वह बिल्कुल सजीव होकर उनके नेत्रों के समक्ष आ खड़ी होती—दुबली और आकुल सी, सौन्दर्य, प्रेम और आकांक्षा की साक्षात् प्रतिमा सी और तब टाल्स्टाय की दृष्टि में सारा विश्व ही बदल जाता। अणु अणु से प्रेम उच्छ्वसित हो उन्हें अंकवार देता, तारागण हिल उठते, पुष्प-पत्रों और लताओं में आनन्द की लहर लहरा उठती और सर्वत्र आनन्द ही आनन्द पूर्ण पड़ता सा दिखाई देता। किन्तु ज्यों ही रात्रि की बोझिल स्वप्निलता भंग होती और अन्धकार

की सघनता बढ़ती जाती कोई जैसे उनके कानो मे कहता सा प्रतीत होता "यही सब कुछ नही है । सच्चा सुख, दिव्य आनन्द तो कही और है, इससे परे की चीज़ है।" सुन्दर प्रतिमा तत्क्षण अन्तंध्यान हो जाती और एक अनिर्वचनीय भावना उनके हृदय मे जगा जाती कि कोई अदृष्ट शक्ति है, जोकि समस्त सुख सौन्दर्य का चिरंतन स्रोत है और तव आनन्दाश्रु उनके नेत्रो मे छलछला आते और वे ब्रह्मानन्द की अनुभूति मे सुध-बुध भूल जाते ।

नैराश्य

किन्तु इन दोनो कलाकारो के जीवन मे ऐसा समय भी आया जब दु.ख और निराशा ने उन्हे आच्छन्न कर लिया। रवीन्द्रबाबू जमीदारी आदि की व्यवस्था छोडकर अपनी पत्नी श्री मृणालिनी देवी के साथ शाति-निकेतन मे आ बसे थे और दोनो पारस्परिक सहयोग-साधना से उसे उन्नत बनाने की चेष्टा कर रहे थे, किन्तु अकस्मात् दुर्भाग्य का झोका सा आया । अभी उन्हे यहां आये एक वर्ष भी न होने पाया था कि मृणालिनी देवी का आकस्मिक निधन हो गया । इससे उन्हे दारुण शोक हुआ । पत्नी की मृत्यु से उनका मस्तिष्क बौखला उठा । उन दिनो वियोग-व्यथा से व्यथित होकर जो उन्होने कवितायें लिखी है—वे 'स्मरण' नामक कविता-सग्रह मे सकलित है । उनमे अत्यन्त करुण और व्यथित भावो की अभिव्यंजना हुई है ।

तुमि मोर जीवनेर माझे
मिशायेछो मृत्युर माधुरी
चिर विदायेर आभा दिया
रांङा ये गियेछे मोर हिया ।

'तुमने मेरे जीवन मे मृत्यु की मधुरता घोल दी । चिर-विरह की आभा मे तुमने मेरे हृदय को रंग दिया है ।'

कवि असह्य वेदना मे डूबा हुआ भी सजग एवं सचेष्ट है । उसे प्रिया के प्रेम-प्रतिदान का ज्ञान है । कभी आत्म-विभोर होने पर उसे पत्नी का दर्शन होता है और वह उससे तादात्म्य स्थापित कर लेता है :—

मृत्युर नेपथ्य हते आर बार एले तुमि फिरे
नूतन बधूर साजे हृदयेर विवाह-मन्दिरे
निःशब्द चरण पाते । क्लांत जीवनेर जत ग्लानि
घूचेछे मरण स्नाने ।

मरणेर सिंहद्वार दिया
संसार हइते तुमि अन्तरे पशिले आसि, प्रिया ।

मृत्यु के नेपथ्य से एक बार पुनः तुम नववधू के रूप में निःशब्द चरण धरती हुई मेरे हृदय के विवाह मन्दिर में आई । मृत्यु-स्नान के पश्चात् जीवन की समस्त क्लान्ति दूर हो गई । हे प्रिया ! तुम मृत्यु के सिंहद्वार से बाह्य-संसार को पारकर मेरे अन्तर में आ समाविष्ट हुई ।

अन्त में कवि की अनुभूति इतनी गहरी हो जाती है कि उसे कण कण में विश्व की छोटी से छोटी सूक्ष्म से सूक्ष्म वस्तु में भी पत्नी दिखाई देती है ।

मिलन सम्पूर्ण आजि हलो तोमासने
ए विच्छेद वेदनार निविड़ बन्धने ।
एसेछ एकान्त काछे, छाड़ि देशकाल
हृदये मिशाये गेछो 'भाङि अन्तराल
तोमारि नयने आजि हेरितेछि सब
तोमारि वेदना विश्वे करि अनुभव ।

'इस विरह व्यथा के निविड़-बन्धन में आज तुम्हारे साथ मेरा मिलन सम्पूर्ण हो गया । देशकाल की परिधि का अतिक्रमण कर मेरे पास एकान्त में आती हो और अन्तराल को भेदकर मेरे उर में पैठ जाती हो । आज तुम्हारे नयनों में सब को देखता हूँ और तुम्हारी वेदना को विश्व में अनुभव करता हूँ ।

पत्नी की मृत्यु के पश्चात् कवि की छोटी पुत्री रेणुका मृत्यु का ग्रास बनी जिससे उनका दुःख पुनः हरा हो गया । अपने मित्र एण्ड्रूज को उन्होंने लिखा—'ये मृत्युएँ मेरे लिये वरदान सिद्ध हुई हैं । मैं परमात्मा पर सब भार डालकर अब निश्चिन्त हो गया । मृत्यु का यथार्थ स्वरूप अब तक मुझे मालूम न था । अब मैं अनुभव करता हूँ कि मृत्यु का अर्थ है पूर्णता ।

टाल्स्टाय भी जब रवीन्द्रनाथ टैगोर की भाँति क्रिमियन युद्ध और सेबास्टपोल के संघर्षों से ऊबकर यासनाया पाल्याना में एक ग्रामीण-बालकों के लिये पाठशाला खोलकर अपनी कर्तव्य निष्ठा में उद्यत हुये और मानसिक-शान्ति प्राप्त करने की लालसा में एकान्त जीवन व्यतीत करने लगे, तभी उनपर एक पहाड़ सी विपत्ति आटूटी । कुछ दिन की बीमारी के पश्चात् उनके बड़े भाई निकोलस, जिनपर कि उनका अत्यधिक स्नेह और श्रद्धा थी, चल बसे । इससे टाल्स्टाय के दिल पर गहरी ठेस लगी । अपने फेट नामक एक मित्र को उन्होंने लिखा कि निकोलस ने

उनकी गोदी मे प्राण छोड़े और उसकी मृत्यु ने उन्हे किस प्रकार विचलित और संतप्त कर दिया ।

निकोलइ का आकस्मिक निधन टालस्टाय के लिये अत्यन्त कष्टप्रद सिद्ध हुआ। कई मास तक उनका मस्तिष्क अशांत हो गया और वे कुछ न सोच सके, यहां तक कि उन्होने अपनी डायरी भी लिखनी छोड दी और कई सप्ताह पश्चात् जव उन्होने पुन: लिखना प्रारम्भ किया तो उनकी प्रथम पंक्तिया भी निकोलइ के सम्वन्ध में ही थी, "लगभग निकोलइ को मरे एक महीना हो गया। इस दुर्घटना ने मेरे हृदय को हिला दिया, मेरे जीवन को मसोस डाला। मै अपने से पूछता हूं—ऐसा क्यों हुआ ? अव क्या होगा ? कहां जाऊं ? कैसे धीरज धरूं ? लिखने का प्रयत्न करता हूं, किन्तु जैसे मेरा सारा उत्साह ठण्डा पड़ गया, हिम्मत पस्त हो गई। आखिर लिखने-पढने का महत्व ही क्या है। इसके लिये तो एकान्त बुद्धि और सुख-शाति की आवश्यकता है।"

अपनी वुआ की मृत्यु से भी टालस्टाय को अत्यन्त दु:ख हुआ और जव कुछ दिन वाद उनके एक पडौस का लडका क्षय रोग से मर गया तो उन्हें संसार से घोर विरक्ति हुई। उन्होने 'तीन मृत्यु' (Three Deaths) नाम की एक पुस्तक लिखी है, जिसमे उन्होने मृत्यु-तत्व की विस्तृत विवेचना की है। कुछ दिन पश्चात् तो उनकी यह धारणा हो गई थी कि उनके भाई की आत्मा प्रकृति मे समन्वित होकर पंच-भूतो मे रम गई है।

भ्रमण-प्रवृत्ति

इन दोनो कलाकारो के स्वभाव की एक विचित्रता यह भी थी कि उनकी प्रवृत्ति आश्चर्यजनक गतिशील और भ्रमण-प्रिय थी। वे सदैव चलते रहना पसन्द करते थे और उन्हे वाह्य एवं आभ्यतर जीवन मे कभी अवरोध पसन्द न था। कभी वे शाति चाहते तो कभी वे कोलाहलपूर्ण, अशात वातावरण में कूद पड़ने के लिये आकुल हो उठते। एक स्थिति मे रहना उन्हें भाता न था, यही कारण है कि उन्होने अपने जीवनकाल मे खूव भ्रमण किया। टालस्टाय ने काज़न यूनीवर्सिटी की शिक्षा को वीच मे छोड़कर देश-देशातरो का पर्यटन किया और रवीन्द्र वाबू ने भी पढ़ाई से ऊवकर सत्रह वर्पकी आयु मे ही अपने बड़े भाई सत्येद्रनाथ ठाकुर के साथ इग्लैण्ड इटली, पेरिस आदि यूरोप के प्रमुख प्रमुख देशों का भ्रमण किया। अपने यूरोप के प्रवास मे उन्होने अपने सम्वन्धियों को कई पत्र लिखे है, जिनमे उनकी तत्कालीन भावनाओं का आभास मिलता है :—

"इंग्लैण्ड में आकर मैंने क्या देखा, जानते हो ? लोगों का व्यस्तभाव । उनके मुँह पर घबराहट झलकती रहती है । वे इस बात का हृदय से प्रयत्न करते रहते हैं कि उनका समय व्यर्थ न बीत जाए ।'

एक दूसरे पत्र में उन्होंने लिखा —

यहाँ के बालकों की ऐसी स्वाधीनता और पुरुषत्व का भाव देखकर दंग रह जाना पड़ता है । इसका मुख्य कारण है—यहाँ के गुरुजनों का इनके कार्यों में पग पग पर बाधा न डालना और समान भाव से व्यवहार करना । यहाँ के नौकरों में दासता का भाव कितना कम है—इसे देखे बिना कदाचित् आप न समझ सकें । यहाँ के परिवारों में स्वाधीनता सजीव रूप से वर्तमान है—कोई किसी पर अनुचित दबाव नहीं डालता ।

टाल्स्टाय ने भी अपने पर्यटन-काल में डायरी और पत्रों द्वारा अपने अनुभवों को लिखा है । उनकी हार्दिक इच्छा थी कि वह अपने खानाबदोश जीवन की घटनाओं और व्यक्तिगत अनुभवों को पुस्तक रूप में लिखें ।

साहित्यिक-कृतियाँ

टाल्स्टाय और टैगोर—दोनों की ही विशेषता है कि प्रारम्भ से ही वैभव-पूर्ण और सुखमय वातावरण में रहते हुये भी उनमें सांसारिक उपरामता और तटस्थता का भाव विद्यमान् है । वे जीवन के प्रति आसक्त होते हुये भी अनासक्त और आग्रह शून्य हैं । दोनों की कृतियों में गम्भीरतम अनुभूति प्रवणता, सूक्ष्मातिसूक्ष्म कल्पना, रहस्योद्भावना, क्षिप्रतम संवेदनशीलता, विलक्षण प्रतिभा और स्निग्ध-कोमल भावनाओं का दर्शन होता है । इन दोनों महान् साहित्यकारों ने अपने विपुल साहित्यसर्जन द्वारा अपने अपने देश के साहित्य भण्डार की सम्यक् क्षतिपूर्ति की । साहित्य, संगीत, कला, नाटक, उपन्यास, इतिहास, दर्शन, समीक्षा, काव्य, कहानी, राजनीति, तत्वज्ञान आदि सभी दिशाओं में उनकी प्रतिभा प्रकाशित हुई । आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की यह उक्ति जो उन्होंने टैगोर के विषय में लिखी थी टाल्स्टाय पर भी लागू होती है 'वे उतना ही नहीं हैं जितना लिख गये हैं । वस्तुतः अपनी विशाल चिन्तन राशि का एक मामूली अंश ही वे दे सके हैं । कहना न होगा कि दोनों का व्यक्तित्व और साहित्य इतना विशाल है कि दर्शक आश्चर्यभरी मुद्रा में अवाक् सा देखता रह जाता है और उनकी कृतियों के विपुल कान्तार में अपने को भूला भटका हुआ पाता है ।

जिस प्रकार टैगोर की प्रारम्भिक रचनाओं में बंकिमबाबू का प्रत्यक्ष प्रभाव परिलक्षित होता है, उसी प्रकार टाल्स्टाय की प्रारम्भिक कृतियों भी रूसो से अत्यधिक

प्रभावित है। मनुष्यों के कार्य-कलाप, मनोवैज्ञानिक-विश्लेषण और व्यक्तिगत भावनाओं का चित्रण करने में टालस्टाय और टैगोर दोनों ने ही कमाल कर दिखाया है। मानव और उनके चतुर्दिक् वातावरण की घटनाएं ही उनकी कलाकृतियों की उपादान है और उनके सफल चित्रण द्वारा उन्होने नित्य परिवर्तनशील समाज और राष्ट्र के रूपांतर को प्रत्यक्ष करने का प्रयास किया है।

टालस्टाय की 'चाइल्डहुड, वायहुड एण्ड यूथ' (Childhood, Boyhood and Youth) नामक पुस्तक मे उच्च कोटि की बौद्धिक चेतना और जीवन के गम्भीर मर्म मे पैठने की बलवती आकांक्षा दृष्टिगत होती है। यद्यपि उनकी अन्य रचनायें 'स्नोस्टार्म' (Snow Storm) 'पिलिकुश्का' (Pilikushka) 'दि टु हुसर्स' (The two Hussars) 'दि हिस्ट्री आफ हार्स' (The History of Horse) और 'फेमिली हेप्पीनेस' (Family Happiness) उतनी प्रसिद्ध नही है, तथापि उनमे तत्कालीन सामाजिक एव धार्मिक व्यवस्था मे छटपटाते व्यक्ति तथा रूढ़िवादी परम्पराओ और अन्धविश्वासों से प्रताड़ित मानव का, अद्भुत पर्यवेक्षण शक्ति के साथ, सूक्ष्म चित्रण हुआ है। सामाजिक-अव्यवस्थाये समाज और राष्ट्र को कितना खोखला और निर्जीव बना देती हैं—उनसे मानव की आत्मा कैसे मुक्त हो—इसी की सफल चेष्टा उनकी रचनाओ में सर्वत्र दिखाई देती है।

टालस्टाय के दोनों विलक्षण महाग्रन्थों 'वार एण्ड पीस (War & Peace)और 'अन्ना करेनिना' (Anna Kerenina) की रचना उनके विवाह के पश्चात् हुई। कुछ विद्वानों की सम्मति में ये विश्व के सर्वश्रेष्ठ उपन्यास है, किन्तु यदि ऐसा न भी हो तो इतना तो निर्विवाद है कि विश्व के उपन्यासो में इनकी महत्ता सर्वमान्य है। 'वार एण्ड पीस' मे दो रूसी परिवारो का चित्रण और नेपोलियन द्वारा रूस पर आक्रमण दर्शाया गया है। उसकी विस्तृत पृष्ठभूमि मे महाकाव्य की सी गरिमा, विकास और अंतर्जीवन का गम्भीरतम इतिहास निगूढ है। उसके प्लान में जीवन-दर्शन झलकता है और यह जीवन-दर्शन इतना व्यक्त है कि सारा उपन्यास विविध घटनाओं का एक चित्रपट सा ज्ञात होता है। इस वृहत उपन्यास मे लेखक ने मानवीय शक्ति के समन्वय का मूर्त्त रूप, चरित्र की तेजस्विता, आत्मविश्वास की दृढ़ता एवं मानव-हृदय मे जो विभिन्न भावनाओं का अनवरत संघर्ष चल रहा है—उसका एक सूक्ष्म अन्वीक्षक की नाई, दिग्दर्शन कराया है। टालस्टाय की प्रतिभा कल्पनालोक की सीमाओ को लांघकर भाव की गहराइयो मे रम गई है और पाठक भाषागत लालित्य को विस्मृत कर भावानुभूति में पैठ जाने को आकुल रहता

है। ऐसा ज्ञात होता है उपन्यासकार स्वयं एक नवीन सृष्टि का सृजनहार है। उसके पात्र और चरित्रों में आश्चर्यजनक सजीवता और घटनाओं में दुर्दमनीय गतिवेग है। मारिस बैरिंग के शब्दों में 'इस ऐतिहासिक उपन्यास को पढ़ते हुये यह कहने के बजाय "यह सचमुच सत्य ही होगा" अथवा "इसमें कैसी विशद ऐतिहासिक गाथा वर्णित है" हम तत्क्षण यह अनुभव करते हैं मानो हमारे व्यक्तित्व का सच्चा रूप इसमें प्रकट हो रहा है तथा इन पात्रों को हम बहुत निकट से जानते और पहचानते हैं और वस्तुतः वे हमारे ही संगी-साथी और जीवन के अंग हैं।' 'वार एण्ड पीस' पढ़ने से विदित होता है कि टाल्सटाय के अन्तर्मानस में बाल्यावस्था से जितनी उच्च कल्पनायें प्रसूत हो रही थीं एवं जितनी घनीभूत भावनायें हृदय में द्वन्द्व मचाये थीं — उन सबका विश्लेषणात्मक चित्र इसमें अंकित हुआ है। विश्व साहित्य की ऐतिहासिक महागाथाओं में इतना सच्चा और सरल चित्रण जैसा कि इसमें टाल्सटाय के पारिवारिक जीवन का मिलता है अन्यत्र न होगा। स्त्री-पात्रों में नाटाशा के सुन्दर और आकर्षक व्यक्तित्व के साथ अन्य चरित्र चित्रित किये गये हैं। उसके चरित्र में इतनी सरसता और वास्तविकता है कि ऐसा प्रतीत होता है मानो हम नाटाशा से जीवन में नित्य प्रति ही मिलते हैं और उससे हमारी प्रतिदिन मार्ग में मुठभेड़ हो जाती है।

टाल्सटाय के दूसरे प्रख्यात उपन्यास 'अन्ना करेनिना' में नारी जीवन का सूक्ष्म अनोखा और चकाचौंध कर देने वाला चित्रण है। लेखक ने सेंट पिटर्सबर्ग और रूस के उच्च घरानों के रहन-सहन और जीवन-पद्धति का सुन्दर वर्णन किया है। उपन्यास में इतनी सादगी और सचाई है कि उस पाठक को जो कि रूसी जीवन से अनभिज्ञ है ऐसा बोध होता है मानो उपन्यास की समस्त घटनायें उसके अपने देश में ही घटित हुई हैं और सारा वातावरण विदेशीय न होकर स्वदेशीय ही है। टाल्सटाय ने प्रत्येक वस्तु के अन्तर्निष्ठ और बहिर्निष्ठ दोनों रूप प्रस्तुत किये हैं। घुड़दौड़ के समय अन्ना का अन्तर्द्वन्द्व और वेरान्स्की की आन्तरिक अनुभूतियों को मानो हम स्वयं ही अनुभव करते हैं। कितनी यथार्थता और बारीकी से वेरान्स्की के प्रति अन्ना के प्रेम के क्रमिक विकास को दर्शाया गया है। अन्ना का सीधा-सादा विशाल हृदय पति कितनी सचाई से हमारी नजरों के सामने घूम जाता है और किस प्रकार इस विचित्र नारी अन्ना के प्रेम की प्रत्येक घटना, अपने पूर्व पति से उत्पन्न बालक के प्रति उसका स्वाभाविक अनुराग और उसे देखने के लिए उसका आतुर हो उठना, पति को छोड़ देने के पश्चात् संसार से विरक्ति, गहरा मानसिक अनुताप, अन्तर्व्यथा

और अन्त में कर्तव्याकर्तव्य का निश्चय न कर सकने के कारण निर्मम आत्मघात— कितनी कठोर सत्यता और यथार्थता से परिपूर्ण है। उपन्यास का नायक लेविन मानो स्वयं टालस्टाय ही है। उसके ये अन्तिम शब्द, "मै अपने को घृणा करता हूं। अब सब कुछ स्पष्ट हो गया है", टालस्टाय की सांसारिक-उपेक्षा एवं अन्तर्ज्ञान के परिचायक हैं। जीवन को घसीटते घसीटते मानों वे थक गये थे। धन, वैभव, जमीदारी सभी से उनका मन ऊब गया था. किन्तु जैसे परिस्थितियों एवं पारिवारिक-बन्धनों को तोड़ने में वे अबभी असमर्थ थे।

उनका तीसरा प्रसिद्ध उपन्यास "रिजरेक्शन" अत्यन्त वृद्धावस्था में लिखा गया, अतएव उसमे पहले का सा उत्साह और जीवन नही है। लगता है मानो सांसारिक घात-प्रतिघातों से क्षत-विक्षत टालस्टाय की आत्मा मूक साधना में एकनिष्ठ हो दिव्य सौन्दर्यलोक मे खो जाना चाहती है और उसकी प्राप्ति ही उसने अपना चरम ध्येय बना लिया है।

महामनीषी श्री टैगौर भी इसी कोटि के आत्मदर्शी थे। उन्होंने जीवन पर्यन्त अध्यात्म-चिंतन और सत्य का अन्वेषण किया। उनकी अमर कृति 'गीतांजलि' में उपनिषदो की तत्व-चिंता एवं आध्यात्मिकता का सन्निवेश है, मानो उन्हे अपने हृदय के अन्तस्थ में नित्य उस प्रकाश के दर्शन हुए जो लोकोत्तर और अनिर्वचनीय है।

"प्रिय ! तू छाया मे छिपा कहां खड़ा है ? राहगीर तेरी अवहेलना करके तुझे ढकेल कर निकल जाते हैं, यहां मै उपहार लिए घंटो से तेरी प्रतीक्षा में खड़ा हूं।

प्रातः बीत गया, दोपहर भी। संध्या के धुंधलके में उनीदी आंखों से तेरी बाट जोह रहा हूं। आते जाते लोग मुझे झांक कर देखते है और मुस्करा देते है— मै लज्जा से सिर झुका लेता हूं। भिक्षुक बालिका की भांति मैं मुंह ढाप बैठा हूं। वे पूछते है—'तुम क्या चाहते हो ?' किन्तु मै नीची आंखे करके उन्ह उत्तर नही दे पाता।

आह ! कैसे उनसे कहूं मै तेरी प्रतीक्षा कर रहा हूं और तूने आने का आश्वासन दिया है।

समय बीत रहा है और अब तक तेरे आने की कोई सूचना नही। कितने ही जलूस धूमधाम और समारोह के साथ बीत गए। तू ही अकेला चुपचाप पर्दे के पीछे छिपा खड़ा है और मै व्यर्थ प्रत्याशा में रोता-कलपाता अपना दिल जला रहा हूं।"

'गीतांजलि' टगोर की विश्व प्रख्यात रचना है जिसका अन्तर्राष्ट्रीय अभिनन्दन हुआ और जिसपर एक लाख, बीस हजार का नोबल पुरस्कार भी प्राप्त हुआ।

उनकी अन्यान्य सभी रचनाओं में एक महान कलाकार, कवि एवं दार्शनिक का रूप व्यक्त होता है। कविता में पर्याप्त ख्याति प्राप्त कर लेने के पश्चात उनका उपन्यासों की ओर ध्यान आकृष्ट हुआ। उनके उपन्यासों से बंगला-साहित्य में एक नई सजगता और नवचेतना दिखाई पड़ी और वह गौरवान्वित भी हुआ। 'नष्टनीड़', 'नौका डूबी' 'चोखेर बालि' 'बहूठाकुरानीरहाट' में रवीन्द्रनाथ की अंतर्मुखी एवं बहिर्मुखी दोनों प्रवृत्तियों के दर्शन होते हैं। 'गोरा' कदाचित् उनका सर्वश्रेष्ठ उपन्यास है। उसमें उनका आत्म-सौन्दर्य लहरा रहा है और रचना-शक्ति एवं भावानुभूति की दृष्टि से उनकी लेखनी मानो जादू सा बिखेरती चलती है। पात्रों का चरित्र चित्रण भी मनोवैज्ञानिक ढंग से हुआ है और सामयिक परिस्थितियों का सुन्दर रीति से निर्वाह हुआ है। 'राजर्षि', 'घरे-बाहिरे', 'योगा-योग', 'शेषेर कविता', 'बांसुरी', 'मालञ्च' 'दावन' आदि सभी उपन्यासों में उनकी परिष्कृत कल्पना एवं उत्कृष्ट व्यंजनाशैली का परिचय मिलता है।

टाल्सटाय और टगोर-दोनों ने कहानियाँ भी लिखी हैं, जिनके भीतर गम्भीरता, ताजगी, कलापूर्ण चित्रण एवं कोमल भावाभिव्यक्ति के साथ-साथ एक युग की सामूहिक साधना भी निहित है। प्रायः इन दोनों की वे कहानियाँ अधिक उत्कृष्ट और स्वाभाविक बन पड़ी हैं जिनमें ग्राम्य-जीवन का चित्रण हुआ है। क्या कहानी, क्या उपन्यास, क्या नाटक क्या गीतिकाव्य सभी में उनकी बहुमुखी प्रतिभा के दर्शन होते हैं मानों उनकी लेखनी से सभी कुछ बरबस निकल पड़ा है। कभी-कभी उनकी साहित्यिक कृतियाँ को पढ़ते पढ़ते ऐसा भान होने लगता है जैसे वे कुछ खोज रहे हैं और उन्हें अभीष्ट प्राप्त होना ही चाहता है। कभी अंतहीन सौन्दर्य के विराट्-लोक में विचरण करते करते उनकी बुद्धि भ्रमित और चकित सी लगती है और कभी पीथागोरस के स्वर में स्वर मिला कर वे कहते से प्रतीत होते हैं —

"सृष्टि संगीतमयी है। अनन्त आकाश को पूर्ण करके एक अनादि संगीत अविश्रांत ध्वनित हो रहा है। रवि-चन्द्र-तारा इस शाश्वत संगीत के छंदताल में नृत्य करते हुए सृष्टिक्रम को चला रहे हैं। हमारी जीवन तंत्री जब इस सुमहान् संगीत के साथ समसुर में झंकृत हो उठेगी तभी हम अपने जीवन में सम्पूर्ण सार्थकता प्राप्त करेंगे।"

महात्मा गान्धी और रोम्याँ रोलाँ

जन्म—२ अक्टूबर १८६९
मृत्यु—३० जनवरी, १९४८

महात्मा गांधी

रोमां रोलां

जन्म—२९ जनवरी, १८६६
मृत्यु—३० दिसम्बर, १९४४

तब मने किसी भी शिक्षक से शिकायत नहीं की। मैं बहुत झेंपू लड़का था। मदरसे में अपने काम से काम रखता, घंटी बजते समय पहुँच जाता और स्कूल बन्द होते ही घर भाग आता।'

सत्य का अन्वेषण

रोम्याँ रोलाँ भी बचपन से ही अपनी आत्मा में सत्य का प्रकाश देखने लगे थे। आत्म-साक्षात्कार की उनमें तीव्र लगन थी और जब उन्हें अपना निर्दिष्ट पथ खोजने में किसी पथ-प्रदर्शक की आवश्यकता का अनुभव हुआ तो उन्होंने रूस के सुप्रसिद्ध अन्तर्द्रष्टा कलाकार टाल्स्टाय को पत्र लिखा, जिसमें उन्होंने अपनी जिज्ञासा इस प्रकार व्यक्त की थी—'मैं यह जानने को व्याकुल हूँ कि किस प्रकार सच्चे अर्थों में जीवन बिताऊँ? केवल आपसे ही इस महान् प्रश्न के उत्तर की आशा रखता हूँ।' टाल्स्टाय उन दिनों 'आन लाइफ' पुस्तक लिखने में व्यस्त थे, अतएव इस पत्र का उत्तर न दे सके। पर रोम्याँ रोलाँ ने आशा न छोड़ी और छः महीने पश्चात् पुनः टाल्स्टाय को एक पत्र लिखा, जिसमें उन्होंने अपनी समस्त करुणा और हृदय की कोमल भावनाएं उड़ेल दीं—'मेरी आपसे विनम्र प्रार्थना है और साथ ही यह जानने की उत्कट अभिलाषा भी कि क्या आपको उस सत्य के दर्शन में, जिसे आपने पा लिया है, सदैव ब्रह्मानन्द की प्राप्ति होती है? मैं भ्रान्त-सा हो रहा हूँ। मुझे किसी मार्ग-दर्शक की खोज है। कृपया उत्तर दीजिये और यह बताइये कि क्या आपके वचनामृत केवल श्रमी लोगों के लिए ही हैं, औरों के लिए नहीं—हम क्लास वालों के लिए नहीं? और क्या उन पथ-भ्रष्टों के लिए भी नहीं जो निराशा और कष्टों में जर्जरित हैं?' इन पंक्तियों ने टाल्स्टाय के हृदय को हिला दिया। उन्होंने अश्रुपूरित नेत्रों से रोम्याँ रोलाँ को उत्तर दिया, जिसका प्रथम वाक्य था—"तुम्हारे पत्र को पढ़ कर मैं रो पड़ा।" आगे अपने पत्र में उन्होंने मानव धर्म की व्याख्या की और सेवा एवं कर्त्तव्य का महत्त्व समझाया।

गांधीजी को कभी-कभी सत्यान्वेषण के प्रयोगों में ऐसा ही भ्रम हो जाता था और वे कर्त्तव्याकर्त्तव्य के निर्णय में अपने को असमर्थ-सा पाते, किन्तु दूसरे ही क्षण उनके समक्ष जैसे बिजली-सी कौंध जाती और कोई दिव्य, अदृष्ट शक्ति उनमें प्रेरणा-सी भरती। उन्हीं के शब्दों में—"वही सनातन प्रश्न मेरे सामने आ था। मैं आगे बढ़ूँ या पीछे हट जाऊँ? आगे कदम बढ़ाने की शक्ति जैसे

मुझमें नहीं थी। मेरा हृदय कांप रहा था। लेकिन इस चारों ओर के अन्धकार में मेरे अन्तर में ही एक क्षीण ज्योति चमक रही थी। एक वाणी मेरे अन्तःकरण में उठ रही थी कि आगे बढ़ने में ही मेरा कल्याण है।" एक अन्य स्थल पर वे लिखते है—"एक अलक्ष्य, रहस्यमय शक्ति है, जो वस्तु-मात्र में व्याप्त है। मैं उसे देखता नही, परन्तु अनुभव करता हूं। यह अदृश्य शक्ति अनुभव द्वारा ही गम्य है। प्रमाणों से उसकी सत्ता सिद्ध नहीं हो सकती; क्योंकि मेरी इन्द्रियों से गम्य जो-कुछ भी है, उस सबसे यह शक्ति सर्वथा भिन्न है।"

कहना न होगा कि महामानव गांधी और रोम्यां रोलां दोनों ही आत्मदर्शी, सहिष्णु और कर्मनिष्ठ योगी थे, जिन्होने सत्य के विराट् रूप का दर्शन आंखों से नही हृदय से किया था, जिन्होने मिथ्या आवरणों मे प्रच्छन्न अज्ञान को अन्तर्चक्षुओं से भांप लिया था, जिन्होंने साधारण मनुष्य मे ब्रह्म-दर्शन किया था तथा जो अपने साथी मानव से प्रेम करने के लिये जीवित रहे और प्रेम के लिए ही मर कर अमर हुए। यद्यपि दोनों का कार्यक्षेत्र भिन्न था; दोनों भिन्न स्थान, भिन्न देश और भिन्न परिस्थितियों मे उत्पन्न हुए थे, भौतिक शरीर भी दोनों का पृथक् था और बौद्धिक विकास भी पृथक्-पृथक् दिशा में हुआ था। गांधीजी ने कर्तव्य की बलि-वेदी पर अपना सर्वस्व न्यौछावर कर दिया था, तो रोम्यां रोलां सौन्दर्य और कला-मन्दिर के आराधक थे। एक अपने प्रत्येक कर्म से विश्वात्मा के प्रति प्रेम की पूर्त्ति करता था, तो दूसरा आत्म-प्रकाश की किरण से अन्तस के अन्धकार को विच्छिन्न करने की चेष्टा में सतत संलग्न था। एक के बल का स्रोत सेवा-भाव था, तो दूसरे मे यह विलक्षण गुण था कि कष्टो, अत्याचारों और संघर्षो की चोट खाकर और भी सत्य एव सेवा की लहरे उमड़ती थी। एक का जीवन जनसेवा में लगा था, तो दूसरे का जन-कल्याणकारी साहित्य-साधना मे। तथापि दोनो का उद्देश्य एक था, लक्ष्य एक, विचारधारा की दिशा और दृष्टिकोण का केन्द्रबिन्दु एक। दोनों ने ही विश्व को मानवता, सत्य, शान्ति, प्रेम और अहिंसा का पुनीत सन्देश दिया था। दोनों की इच्छा शक्ति प्रबल, मनोवृत्ति धार्मिक, आत्मा तेजोमय, व्यक्तित्व महान् और हृदय स्फटिक की भांति स्वच्छ और निर्मल था। इन दोनों मनीषियों ने मानव-जाति के नैतिक और आध्यात्मिक उत्थान मे अपना जीवन लगाया। दोनों को दीन-दुखियो और दरिद्रो में भगवान् के दर्शन हुए। दोनों ही बन्धनमुक्त जीवन के मन्त्रदाता थे।

पूर्व और पश्चिम का सामंजस्य

यद्यपि रोमां रोलां को सार्वजनिक कार्यों के लिए तो अधिक अवकाश न मिला, राजनीति और जन आन्दोलनों में भी उन्होंने कभी भाग न लिया, तथापि अपनी वाणी, लेखनी, पुस्तकों और महापुरुषों की जीवनियों से उन्होंने न-जाने कितने पथभ्रष्टों को सुपथ पर चलने की प्रेरणा दी, कितनों को प्रकाश दिखाया और न जाने कितनों का अभिनव-उत्थान किया। वे एकाग्रनिष्ठ और सन्तुलित बुद्धि के व्यक्ति थे। उन्हें आत्म ज्ञान की क्षुधा थी और जीवन के मूलभूत प्रश्न को हल करने के लिए वे सदैव जागरूक थे। सजग व पवित्र होने के कारण जहाँ भी उन्हें प्रकाश दीखता वे उधर ही मुड़ जाते। पहले उन्हें शेक्सपियर ने आकर्षित किया फिर संगीतज्ञ वागनर ने। फ्रेंच साहित्यिकों एवं कलाकारों का भी उन्होंने गम्भीर अध्ययन किया। पश्चिम में बीटोवेन, माइकेल एंजेलो, टाल्स्टॉय आदि आत्मदर्शियों पर और पूर्व में स्वामी विवेकानन्द, रवीन्द्रनाथ और महात्मा गांधी आदि महापुरुषों पर उन्होंने सोचने, मनन करने, सूक्ष्म मनोबुद्धि से उनके आन्तरिक एवं बाह्य जीवन के ऊहापोहों को समझने की चेष्टा की। उन्होंने इन महान् आत्माओं में 'सत्य, शिव' का दर्शन किया। बीटोवेन उनकी हृदय-वीणा के तारों को झंकृत करने वाला वीणाकार था, तो माइकेल एंजेलो और टाल्स्टॉय अपनी अक्षयमयी मौन मधुर पंक्तियों से अन्तर की सुषुप्त भाव चेतना को जगाने वाले महान् साधक। समस्त झंझावातों, अगणित संघर्षों, विघ्नों और सम्भावनाओं के मध्य भी उनकी सुदृढ़ जीवन-नौका आशा की लहरों पर डगमगाती, हिलती डुलती और डूबती-उतराती हुई दूर—बहुत दूर—क्षितिज के क्षीण आलोक का सहारा ले अग्रसर होती रही—आगे बढ़ती रही। सहसा पूर्व में उन्हें उस महाज्योति के दर्शन हुए, जहाँ उनकी आँखें दिव्य-तेज से चकाचौंध हो उठीं। सर्वप्रथम स्वामी विवेकानन्द की तेजस्वी वाणी ने, फिर शान्तिनिकेतन के अमर शिल्पी सन्त की शान्त मुद्रा ने और सबके बाद भारतीय पुनर्जागरण के ऋषि एवं अपने युग के महान् राजनीतिक नेता महात्मा गांधी ने उनका ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया। अन्तिम केन्द्रबिन्दु पर उनकी दृष्टि आ टिकी। पश्चिम की खाद से जो सत्य का अंकुर उनमें प्रस्फुटित हुआ, वह पूर्व की खाद के मिश्रण से पनपा और बढ़ा। पश्चिम के कला-गुरुओं और साहित्य शिल्पियों से उन्हें जो प्रेरणा मिली, उसका समाधान पूर्व के महापुरुषों के जीवनादर्शों से हुआ। यद्यपि उनका जीवन, उनके सिद्धान्त, उनकी साधना पश्चिम की नींव पर आधारित थी,

तथापि उनका निर्माण पूर्व के चूने और ईंटो से हुआ। पूर्व की बातें, पूर्व के आदर्श उनके जीवन मे इस प्रकार ओतप्रोत हो गए थे, मानो जन्म से ही उनमे विद्यमान हों। वर्षों तक कठोर साधना और आत्म-निरोध करते-करते उनके अन्तःकरण का परिष्कार हो गया था। अपने और पराये का भेद-भाव मिट गया था और समस्त परोक्ष-अपरोक्ष वैभिन्य मे उन्हे चिरन्तन ऐक्य का आभास होता था। यही कारण है कि उनके साहित्य मे सर्वात्म-भाव की झलक है और सार्वदेशिक सिद्धान्तो के सामंजस्य की चेष्टा। गांधीजी मे भी यही एकात्म-भावना दृष्टिगत होती ह, जिसकी परिणति सर्वभूत-हित मे उनके जीवित क्षणो मे ही हो गई थी। उन्होंने संसार के सभी प्रमुख धर्मों का अध्ययन किया था और विश्व की समस्त तत्त्व-दर्शन-प्रणालियो में उन्हे एक ही अनन्त सत्ता सक्रिय दिखाई देती थीं। भारतीय अध्यात्म-परम्परा को उन्होने पाश्चात्य अध्यात्म-परम्परा के समकक्ष रख कर तौला और उनके आधारभूत तत्त्वो मे उन्हें कोई विशेष अन्तर न दिखाई पडा। उनकी दृष्टि मे उस अनन्त स्रोत में ही सबका उद्गम, विकास एवं निलय है, वही अन्धकार में प्रकाश की रश्मियां बिखेरता है और अन्तःसत्त्व को स्फूर्त्त करता एवं अन्तःप्रेरणा प्रदान करता है। गांधीजी लिखते हैं—"मेरा यह दावा तो नहीं है कि मेरे सभी कार्य ईश्वर की प्रेरणा से होते है; पर जब मै अपने बड़े-से-बड़े और छोटे-से-छोटे काम का लेखा लगाता हूं, तो मुझे ऐसा लगता है कि ये ईश्वर की प्रेरणा से किए गए थे—ऐसा कहना अनुपयुक्त न होगा। मैंने ईश्वर का दर्शन नहीं किया, पर उसमें मेरी श्रद्धा अमिट है और उस श्रद्धा ने अब अनुभव का रूप ले लिया है। शायद कोई कहे कि श्रद्धा को अनुभव का उपनाम देना सत्य की फजीहत होगी, अतः मैं कहूंगा कि मेरी ईश्वर-श्रद्धा का नामकरण करने के लिए मेरे पास और कोई शब्द नहीं है।"

रोलाँ और गांधी जी का सम्पर्क

सन् १९२० में रोलाँ ने जब सबसे पहले दिलीपकुमार राय से गांधीजी का नाम सुना, तो उनके सम्बन्ध मे अधिकाधिक जानने की उनकी तीव्र इच्छा हुई। सन् १९२१ में रवीन्द्रनाथ ठाकुर पेरिस गये, और उन्होने गांधीजी के सम्बन्ध में उन्हे बहुत कुछ बताया। डा० कालिदास नाग ने भी रोलाँ को गांधीजी के विचारो से अवगत कराने में सहायता दी। ज्यो-ज्यो रोलां को गांधीजी के सम्बन्ध में अधिक जानकारी होती गई, त्यों-त्यो वे उनकी आत्मा के निकट आते गये

और उनका प्रेम व श्रद्धा बढ़ती गई। १९२२ में अपनी बहन की सहायता से उन्होंने गांधीजी के लिखे यंग इंडिया (Young India) के सभी निबंध पढ़े और फरवरी १९२३ में रोलां ने गांधीजी पर एक बहुत बड़ा लेख लिखा, जो बाद में पुस्तकाकार छपा। जुलाई १९२४ में गांधीजी के लिखे 'यंग इंडिया' के सभी निबंधों का उन्होंने फ्रेंच भाषा में अनुवाद किया। इस बीच गांधीजी पर लिखी अपनी पुस्तक भी उन्होंने उनके पास भेजी और यह अनुरोध किया कि जो त्रुटियाँ पुस्तक में रह गई हों, उनका संशोधन कर दें। गांधीजी उसी समय जेल से छूटे थे। उन्होंने पुस्तक देखी और २२ मार्च १९२४ को रोलां को लिखा—"आपके कृपा-पत्र के लिए धन्यवाद। यदि मेरे सम्बन्ध में लिखी पुस्तक में यत्र-तत्र कुछ गलतियाँ हो भी गई, तो क्या हानि है ? मुझे तो आश्चर्य है कि इतनी कम गलतियाँ हुई, और यद्यपि यहाँ से दूर—एक दूसरे ही वातावरण में—आप रह रहे हैं, तो भी आपने मेरे विचारों को इतने सुन्दर ढंग से दर्शाया है, जिससे ज्ञात होता है कि मानव प्रकृति में कितना ऐक्य है और विभिन्न देशों में रह कर भी विचारों में कितनी समानता हो सकती है।"

गांधीजी के सम्बन्ध में रोलां की कितनी ऊंची धारणा थी, यह उनके एक उद्धरण से ज्ञात होता है—'यूरोप एक ऐसा दुर्भर रात्रि के नीचे दबा कराह रहा था, जिसके गर्भ में थी निराशा और निःसहाय अवस्था, और प्रकाश की एक भी रेखा दृष्टिगत नहीं हो रही थी। ऐसे मुहूर्त में इस दुर्बल, नग्न और नन्हे-से गांधी का अवतरण हुआ, जिसने सर्वांगीण हिंसा की भर्त्सना की, न्याय और प्रेम ही जिसके हथियार थे और जिसके नम्र, किन्तु अविचल सौजन्य ने अपनी प्रारम्भिक सफलताएं अभी प्राप्त की ही थीं। ऐसे गांधी का उद्भव पश्चिम की परम्परागत, चिर-प्रतिष्ठित और सुनिर्धारित विचारधारा तथा राजनीति की छाती पर एक अद्भुत प्रहार के रूप में जान पड़ा। साथ-ही-साथ वह आशा की एक किरण के रूप में भी लगा, जो निराशा के अन्धकार में फूट पड़ी थी।'

एक दूसरे स्थल पर रोलां ने लिखा है—"हमारे यूरोपियन क्रान्तिकारियों की भांति गांधीजी केवल कानूनों और नियमों के ही नियामक नहीं हैं, प्रत्युत् उन्होंने एक नवीन मानवता को जन्म दिया है।' और रोलां ने गांधी जी में यह विलक्षण चमत्कार देखा कि अत्यन्त ऊंचाई पर खड़े होकर भी वे सदैव नीचे ही देखते थे और सर्वसाधारण से ऊपर उठ कर भी वे अपने को उन्हीं का एक

अंग मानते थे। गांधी जी से परिचित होने के लगभग तीस वर्ष पूर्व रोलाँ ने अपनी एक पुस्तक में लिखा था—"दीनता और विफलताओं में सब समान हैं।" और अपनी इस कल्पना को उन्होंने गांधीजी मे साकार पाया। गांधीजी के मख पर विजयोन्माद का दर्प, हृदय में अहंकार और अपने को सबसे ऊचा समझने की भावना न थी। वे जनता के सेवक थे और उनके होकर, उनके दिलो मे पैठ कर, उनमें सत्य और अटल निश्चय का अग्निमन्त्र फूंक रहे थे। मनुष्यो के प्रकृत अधिकार और भारत की आजादी का प्रश्न उनके लिए महज़ फुर्सत की घड़ियो का मनबहलाव न था, वरन् उन्होंने अपने देश और देशवासियो के लिए अपना तन-मन-धन न्यौछावर कर दिया था।

ज्यो-ज्यों रोम्याँ रोलाँ की आत्मीयता गांधीजी से बढ़ती जा रही थी, उनमे उनके प्रति एक विचित्र आसक्ति की भावना जाग्रत हो रही थी। टालस्टॉय के प्रति रोलाँ का जो आकर्षण था, उसमे भी कुछ न्यूनता आ गई, मानो गाधीजी के व्यक्तित्व में टालस्टॉय और रोलां दोनो ही समाहित थे। टालस्टॉय की त्रुटियां गांधी जी की महत्ता का मापदण्ड बनी, और इसमे किंचित भी संदेह नही कि जहा टालस्टॉय को असफलता मिली, वहां गाधीजी सफल हुए। रोलां की दृष्टि मे गांधी जी एक विनम्र टालस्टॉय थे—सन्तोषी, सरल, दया से भरपूर—जिनमे सभी कुछ शान्त, निर्मल, स्वाभाविक, स्वच्छ था, जब कि टालस्टॉय मे अहं के साथ अहं का और क्रोध के साथ क्रोध का सघात, प्रत्येक वस्तु में दुर्दम्यता, यहां तक कि जिसकी अहिंसा भी अछूती न थी। रोलाँ में बाल्यावस्था मे ही सत्य और असत्य को जानने की जो बलवती आकाक्षा उत्पन्न हो गई थी, उसका उत्तर तब नहीं, प्रत्युत् बहुत दिनों बाद उन्हें गाधीजी से मिला था और जिस प्रकार संगीत मे एक ध्वनि अगणित ध्वनियों को उत्पन्न करती है तथा तारों की झन-झनाहट एवं ताल-स्वर का आरोह-अवरोह क्रमशः चरमता को प्राप्त करता है, उसी प्रकार रोलाँ ने भी न-जाने कितने उतार-चढ़ाव और मानसिक ऊहापोहो के पश्चात् अपने विश्वास की परिपक्वता समझी। उनकी आत्मा मे पहली-सी अशान्ति अथवा खिन्नता न थी, अज्ञान के कुहरे को भेद कर उनमे प्रकाश की किरणें छा गई थीं।

समन्वयात्मक विकास

रोम्याँ रोलाँ का प्रख्यात उपन्यास 'जां क्रिस्तफ़' (Jean Christophe) उनके अपने जीवन का सजीव चित्रण है। जीवन और संसार दोनो ही मनुष्य के लिये

सत्यान्वेषण की पुनीत प्रयोगशाला है। सत्य की प्रत्येक दिशा में और जीवन के प्रत्येक मार्ग में कठिनाइयाँ हैं—भीषण कष्ट और अड़चनें हैं, जिससे अपने लक्ष्य तक पहुँचना आसान नहीं। उपन्यास के नायक निम्मक को जीवन में न कहीं सहारा दिखाई पड़ता है न प्रकाश। उसे चतुर्दिक् अन्धकार-ही-अन्धकार दृष्टिगत होता है। उसका मार्ग स्वच्छ और समतल नहीं है प्रत्युत उसमें ढकी पथरीली कंकड़ियाँ बिछी हैं जिससे पग-पग पर ठोकर लगती है। उस क्षुब्ध वातावरण में जिसमें कि वह क्रूर नियति द्वारा बरबस ढकेल दिया गया है, अगणित संघर्षों, यन्त्रणाओं और विषम परिस्थितियों के मध्य भी जबकि उसका मानस-क्षितिज अन्धकार और बादलों से आच्छन्न है जबकि उसका मन शिथिल, नैतिक बल विस्मृत और आध्यात्मिकता मूर्च्छित-सी हो रही है जबकि उसका दल, उसके देशवासी घनिष्ट मित्र, साथी आत्मीय जन—जिन्हें कि वह प्यार करता है—उसकी अवहेलना और तिरस्कार करते हैं तथा जिसका समूचा जीवन-पथ ही तमिस्रा की कालिमा में भटकता-सा प्रतीत हो रहा है, तब, ऐसी दशा में भी उसकी आत्मा में विश्वास की चमक है और जीवन-व्यापार की प्रत्येक मस्ले के ऊपर नियन्त्रण। वह घबराता नहीं, उसका साहस और धैर्य विचलित नहीं होता, जीवन की नाजुक घड़ियों में भी उसके पैर डगमगाते और लड़खड़ाते नहीं, वरन वह दृढ़ और निर्भीक कदम रखता हुआ आगे बढ़ता रहता है और अकस्मात् एक दिन उसमें जीवित रहने और कुछ करने की भावना पैदा होती है। उसके निराश और हतोत्साह जीवन में उल्लास और हर्षोन्माद फूट पड़ता है। कभी संगीत का मधुर स्वर, कभी किसी कमरे या गली में मुस्कराता मुखमण्डल या घूमते हुये अवकाश के क्षणों में अन्तरिक्ष का प्रसार अथवा किसी सुन्दर कलात्मक चित्र को देखकर उसमें पुनर्जीवन भर जाता है—उसका मन-मयूर नाच उठता है— मानो उसकी सूनी मृत आत्मा में दिव्य आलोक बरस रहा हो। वायु के शीतल झोंकों ने मानो उसके कंठ में अमृत घोल दिया हो और ये अमृत-कण उसके शरीर के अणु-अणु में रम कर उसके अन्तस्तल तक पैठ गये हों। ऐसे दिव्य क्षणों में उसे लगा, मानो वह खुशी से पागल हो उठेगा और इतना आनन्द वह सहन न कर सकेगा। दुःख सुख के विचित्र भाव में उसने चिल्लाना चाहा, किन्तु केवल अस्पष्ट-सी ध्वनि उसके मुख से निकली। आनन्दोन्मत्त वह नाचता रहा, चिल्लाता रहा, अपने हाथों से दीवारों को पीटता रहा जब कि कागज के छोटे-छोटे टुकड़े हवा के साथ उसके इर्द-गिर्द उड़ रहे थे।'

रोलां भी गाधीजी की भांति किसी देश अथवा जाति के समन्वयात्मक विकास में विश्वास रखते हैं। उनकी दृष्टि मे समय एक विशाल समुद्र के सदृश है, जिसमे असंख्य लहरो का अनवरत संघर्ष चलता रहता है, कभी कोई राष्ट्र या जाति किसी लहर पर चढ़ कर उत्थित होती है, तो कभी पतन के गर्त्त में जा समाती है; किन्तु जव कि एक तटस्थ द्रष्टा इस परिवर्त्तन को वाह्य परिस्थितियो और राजनीतिक दांव-पेंचोका परिणाम समझता है—रोम्यां रोलां इसे किसी जाति के जीवन-मरण का प्रश्न समझते हैं। वे मृत्यु और जीवन दोनो में समत्व देखते हैं। उनकी सम्मति में मृतप्राय जीवन मे ही ऊर्ध्व चेतना का विकास सम्भव है। 'जां क्रिस्तफ' मे फ्रांस-निवासी आलीवियर अपने मित्र क्रिस्तफ से कहता है—"पराजय श्रेष्ठ है और दु:ख वाछनीय। प्यारे क्रिस्तफ, तुम्ही ने हमे राहत दी है, तुम्ही ने हमे पुनर्जीवन दिया हैं। हमारी इस पराजय से वुराई कम, भलाई अधिक हुई है। तुमने आदर्श की मशाल जलाई है, हमारे विज्ञान मे जान फूक दी है, हमारे विश्वास को जगाया है और हमारे जातीय आत्मोत्थान मे एक नवीन चेतना और प्राण भर दिये हैं।"

जीवन का संघर्ष

गांधीजी और रोलां किसी भी स्थिति में मनुष्य को कर्मक्षेत्र से हटने का आदेश नहीं देते, प्रत्युत् रूढ़िग्रस्त मानवात्मा को उस चिर-आभा से आलोकित करना चाहते है, जिससे उसकी विचार-दृष्टि व्यापक, हृदय उदार और अनुभूतियां विशाल वने। भूतल पर रह कर आसुरी शक्तियो से द्वन्द्व करते हुये ही परम सत्व की विजय संभव है और ऐसे साहसी व्यक्ति ही काल के विध्वसी पंजो से वचकर युगान्तर उपस्थित करते तथा सम्पूर्ण राष्ट्र की चेतना एवं जागरूकता के प्रतीक होते है। गाधीजी के शव्दोंमे—"**मनुष्य के हृदय में दो शक्तियों का अनवरत संघर्ष चल रहा है। ये दो शक्तियां अन्धकार और प्रकाश की हैं। जिसने अपने बचाव के लिये दिव्य-शक्ति को अपनी आधारशिला नहीं बनाया, वह किसी भी क्षण अन्धकार की शक्ति का आखेट हो सकता है।**"

जिन्दगी एक खेल है और खतरो से भरा एक प्रयोग। हमे कभी सत्पथ से विचलित न होना चाहिए। मृत्यु और जीवन का भय कायरता है, इसीलिये गाधीजी और रोलां कभी भयातुर नही होते। अपने उपन्यास 'जा क्रिस्तफ' मे रोलां लिखते है—"जवानो! आज के नवयुवको! डरो नही, वरन् हमारी डरपोक आत्मा को कुचल कर आगे वढ़ जाओ। हमसे अधिक सवल और साहसी वनने की

चेष्टा करता। अपनी पार्थिव जीर्णशीर्ण आत्मा से वह पृथक होता है और इस प्रकार इसका परित्याग करता है जैसे कोई निस्सार निरर्थक वस्तु को फेंक देता है। जीवन मृत्यु और पुनर्जीवन की अटूट शृंखला है। ओ विस्मय! हमें फिर जीने के लिये मरना चाहिए।

टाल्सटाय और गांधीजी के विचार से जीवन का सत्य और पथ है—'कर्म'। कर्म वह जो मानवता का उपकार करावे और आत्म-कल्याण करे। सत्कर्म की साधना जीवन का उद्देश्य है। गांधीजी और टाल्सटाय ने मनुष्यों को एक नयी कसौटी दी और कर्तव्य-कर्म को ईश्वरीय उपासना के समकक्ष बताया। बहुमूल्य जीवन को यदि साधारण और व्यर्थ के कार्यों में प्रयुक्त किया जाय तो यही जीवन का सर्वनाश ही समझना चाहिए। जीवन की तपस्या कला और साहित्य-साधना से भी श्रेष्ठ है, जो अच्छी तरह जीना जानता है वही वस्तुतः सच्चा कलाकार है। गांधीजी एक स्थल पर लिखते हैं—"जो झोंपड़ी में काव्य, धर्म में संगीत, आत्मा में ईश्वरीय सन्देश सुनता है, वही सच्चा कलाकार है। सत्य जिसकी आत्मा है, अहिंसा जिसकी शक्ति है और प्रेम जिसका आदर्श है, वही वास्तव में साहित्यकार भी हो सकता है। जो स्वतः के विकारों को आत्मसात् कर ले और किसी का कुछ भी अहित न इच्छे, उसी के सिद्धान्त दर्शन की सीमा में प्रवेश कर सकते हैं। मानवता ही जिसका सम्बल हो वही कुछ कर सकता है, क्योंकि वह मनुष्य पर विश्वास करना जानता है, उसकी सेवा करना जानता है, उसका स्वभाव जानता है, साधुता को और साधना से पहुंचना चाहता है। उसका स्वभाव अनुकरण नहीं, वरन् अन्तःकरण की आवाज सुनना होता है। इसीलिये संवेदनशील होकर संस्कारिता को जगाता है, सस्ती सुविधाओं से दूर रहता है।

जीवन और सत्य का सौन्दर्य

गांधीजी जीवन और सत्य के सौन्दर्य में कला के दर्शन करते हैं, तो टॉल्स्टॉय उसी कला को सर्वश्रेष्ठ कला समझते हैं जो जीवन को उपयोगी और महत्वपूर्ण बनाने में सहायक हो—"सर्वश्रेष्ठ कला वह है, जो 'कला' नाम को यथार्थ रूप में सार्थक कर सके, जिसमें धूमकेतु की तरह गतिशीलता हो और जो हमारे जीवन को गतिशील बनाने में प्रेरणा प्रदान करे। यह हो सकता है कि इसकी यह शक्ति उपयोगी हो, यह भी हो सकता है कि वर्तमान कर्ममय जगत् की जो व्यवस्था है, उसके लिए यह शक्ति खतरनाक हो, फिर भी यह एक शक्ति है,

गति है और है ज्वाला। आकाश से छूटी हुई बिजली की तरह इसमें गतिवेग है। इस प्रकार का साहित्य पवित्र होगा और इसलिए वह हितकारक भी होगा। वह सूर्य की तरह ज्योतिर्मय होगा। उसके सम्बन्ध में सुनीति और दुर्नीति का कोई प्रश्न ही नहीं होता। सूर्य न तो नैतिक है और न अनैतिक। सूर्य जिस प्रकार अन्धकार की शून्यता के स्थान पर प्रकाश की किरणें बिखेर देता है, उसी प्रकार सच्ची कला भी जीवन को ज्योतिर्मय बना देती है।"

शान्ति और सुख

मानव-जाति और ससार के कल्याण के लिये आत्मोत्सर्ग ही रोलां और गाधीजी का जीवनादर्श था। सन् १९१४ मे जब प्रथम महायुद्ध का समारंभ हुआ, तो सारा विश्व ही आतंकित एवं त्रस्त हो उठा। रोलां युद्ध-काल तक स्वीज़र-लैंडमें रहे, जिसके लिये फ्रांसमे उन्हे कभी क्षमा नही किया गया। जेनेवा के रेडक्रॉस-आफिस में प्रतिदिन आठ घटे बैठ कर वे उन दु.खी, निराश, पीड़ित आत्माओ को पत्रों द्वारा सान्त्वना प्रदान करते थे, जिनका हरा-भरा जीवन विद्वेष और प्रतिहिसा की वह्नि-शिखाओं से प्रज्ज्वलित हो उठा था। बाहर से आये अगणित पत्रो से उन्होने समझा कि मानवात्मा कभी अशाति नही चाहती। वह अपने अधिकार और सुख को सदैव सुरक्षित रखना चाहती है। द्वन्द्व, विषमताएं, कलह, विरोध, हाहाकार सभी को कष्ट और पीडा पहुंचाते है। उन्होने अहिंसा और विश्व-प्रेम का प्रचार किया और सारी दुनिया से युद्ध के विरुद्ध आंदोलन करने की अपील की। किंतु उन दिनों विद्वेष और प्रतिहिसा के भाव इतने प्रबल थे और मनुष्य मनुष्यके रक्तका इतना प्यासा हो उठा था कि किसी भी व्यक्ति का युद्ध में शरीक न होना अक्षम्य अपराध समझा जाता था। फलतः रोम्यां रोलां अपनी युद्ध-विरोधी भावनाओ के कारण अपने देशवासियो की नज़रो में ख़टकने लगे। उन्ही दिनो २२-२३ अक्टूबर, १९१४ को जेनेवा के एक प्रमुख पत्रमे 'अबव दि बैटल" नाम का रोलां का एक बहुत बडा निबन्ध निकला, जो बाद में पुस्तकाकार प्रकाशित हुआ। 'दि प्रिकर्जर्स' और 'दि सोल एंचाटेड' पुस्तकों में भी रोलां ने अहिंसा और एकता का महत्व समझाया। नि.संदेह रोलां ने अपने समकालीन विश्व को एक ऐसा साहित्य दिया, जिसके प्रधान अंग सत्य, अहिंसा और शाति-स्थापना आदि थे। गांधीजी की भांति उनके जीवन में भी आत्म-प्रकाश की किरण का उदय हुआ और तत्क्षण यह भाव उनमें दृढ़ हो गया कि अहिंसा पर विश्वास रखने वाला ही आत्मनिष्ठ पुरुष है—न वह किसी से भयभीत होता है, न दूसरे में ही भय उत्पन्न करता है। वह मारने की नहीं,

प्रत्युत मरने का बल मांगता है। वह किसी का अहित नहीं चाहता, प्रत्युत अपने त्याग और प्रेम से दूसरे पर विजय प्राप्त करता है। महात्मा गांधी पर लिखी अपनी पुस्तक में रोलाँ लिखते हैं—"हिंसा से मैं नफरत करता हूं। समस्त हिन्दू तो इस घृणास्पद वस्तु से दूर रहने का मेरा आग्रह हैं। क्या कोई भी यह सिद्ध करने का दावा कर सकता है कि हिंसा मानव का उत्कर्ष और उसकी आत्मा का पतन नहीं है?"

कहने की आवश्यकता नहीं कि गांधीजी तो अहिंसा और क्षमा के मूर्तिमान प्रतीक ही थे। साम्प्रदायिक राष्ट्रवाद के संकीर्ण दायरे से ऊपर उठने का उन्होंने बार-बार आदेश दिया और इसी उद्देश्य की पूर्ति में उनका सारा जीवन खप गया। उनकी अहिंसा कितनी ऊंची थी, यह इन पंक्तियों से ज्ञात होता है—"सिर्फ मर जाने से हम परीक्षा में उत्तीर्ण नहीं होंगे। हमारे दिल में मारने वालों के लिए दया होनी चाहिए। वे अज्ञानी हैं, इसलिए ईश्वर से प्रार्थना करेंगे कि वह उन्हें ज्ञान दे। हम निश्चिंतता से उनके आघात सह लेंगे। हमारे हृदय से दया के उद्गार निकलेंगे। केवल लोगों को सुनाने के लिये नहीं, वरन सच्चे दिल से हम उन पर दया करेंगे। कोई मुझ पर हमला करता है, लेकिन मुझे उस पर गुस्सा नहीं आता, वह मारता जाता है मैं सहता जाता हूं। मरते मरते भी मेरे मुख पर दर्द का भाव नहीं, बल्कि हास्य है, मेरे दिल में रोष के बदले दया के भाव हैं, तो मैं कहूंगा कि हमने वीर पुरुषों की अहिंसा सिद्ध कर ली। अहिंसा में इतनी ताकत है कि वह विरोधियों को मित्र बना लेती है और उनका प्रेम प्राप्त कर लेती है।"

मनन साधना और कठोर तपश्चर्या के पश्चात जीवन के अन्तिम वर्षों में महात्मा गांधी और रोम्याँ रोलाँ को जो अमोल वस्तु प्राप्त हुई वह था 'आत्म ज्ञान'। अपने आत्म ज्ञान के आलोक से अन्धकार और नैराश्य को भेद कर एक सुभट योद्धा की भाँति लक्ष्य पर पहुँचने के संघर्ष में वह कभी पीछे नहीं हटे। असत्य विद्वेष और हिंसा के तमस में दो देवदूतों की भाँति सत्य की मशाल लेकर उन्होंने उचित पथ निर्देश किया और व्यामोह के क्षणों में ज्ञान-दीप लेकर मानव-मात्र को सुख और शान्ति का मार्ग सुझाया। निःसंदेह वे साधारण से भिन्न थे और उनकी अन्तः-शक्ति एक अगाध आध्यात्मिक भण्डार से बहती-सी जान पड़ती थी। विश्वकवि रवीन्द्र की ये पंक्तियाँ इन दोनों महामानवों पर कितनी खरी उतरती है —

मरण-सागर पारे तोमरा अमर—तोमादेर स्मरि।
निखिले रचिया गेले आपनारि घर—तोमादेर स्मरि॥

प्रवचन करते हुए महात्मा गांधी की गम्भीर मुद्रा

महात्मा गांधी और उनके राजनीतिक उत्तराधिकारी पटेल और नेहरू

समार उवले गेले जे नव आलोक
जय होक जय होक तारि जय होक—तोमादेर स्मरि ।
बन्दीरे दिये गेछे मुक्तिर सुधा—तोमादेर स्मरि ॥
सत्यर वरमाल साजाले वसुधा—तोमादेर स्मरि ।
रेखे गेले वाणी सेइ—जे अभय अशोक
जय होक जय होक तारि जय होक—तोमादेर स्मरि ॥

—अर्थात् मृत्यु-सागर के उस पार तुम अमर हो गए, तुम्हें हम सदैव स्मरण रखते हैं। तुम अखिल विश्व को अपना घर बना कर चले गए, तुम्हें हम सदैव स्मरण रखते हैं। संसार में जो तुम नवालोक-दीप जला गए हो उसकी जय हो, जय हो जय हो—तुम्हें हम सदैव स्मरण रखते हैं। बन्दी को तुम मुक्ति-सुधा पिला गए हो तुम्हें हम सदैव स्मरण रखते हैं। सत्य-रूपी वरमाला से तुमने वसुधा का शृंगार किया है तुम्हें सदैव स्मरण रखते हैं। तुमने जो वाणी हमें सुनाई वह भय और शोक से परे है। जय हो, जय हो, तुम्हारी जय हो।

स्वर्गीय श्री प्रेमचन्दजी ने हिन्दी-उपन्यास के विपुल साहित्य-कान्तार में सर्वप्रथम पगडंडियो का निर्माण किया। उनके पूर्व के उपन्यास-कारो ने चरित्र-चित्रण, मानव जीवन की सूक्ष्म-अनुभूतियो और मानसिक-विश्लेषण तथा अन्तर्द्वन्द्व के ऊहापोह भरे चित्रो के निदर्शन का प्रयास नहीं किया था, साथ ही उनमें शील-वैचित्र्य की उद्भावना और अन्तर्भावों की विशद व्याख्या भी नही के बराबर थी। तत्कालीन उपन्यास-लेखक श्री देवकी-नन्दन खत्री, पं० किशोरीलाल गोस्वामी और श्री गोपालराम गहमरी के तिलस्मी और जासूसी उपन्यासो मे कथानक प्राय. प्रेम-प्रधान होते थे, चरित्र भी किसी एक विशेषता को ही लेकर चलते थे—या तो वे अत्यधिक दैवी-गुणों से सम्पन्न होते थे अथवा अत्यन्त पतित और निन्दनीय। चरित्रो के क्रमिक विकास एवं मानवीय गुण-दोषो को एक ही व्यक्ति मे प्रदर्शित करने की ओर भी किसी का ध्यान अभी तक न गया था। उनका कोई पात्र आदर्श प्रेमी था—तो कोई नीच, निर्मम डाकू; कोई तिलस्मी अय्यार था—तो कोई जासूस और समस्त धूर्त्तताओ का ज्ञाता। उदार, परोपकारी, दयालु और विशाल हृदय व्यक्ति भी कभी, किसी क्षण, हीन प्रवृत्तियो के शिकार हो जाते है और दुष्ट व्यक्तियों में भी कभी-कभी अच्छाइयो की रश्मिया फूट पड़ती है—ऐसा इन उपन्यासकारो ने कभी सोचा न था। इसके अतिरिक्त उनके उपन्यासो मे कथानक सौन्दर्य और वैचित्र्य का भी विकास न हो सका, अतएव कथा की प्रगति के लिए वाह्य एवं अस्वाभाविक प्रसाधनों का प्रश्रय लेना पडा, जिसके फलस्वरूप उन्हे संयोग-वियोग, प्रेम-घृणा, सुख-दु.ख, आनन्द-विषाद और कल्पित, कौतूहलपूर्ण, दैवी घटनाओं का सहारा लेकर नई-नई कृत्रिम उलझनो की सृष्टि करनी पड़ी। कहना न होगा कि प्रेमचन्द जी ही सर्वप्रथम व्यक्ति थे, जिन्होंने उपन्यास-क्षेत्र में युग-प्रवर्त्तक का कार्य किया। उन्होंने उपन्यास की उत्कृष्ट भूमिका मे प्रवेश करके उसकी श्लाघ्य अंगपुष्टि की और ऐसे साहित्य का सृजन किया, जिसमें उपन्यास, कहानी, गल्प आदि के द्वारा मानव-जीवन की ही भावनाओं को व्यक्त किया, उन्ही के जीवन की नित्य प्रति की अनु-भूतियो का निदर्शन किया और उन्ही के चरित्र के विविध, आकर्षक चित्र खीचे।

प्रेमचन्दजी के चरित्र चित्रण का ढंग भी बड़ा ही निराला था। उनके प्रत्येक उपन्यास में अनेकों पात्र एक साथ मिलते हैं, किन्तु सब का व्यक्तित्व पृथक दृष्टिगत होता है। उन्होंने अपने यथार्थ चित्रण के बल से उनकी व्यक्तिगत रुचि, आन्तरिक भावना तथा उनके स्वभाव की विशेष प्रवृत्तियां के, उनके बातचीत, रहन-सहन, रंग-ढंग, चाल-ढाल और उनके विशेष लक्षणों के चित्रण द्वारा उनका सच्चा चित्र पाठकों के समक्ष उपस्थित कर दिया है। हमें ऐसा प्रतीत होने लगता है कि वे सजीव चलते फिरते नर-नारी बालक-बालिकाएं, वृद्ध-तरुण अपने ही अंगी व सहयोगी हैं उनसे हमारा निकट का सम्पर्क है, हमारे हृदय को वे आकर्षित कर लेते हैं अपनी ओर बरबस खींचते हैं, हम उनसे प्रसंगानुसार प्रेम तथा द्वेष करते हैं उनकी हँसी के साथ हमारा आह्लाद फूट पड़ता है उनके आंसुओं के साथ हमारे अश्रु भी टपक पड़ते हैं। वे हमारी राग विराग की प्रवृत्तियों से इतना गहरा सम्बन्ध स्थापित कर लेते हैं हमारे जीवन में इतने घुल मिल जाते हैं हम पर अपना इतना व्यापक और स्थायी प्रभाव छोड़ जाते हैं कि हम उन्हें आजन्म नहीं भूल पाते।

प्रेमचन्दजी के कहानी कहने की प्रणाली भी अत्यन्त रोचक और मार्मिक है। कथा में कल्पना की क्रीड़ा, वाग्वैचित्र्य और नए नए प्रसंगों की उद्भावना भी बड़े ही कौशल और सुन्दर ढंग से हुई है। प्रत्येक घटना और दृश्य की अपनी अपनी विशेषता है और वे विश्रृंखल होते हुए भी एक ऐसे सूत्र में बंधे चलते हैं कि उनमें पृथकत्व का आभास ही नहीं होने पाता। कभी कभी तो पाठक को ऐसा भान होने लगता है कि ये सभी लघु-कथाएँ महत्त्वपूर्ण जीवन विश्लेषक चित्र हैं जिन्हें एक सूत्र में बांध कर लेखक ने अपने बुद्धि-बल से एक विशाल कथानक के रूप में प्रस्तुत कर दिया है।

प्रेमचन्दजी का मानव-चरित्र का भी अपरिमित ज्ञान है और उनका विवेचन भी बड़ी सफलता के साथ हुआ है। किसान जमींदार, मजदूर मिल-मालिक शिक्षित अशिक्षित, सच्चरित्र-दुश्चरित्र स्त्री-पुरुष, सभ्य-ग्रामीण बालक बालिकाएं आदि सभी पात्रों का वर्णन इतना आकर्षक और पूर्ण है कि वे उपन्यासों के रंग मंच पर अपना अभिनय करके अपना स्थायी प्रभाव हमारे हृदय-पटल पर अंकित कर जाते हैं। मानसिक वृत्तियों के सूक्ष्म विश्लेषण और उनके उत्थान-पतन के चित्र अंकित करने में तो प्रेमचन्द जी ने कमाल कर दिखाया है।

उदाहरणार्थ–'प्रेमाश्रम' में से ज्ञानशंकर,'रंगभूमि' से सूरदास और विनय, 'सेवासदन' में से पदमसिंह और सुमन, 'गोदान' में से होरी-धनिया, गोबर-झुनिया, मातादीन-सिलिया, मेहता-मालती, खन्ना-गोविंदी, और 'ग़बन' में से रामनाथ और जालपा के चरित्रों को ले लीजिये। अपने नित्यप्रति के जीवन-क्षेत्र में हमें जिस प्रकार के मनुष्य मिलते है, उनकी ठीक प्रतिकृति उन्होंने खींच दी है।

"चुहिया-दोहरी देह की काली-कलूटी, नाटी, कुरूपा, बड़े-बड़े स्तनों वाली स्त्री थी।" "गोबर-सांवला, लम्बा, एकहरा युवक था।" "बड़ी लड़की सोना लज्जाशीला कुमारी थी, सांवली, सुडौल, प्रसन्न और चपल। गाढ़े की लाल साड़ी, जिसे वह घुटनो से मोडकर कमर में बांधे हुए थी, उसके हल्के शरीर पर कुछ लदी-हुई सी थी, और उसे प्रौढता की गरिमा दे रही थी। छोटी रूपा पांच-छः साल की छोकरी थी, मैली, सिर पर बालों का एक घोंसला-सा बना हुआ, एक लंगोटी कमर में बांधे, बहुत ही ढीठ और रोनी।" "झींगुरी सिंह नाटे, मोटे, खल्वाट, काले, लम्बी नाक और बड़ी बड़ी मूंछों वाले आदमी थे–बिल्कुल विदूषक जैसे।" इसी प्रकार 'रंगभूमि' में "सूरदास एक बहुत ही क्षीणकाय, दुर्बल और सरल व्यक्ति था। उसे दैव ने कदाचित् भीख मांगने के लिए ही बनाया था।" "जानसेवक दुहरे बदन के गोरे-चट्टे आदमी थे। बुढ़ापे में भी चेहरा लाल था। ----मुख की आकृति से गरूर और आत्म-विश्वास झलकता था।" "मिसेज़ सेवक के चेहरे पर झुरियां पड़ गई थीं, उससे उसके हृदय की संकीर्णता टपकती थी।" प्रेमचन्दजी के इन चित्रों में जो स्वाभाविकता और ताज़गी है–उसका प्रमुख कारण है–मानव-स्वभाव की उनकी खरी परख और जीवन की सच्ची परिस्थितियो का मार्मिक अनुभव। अपने उदार और ऊंचे हृदय को संसार के वास्तविक व्यवहारो के बीच रखकर उन्होने जो संवेदना प्राप्त की है–उसी की व्यंजना उनके उपन्यासो में यत्र-तत्र बिखरी पड़ी है। इसके अलावा उन्हें ग्राम्य-जीवन, वहां के दृश्यों, खेलो, पुरुष तथा स्त्रियो के स्वभावो का, उनके सामाजिक, नैतिक और पारिवारिक जीवन–विशेषताओं का बहुत ही निकट-परिचय प्राप्त था। उनके कुछ पात्रों में ऐसे स्वाभाविक ढांचे की व्यक्तिगत विशेषताएं मिलती है कि जिन्हे सामने पाकर हमें यह भ्रम होने लगता है कि इनका और हमारा कही न कही साक्षात्कार हुआ है। नि.संदेह, उनके मनोहर और रस छलकाते चित्र बिल्कुल सच्चे और खरे उतरे हैं। उनमें मार्मिकता और अनूठी व्यंजना है। उनके भीतर से एक सच्चा हृदय झांक रहा है।

किरणों में नहा रही थीं और मिल्लो विकिप्त-सी स्वप्न-छाया की भांति नदी में चली जा रही थी।

प्रेमचन्द जी के उपन्यासों में कथोपकथन भी एक मुख्य तत्व है जिसके द्वारा उन्होंने अपने विचारों, आदर्शों और सिद्धान्तों का प्रकट किया है। उनके कथोपकथन बहुत ही सजीव पात्रों के अनुकूल सारगर्भित और प्रभावशाली होते हैं। वे नपे तुले अधिक बड़ न अधिक छोटे और व्यर्थ के शब्दाडम्बर से विनिर्मुक्त होते हैं।

आरोप प्रत्यारोप का एक दृश्य देखिए —
'मिस मालती ने तन्खा को तिरस्कार भरी आंखों से देखा।

"आप लोग इतने कायर हैं यह मैं न समझती थी।

'मैं भी यह न समझता था कि आपको रुपये इतने प्यारे हैं और वह भी मुफ्त के।

जब आप लोग मेरा अपमान देख सकते हैं, तो अपने घर की स्त्रियों का भी अपमान देख सकते होंगे ?

"तो आप भी पैसे के लिये घर के पुरुषों को होम करने में सकोच न करेंगी।"

एक औपन्यासिक के लिए जिस प्रकार की भाषा वाछनीय है वैसी ही प्रेमचन्द जी को प्राप्त है। उनमें ईश्वर प्रदत्त प्रतिभा है और वह सृजनात्मक कल्पना है जिसके फलस्वरूप उनकी भाषा अत्यन्त मधुर, ओजपूर्ण, मुहावरेदार और रचनाकौशल एवं आकर्षक शब्दावली से युक्त है। ऐसा प्रतीत होता है मानों उसमें नैसर्गिक प्रवाह है और वह स्वयमेव कलम से फिसलती चलती है। प्रत्येक पात्र की चारित्रिक विशेषताओं योग्यता परिस्थिति और अवस्था के अनुरूप कहीं तो भाषा अत्यन्त परिमार्जित, सारगर्भित साहित्यिक और संस्कृतमय हो गई है —

'वैवाहिक जीवन के प्रभात में लालसा अपनी गुलाबी मादकता के साथ उदय होती है और हृदय के सारे आकाश को अपने माधुर्य की सुनहरी किरणों से रंजित कर देती है। फिर मध्याह्न का प्रखर ताप आता है क्षण क्षण पर बगूले उठते हैं और पृथ्वी कांपने लगती है। लालसा का सुनहरा आवरण हट जाता है और वास्तविकता अपने नग्न रूप में सामने आ खड़ी होती है। उसके बाद विश्राममय

संध्या आती है, शीतल और शान्त जब हम थके हुए पथिकों की भांति दिन भर की यात्रा का वृत्तान्त कहते और सुनते हैं, तटस्थ भाव से मानों हम किसी ऊंचे शिखर पर जा बैठे हैं, जहां नीचे का जनरव हम तक नहीं पहुंचता ।"

कहीं इतनी उर्दू मय हो गई है कि जिसका आशय उर्दू के अच्छे जानकार ही समझ सकते है ।

"मैं इख़राज की तहरीक पर एतराज़ करने को जुरअत कर सकता हूं ।"

कहीं सरल, कहीं साहित्यिक, कही उर्दूमय, कही संस्कृतगर्भित, कहीं क्लिष्ट, तो कहीं ग्रामीण—कहने का तात्पर्य यह है कि अपनी भाषा को पात्र, परिस्थिति और प्रसंगानुकूल मोड़ने-तोड़ने में वे अत्यन्त सिद्धहस्त थे । हिन्दी-उर्दू की उन्हें पूर्ण जानकारी थी ।

कुछ साहित्यिक विद्वानो के मतानुसार प्रेमचन्दजी नारी के चरित्र-चित्रण में असफल हुए हैं, किन्तु हमें तो लगता है कि नारी की शक्ति और दुर्बलताओं का, उनके सामाजिक, नैतिक और शारीरिक स्वभाव एवं विशेषताओं का, उनकी रुचि, आदर्श, भावना तथा चारित्रिक उत्थान-पतन आदि का जितना मनोवैज्ञानिक विश्लेषण प्रेमचन्द ने किया है उतना अन्य किसी आधुनिक उपन्यासकार ने नही । नारी कब प्रेम करती है, कब द्वेष करती है, कब उसके हृदय के तार सहसा झनझना उठते हैं, कब वह पश्चात्ताप और आत्मग्लानि से भर जाती है, प्रेम में वह कितनी द्रवीभूत हो उठती है, क्रोध और प्रतिशोध के समय वह किस प्रकार चण्डी का रूप धारण कर लेती है, लज्जा से वह कितनी मर सी जाती है और गर्वोन्मत्त वह कितनी उज्ज्वल और गौरवमयी हो उठती है—इसका जितना ज्ञान प्रेमचन्दजी को था, उतना कदाचित् ही अन्य किसी को । सुमन, धनिया, जालपा, निर्मला, झुनिया, सिलिया, गोविंदी आदि के चरित्र क्या भुलाए जा सकते हैं ।

कहानी-क्षेत्र मे भी प्रेमचन्दजी ने अद्वितीय कार्य किया है । उनकी कहानियों में मार्मिक प्रसंगों और दृश्यों का चुनाव, प्रभाव की व्यंजना एवं निगूढ़ मनोगतियों का निदर्शन हुआ है । वस्तुतः यदि मार्मिकता एवं प्रभाव की दृष्टि से देखा जाय तो उनका महत्त्व उपन्यासों से कम नहीं है । वरन् यों कहना चाहिये कि उनकी कहानियों में जो जीवन-सम्पर्क और सहानुभूति है, कल्पना की मनोरमता के साथ-साथ मानव-स्वभाव का सूक्ष्म विश्लेषण और वैचित्र्य है

तथा कहानी कहने के ढंग में जो नैसर्गिक प्रवाह एवं प्रतिभा है—उसी के कारण वे हिन्दी-कहानी के जन्मदाता कहे गए हैं और उसी का परिणाम है कि हमारा कहानी-साहित्य विश्व साहित्य में कुछ स्थान पा सका है।

उनकी कई कहानियों के अनुवाद जापानी, अंग्रेजी, रूसी तथा कई भारतीय भाषाओं में प्रकाशित हो चुके हैं। ग्राम्य-जीवन का जो यथार्थ एवं स्वाभाविक चित्रण, वस्तुविन्यास की अकृत्रिमता एवं अनुभूति प्रवणता जो हमें इनके उपन्यासों और कहानियों में मिलती है—वह बेजोड़ है। निःसंदेह, हिन्दी कथा-साहित्य में एक ये ही ऐसे अन्तरद्रष्टा कलाकार हुए हैं जिन्हें अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त है और जो निर्विवाद रूप से भारतीय उपन्यास तथा कहानी-साहित्य के प्रतिनिधि माने गए हैं।

प्रेमचन्द और गोर्की

गोर्की का उदय

रूस के साहित्यिक गगन में मक्सिम गोर्की के उदित होने के पूर्व तत्कालीन कथा-साहित्य सस्ते और भद्दे किस्सों, उच्छृंखलता और उन्माद के गर्त में पड़ा था। उसमें विलासिता, धनिकों के कार्य कलाप, रहन सहन, मनोरंजन और प्रेम-व्यंजना का ही चित्रण विशेष रूप से था। जितने भी उपन्यास और कहानियां अब तक लिखी गई थीं उनमें शृंगार रस और वासनात्मक प्रेम की भावना का ही प्राधान्य था, उनमें था एक स्वप्निल संसार, जो वास्तविकता से अति दूर था। प्रेम, हाव भाव, द्वन्द्व द्वेष के आकर्षक चित्र ही उस साहित्य की जान थे। गोर्की ही सर्वप्रथम कलाकार था जिसने इस प्रवाह में न बह कर त्रस्त मानवता का—सदियों से दासता की शृंखला में बंधे किसान-मजदूरों का—उत्पीड़ित एवं शोषित नर-नारियों, बच्चों एवं ग्रामीणों का जीता-जागता चित्र अंकित किया। उसने ही पहली बार अपने उपन्यासों में अपने देश के समकालीन जीवन और संघर्ष, गरीबी के हृदयविदारक दुखों एवं कटु अनुभवों का दिग्दर्शन कराया। कारण स्पष्ट है। उसने बचपन से ही दुःख और कष्ट घेरे थे। प्रारम्भिक अवस्था में ही अत्यन्त दीन, विपन्न जीवन-साधना पर जाने के लिये उसे छोड़ दिया गया था। चार वर्ष की आयु में पिता की मृत्यु हुई। दुखिया मां के आश्रित ननिहाल में उसने दरिद्रता पूर्वक जीवन व्यतीत किया। पुनः दुखों के भार से जर्जर मां भी चल बसी। गोर्की को कोमल वय में ही कष्टों और और मुसीबतों का सामना करना पड़ा। भाग्य की विडम्बना! बालक गोर्की को क्या-कुछ नहीं करना पड़ा—बर्तन मांजने का काम, चपरासीगीरी, नानबाई के यहां रोटी सेंकने का काम, चिड़ियां पकड़ कर बेचना, मोची के यहां जूते बनाना, मजदूरी और रेल्वे-चौकीदारी आदि सभी कार्यों को करने के लिये उसे बाध्य होना पड़ा। बस यहां से गोर्की का जीवन समस्त मानवता के हित चिन्तक के रूप में प्रारम्भ होता है।

उसके हृदय में हूक थी, व्यथा की कराह, जिसके अन्तर में चिर प्राण का स्पन्दन जाग्रत था। अपनी वैयक्तिक भाग्य विडम्बना की निष्ठुर वेदना को उसने सार्वजनिक लज्जा एवं तिरस्कार के रूप में देखा। उसकी आत्मा चीत्कार कर उठी। अपने संघर्षों की तस्वीर खींचते हुए उसने एक बार लिखा था, मैं संघर्षों में पला

हूं। मैंने बाल्यावस्था से ही लोगो की असह्य घृणा और कुविचारपूर्ण निष्ठुरता को सहा है। कभी-कभी मुझे आश्चर्य होता था यह देखकर कि कोई तो कष्टो से जजर मुसीबतों का मारा है और कोई प्रचुर वैभव मे खेल रहा है ! मैंने बहुत छोटी उम्र में ही इस बात को समझ लिया था कि बड़े आदमी अपने को न-जानें क्या समझते हैं और उनका असली रूप तो तब दिखाई देता है, जब कि वे गरीब मेहनतकशो से जी-तोड़ काम लेते हैं,उनकी भर्त्सना करते हैं। यह सब मुझे सुहाता न था। मेरे दिल में चिनगारिया-सी जलती थी। कभी-कभी मैं क्रोध और प्रतिशोध की भावना से पागल हो उठता था। मुझे ऐसा प्रतीत होता था, मानो सघन वन मे मैं अपना मार्ग भूल गया हूं, कांटो में उलझा हुआ हूं, ऐसे झाड़-झंखाड़ मे जा फंसा हूं, जहां से मेरा निकलना कठिन हो गया है।" बस, इन्हीं दुरवस्थाओ और विषम परिस्थितियो ने उसे अपने समय का सबसे अधिक लोकप्रिय लेखक बना दिया। वर्तमान समय मे विश्व का कोई ऐसा जाग्रत, मेहनतकश और बुद्धिजीवी वर्ग नही है, जो गोर्की को न जानता हो ।

प्रेमचन्द और उनकी पृष्ठभूमि

लगभग इसी प्रकार प्रेमचन्दजी की साहित्य-साधना भी प्रारम्भ होती है। १५-१६ वर्ष की अवस्था में ही उनके पिता की मृत्यु हो गई थी। तब से सारे परिवार को संभालने की ज़िम्मेदारी उन पर ही आ पडी। अत्यन्त निर्धनता और मुसीबतो से उन्होने अपने दिन काटे। ये उद्‌गार उन्ही के हृदय के तो हैं, जो उन्होने धनिया द्वारा व्यक्त कराये हैं—"फिर वह बैन कहकर रोने लगी—इस घर मे आकर उसने क्या नही झेला, किस-किस तरह पेट-तन नही काटा, किस तरह एक-एक लत्ते को तरसी, किस तरह एक-एक पैसा प्राणो की तरह संचा, किस तरह घर भर को खिला कर आप पानी पीकर सो रही। और आज उन सारे बलिदानो का यह पुरस्कार। भगवान् बैठे यह अन्याय देख रहे हैं और उसकी रक्षा को नही दौड़ते। गज की और द्रौपदी की रक्षा करने वैकुण्ठ से दौड़े थे। आज क्यो नीद सोए हुए हैं ?" नि.सन्देह ये पक्तिया प्रेमचन्द की अपनी आर्थिक कठिनाइयो का भी दिग्दर्शन कराती हैं। अन्ततः जीवन की प्रयोगशाला मे अपने हृदय को मानव-मात्र की पीड़ा मे अभिभूत कर एक नवीन पथ की ओर उन्मुख कर देने की महान् योग-साधना मे

वे अपनी लेखनी के बल पर प्रवृत्त हुए।

उन दिनों हमारा उपन्यास और कहानी-क्षेत्र भी अधूरा और अविकसित था। तिलस्मी और जासूसी उपन्यासों तथा प्रेम-आख्यानों की ही प्रधानता थी। अन्तर्द्वन्द्व, चरित्र चित्रण, सूक्ष्म पर्यवेक्षण एवं मनोवैज्ञानिक विश्लेषण का तो सर्वथा अभाव ही था। प्रेमचन्द ने प्रथम बार उपन्यासों का एक नवीन रूप प्रस्तुत किया। साधारण एवं अश्लील घटनाओं और दृश्यों से पीछा छुड़ा कर वे अपनी प्रौढ़ रचना, उत्कृष्ट व्यंजना-शक्ति एवं सृजन शक्ति द्वारा अपने युग के आगे—बहुत आगे निकल गए। कहने की आवश्यकता नहीं कि उन्होंने गोर्की के सदृश ही अपने उपन्यासों में भारतीय कृषक जीवन का मर्मस्पर्शी और दर्दीला चित्र बड़ी कुशलता के साथ खींचा है।

प्रेमचन्द और गोर्की दोनों ही कलाकारों की यह विशेषता है कि उन्होंने अपने अपने देशों के कथा-साहित्य को परिपुष्ट किया, उसे अग्रगामी बनाया और उसमें जीवन फूंका। वे उन तेजवान् स्वप्नद्रष्टाओं में से थे जिनका जीवन निःशेष हो मशाल की लौ, मध्य अग्नि शिखा के रूप में प्रज्वलित होकर जनता के अन्धकार और तिमिराच्छन्न हृदयों को चैतन्य प्रकाश से जगमगा जाता है और उनमें शक्ति एवं सजीवन डाल देता है। प्राणों को निचोड़ कर मानों वे लिखते थे। उनकी मुस्कराहट में अश्रु छिपे थे, उनके अन्तर्मानस में वह द्वन्द्व और दुर्दम्य इच्छाओं का आलोडन विलोडन था जिसमें मानव मात्र की वेदना पुंजीभूत हुई थी। प्रेमचन्द और गोर्की दोनों ने ही अपने अपने उपन्यासों में किसान और मजदूर के परवश जीवन, उनके कष्टों और संघर्षों का विशद चित्रण कर जमींदार, मिल-मालिक, पटवारी, पुलिस और राज कर्मचारियों के अत्याचार और ज्यादतियों पर प्रहार किया है। नियति की चक्की में पिसते हुए दरिद्र किसान की दुरवस्था और राज कर्मचारियों की उद्दण्डता का चित्रण करते हुए प्रेमचन्द का व्यंग कितना तीव्र और कठोर हो उठा है, देखिए—"ये हमारे ही भाई-बन्द पर हमारी ही गरदन पर छुरी चलाते हैं। किसी ने जरा साफ कपड़े पहने और ये लोग उसके सिर हुए। जिसे घूस न दीजिए, वही आप का दुश्मन। चोरी कीजिए, डाके डालिये, घरों में आग लगाइए, गरीबों का गला काटिए, कोई आप से न बोलेगा। बस, कर्मचारियों की मुट्ठी गरम करते रहिए, दिन दहाड़े खून कीजिए, पर पुलिस की पूजा कर दीजिए, आप बेदाग छूट जायेंगे।

आपके बदले कोई बेकसूर फांसी पर चढ़ा दिया जायगा। कोई फरियाद नहीं सुनता। कौन सुने,सभी एक ही थैली के चट्टे बट्टे है। यह समझ लीजिए कि हिंसक जन्तुओं का गोल है, सब-के-सब मिल कर शिकार करते और मिल-जुल खाते है। राजा है, वह काठ का उल्लू। उसे विलायत मे जाकर विद्वानों के सामने बड़े-बड़े व्याख्यान देने की धुन है। मैने यह किया और मैने वह किया। या तो विलायत की सैर करेगा या यहां अंग्रेजो के साथ शिकार खेलेगा। सारे दिन इन्ही की जूतियां सीधी करेगा, इसके सिवा उसे कोई काम नही, प्रजा जिए या मरे।"

प्रेमचन्द के 'गोदान' और गोर्की के प्रख्यात उपन्यास 'मा' (Mother) मे बहुत-कुछ साम्य है। 'गोदान' का प्रमुख पात्र है 'होरी', जो भारतीय किसान का प्रतिनिधित्व करता है और 'मा' का नायक है 'पावेल व्लासोव' जो एक साधारण और दरिद्र मिल-मजदूर है। मेहनतकश जनता का वह शोषित,उत्पीड़ित,जर्जर मानव किसान और मजदूर सघर्षो के भंवर मे इर्द-गिर्द चक्कर काट रहा है। उसमे कितनी ही कमजोरियां है, असंगतियां है, दुर्बलताएं है, नैतिक त्रुटियां है। कभी वह अपने आदर्श से गिर जाता है। कभी उसकी आत्मा चीत्कार कर उठती है और धनिकों के प्रति विद्रोह करने लगती है। 'गोदान' में होरी की पत्नी धनिया कहती है—"ये हत्यारे हमारे गावके मुखिया है, गरीबो का खून चूसने वाले। सूद-ब्याज, डेढ़ी-सवाई, नजर-नजराना, घूस-घास जैसे भी हो, गरीबो को लूटो। उस पर सुराज चाहिए। जेहल जाने से सुराज न मिलेगा। सुराज मिलेगा धरम से,न्याय से।" 'मा' मे पावेल-व्लासोव के हृदय में भी इसी प्रकार की विद्रोही चिनगारियां सुलग रही है।

'गोदान' में होरी एक आदर्श और सच्चा किसान होने पर भी अपने जीवन मे दो निन्द्य कर्म करता है—एक तो बासों का सौदा करते हुए भाव में बेईमानी करना, दूसरे छोटी कन्या रूपा के विवाह मे रुपये लेकर वृद्ध के हाथ लड़की बेचना। गोर्की के 'मां' उपन्यास मे भी व्लासोव शराब पीता है, गन्दी-गन्दी गालियां देता है। वह अड़ियल और अभिमानी है। उसमे अन्य मजदूरों की भांति ही पारस्परिक घृणा और ईर्ष्या के भाव हैं। इन सब चारित्रिक दुर्बलताओं और नैतिक त्रुटियो का कारण है निर्धनता और परवशता, जो मानव को दानव बना देती है, उसके विवेक

का छा गयी है उसकी कोमलता और जीवन रस को सुखा डालती है। प्रेमचन्द के शब्दों में 'उनकी निरीहता जड़ता की हद तक पहुँच गई है जिसे कोई कठोर आघात ही सचेष्ट बना सकता है।' होरी की मृत्यु के समय एक गाय भी दान करने को नहीं है। उसके जीवन-अवसान का यह दृश्य कितना करुण और रोमांचकारी हो उठा है— 'धनिया यन्त्र की भाँति उठी। आज जो सुतली बेची थी उसके बीस आने पैसे लाई और पति के ठंडे हाथों पर रख कर सामने खड़े दातादीन से बोली— महाराज, घर में न गाय है, न बछिया, न पैसा। यही पैसे हैं, यही इनका गोदान है। और पछाड़ खाकर गिर पड़ी।' ठीक इसी प्रकार पावेल व्लासोव की मृत्यु के समय भी बहुत देर तक उसके लिये कोई रोने वाला नहीं है। उसके शव को दफना कर जब सब लोग चले जाते हैं तो उसका एक मात्र कुत्ता उसकी समाधि पर चुपचाप बैठ अपनी मूक संवेदना प्रकट करता है।

अधूरे ध्वंस से क्रान्ति की ओर

सन् १९०५ और १९१७ की दो रूसी क्रान्तियाँ गोर्की के हृदय पर अपना स्थायी प्रभाव छोड़ गई थीं। उसने बोल्शेविकों का साथ दिया था और उन महान् क्षणों में वह क्रान्ति के उस अग्रदूत मशालची के रूप में हमारे समक्ष आता है जिसे हर कदम पर अपनी कठोर साधना की सचाई की कड़ी परीक्षा देनी होती है। उसकी सिद्धान्त निष्ठा, दलितों, पीड़ितों और दुखियों के प्रति उसका अनुपम स्नेह एवं सहानुभूति, समग्र मानवता के प्रति उसकी स्वाभाविक सद्भावना और प्रबुद्ध अधिकारों के लिये सजग एवं क्रियाशील होने की उसकी सहजात प्रवृत्ति उसकी शक्तिशाली आत्मा की परिचायक है। ये तीनों 'फोमा गोर्दयेव', 'दि ओर्लोव्स' 'दि आर्तमोनोव्स', 'क्लिम सोमगिन की जीवनी' आदि उसकी महान् रचनाएँ शिष्ट समाज के अधूरे ध्वंस की चिरन्तन शौर्य-गाथा है। वह संघर्षों का अंकुर था और गरीबी की गोद में पला था। साधना और तपस्या, प्रतिभा और प्रयत्न, अनुभव और अध्ययन, प्रेम और घृणा के अनमिल भावों को हृदय में संजोए एक सचोट और शक्तिशाली कलम से वह अबाध गति से लिखता चला जा रहा था। उसकी रचनाओं में तप्त निःश्वास छिपे हैं, आँसुओं की अनमोल बूँदें अन्तर्निहित हैं जो कसक-कसक कर निकल पड़ती हैं। निःसन्देह वह जनता का साथी था। उसे अपने सिद्धांतों के बीज

जनता के हृदय की धरती पर वोने थे। किसानों और मज़दूरों की दयनीय स्थिति का चित्र खींचते हुए वह लिखता है–'हमारे इन दुखी भाइयो का कोई इतिहास नही। इतिहास उनका होना चाहिए। इतिहास का उन्होने निर्माण किया है, किन्तु वे इसे जानते नहीं। वे इसे लिख नही सकते,समझ नहीं सकते,इसका एक वहुत ही छोटा-सा तुच्छ कारण है कि वे अशिक्षित,भोले मानव हमारे इतिहास में पशु से भी वदतर समझे जाते है। वे उच्च वर्ग और धनिकों की स्वतन्त्रता का अपहरण करने वाले समाज का अभिशाप और कलंक के रूप में देखे जाते है। यद्यपि उन्होने ही राजाओ की उच्च अट्टालिकाओ की सुदृढ़ प्राचीरें चिनी है, उन्होने ही विशाल नगरो लम्बी चौड़ी सड़कों, कोठियों, किलो और महलो का निर्माण किया है, उन्होंने ही हमारे लिये सुन्दर सुन्दर वस्त्र, दरी, कालीन और तरह तरह की रेशमी पोशाके वनाई है; चमड़ा, ऊन, लकड़ी, धातु आदि विभिन्न प्रसाधनों से उन्होने ही हमारी सुख-सुविधा की चीजे प्रस्तुत की है; उन्होने ही सजावट की चीजे देकर हमे सजाया है, हमे वड़ा वनाया है, हमे सुख और सम्मान प्रदान किया है, उन्ही के अनुग्रह से हम मनुष्य कहलाने योग्य हुए है– यही नही, वे हमें रोटी देते है, हमारा पेट भरते है, हमारे पोषक और प्रतिपालक है, किन्तु हमारी कृतघ्नता तो देखिए कि हम उनको अपनाने, अपना वताने और पास विठाने मे भी शर्माते है, लज्जा से सिर झुका लेते हैं।"

हिन्दी के औपन्यासिक सम्राट् प्रेमचन्द के हृदय मे भी किसानो और मजदूरो के प्रति ऐसा ही असीम स्नेह का स्रोत उमडा पड़ रहा था। 'रंगभूमि', 'प्रेमाश्रम', 'सेवा सदन', 'कायाकल्प', 'कर्मभूमि', 'निर्मला' आदि उनके उपन्यासों में मानव की महानता में विश्वास, पतन के गर्त मे पड़े हुए व्यक्तियो के कल्याण की दृढ़ भावना, गरीवो से प्यार, श्रमिको के उद्धार की भावना आदि सभी गोर्की की प्रमुख प्रवृत्तिया विद्यमान थीं। ठीक गोर्की के ही भाव उनकी निम्न लिखित पंक्तियो मे प्रतिध्वनित हो रहे हैं– "आपके मजूर विलो मे रहते है–गन्दे, वदवूदार विलो मे–जहां आप एक मिनट भी रह जायें, तो आप को कै हो जाय। कपड़े जो वे पहनते है, उनसे आप अपने जूते भी न पोछेगे। खाना जो वे खाते है, वह आप का कुत्ता भी न खाएगा।'

प्रेमचन्द और गोर्की दोनों ही यथार्थवादी कलाकार है। दोनों में सहानुभूति, पैनी अर्न्तदृष्टि, विलक्षण प्रतिभा और चित्रण शक्ति है। विचार-धाराओ एवं जीवन-दृष्टियो की समता मे भी वे किसी हद तक एक ही स्तर पर है।

उनकी विशेषता इस बात में है कि उन्होंने मनोरंजक और कल्पनापूर्ण कथा-साहित्य एवं उच्चवर्ग और निम्नवर्ग के बीच की चौड़ी खाई को सर्वथा मिटा दिया। उन्होंने अपनी कल्पना-शक्ति भाव-गाम्भीर्य और मनोवैज्ञानिक बारीकियों तथा सहानुभूति-पूर्ण उद्गारों को प्रकट करके बहुत अधिक प्रसिद्धि और लोकप्रियता प्राप्त की। प्रेमचन्द और गोर्की के उपन्यास अपनी सूक्ष्म विविधताओं और मर्मचित्रात्मक प्रभाव उत्पन्न करने में अपना सानी नहीं रखते। वर्षों बीत गये, किन्तु उनके उपन्यासों के पात्र आज भी हमारी कल्पना में जीवित हैं। उनके विचार काय-कल्प हम कभी भूल नहीं पाते—मानों उनका अंकन उस सधी और निर्भीक कलम से हुआ है, जो विश्व की विराट् चित्रशाला में अगणित चित्र नित्य बनाती और मिटाती है।

भारत से कोसों दूर रूस में मलोनक ने जो एक बार गोर्की के बारे में लिखा था, वही आज प्रेमचन्द पर भी हू-ब-हू लागू होता है—“गोर्की की महत्ता इसमें है कि वह जनता का सच्चा कलाकार है। उसमें मानसिक शक्तियों का पूर्णरूपेण प्रस्फुरण हुआ है। संघर्षों की कड़ी चोट से उसकी वृत्तियाँ सजग हो गई हैं, उसकी आत्मा में सजगता आ गई है, धमनियों में स्फूर्ति भर गई है। वह नितान्त सजग और सचेष्ट है। उसके उपन्यास गरीबों की गीता है। उनमें किसानों और मजदूरों की करुण आहें और चीत्कार छिपे हैं। इस प्रकार उसने सर्वसाधारण को जीत लिया है, उन्हें अपना मित्र और सच्चा हितैषी बना लिया है।’

गेटे और प्रसाद

श्री जयशंकर प्रसाद
जन्म-विक्रम सम्वत्-१९४६
मृत्यु-विक्रम सम्वत्-१९९४

जर्मनी का महान् कलाकार योहान वुल्फगांग गेटे
जन्म-सन्-१७४९
मृत्यु-सन्-१८३२
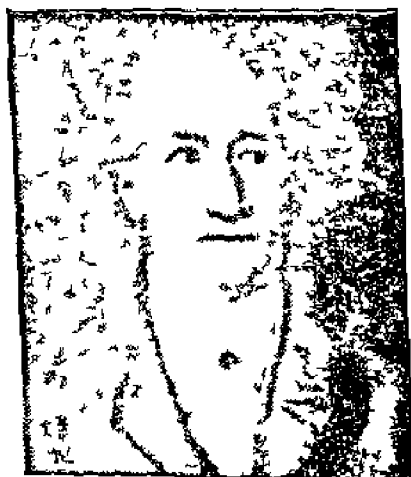
गेटे और प्रसाद—दोनों ने कला-साधना के भग्न खण्डहर में एक दिन चंचल मन, किन्तु अकम्पित करों से स्नेह-दीप संजोया था और आकुल प्राण एवं हृदय की टीस लिए वे अनिश्चित् काल तक किसी तिमिराच्छन्न अज्ञात-पथ में भटकते रहे थे, जहां प्रेम और साधना के द्वन्द्व ने उनके मार्ग को दुर्गम बना दिया था तथा जहां उनकी वंदिनी, आहत आत्मा रह-रह कर न जाने कितनी बार तड़प पुकार उठी थी, "मै एक भटकी हुई बुलबुल हूं। मुझे किसी टूटी डाल पर अंधकार बिता लेने दो। इस रजनी-विश्राम का मूल्य अंतिम तान सुनाकर जाऊंगी।"

जर्मनी के महामहिम, वयोवृद्ध कलाकार गेटे के साथ तरुण-कवि प्रसाद की तुलना का प्रयास कदाचित कुछ साहित्य-रसिकों को हास्यास्पद प्रतीत हो, किन्तु जिस बहुमुखी-प्रतिभा और विराट्-कल्पना के सहारे गेटे ने अपने महाग्रन्थ 'फॉस्ट' (faust) की रचना साठ वर्ष के लम्बे, दीर्घ-काल में अपने तरल रक्त-कणों से सींच-सींच अत्यन्त कठिनाई से पूरी की थी, उस अलौकिक प्रतिभा का आभास प्रसाद में हमें उनके अल्प जीवन काल में ही हो गया था। जिन कला-पारखियों ने उनके अन्तर में संचित अनंत वैभव का यत्किंचित आभास पाया है, वे इस अप्रत्याशित भावना को मन में लाये बिना नहीं रह सकते—काश ! वे कुछ दिन और जीवित रह पाते। नि.सन्देह, इन युग्म व्यक्तित्वों में अनेक असमानताओं के बावजूद भी जो एक विशेष समानता दृष्टिगत होती है—वह है उनके स्वभावों की विचित्रता, रंजित कल्पना, दार्शनिक रहस्यात्मकता और असाधारण, निर्व्याज्य भाव-सघनता में। जीवन के कगार पर खड़े हो दोनों ने प्रकृति के अणु-अणु मे प्रेमतत्व को सन्निहित कर यौवन के मादक सौंदर्य-स्वप्नो को कल्पना की निविड़ रंगीनियो मे आख-मिचौनी करते देखा था और उनके मन का आह्लाद व विफल प्रेम का अवसाद सुख-दु.ख के विविध, रंगीन चित्रों को सृजन करने में समर्थ हुआ था। कहना न होगा—दोनों की रचनाओ मे एक स्वप्निल मानसिक वातावरण और व्यथा का सम्मोहन है। प्रेमोन्माद और बाह्य-सौन्दर्य की अभिव्यक्ति में उनके भाव जितने ही अन्तर्गूढ़ होते गये हैं—उनकी भावाभिव्यंजन की कला भी उतनी ही सघन और गुम्फित होती गई है। न जाने उन्होंने कितनी बार नीरव क्षणों में अपनी अलसायी, अर्द्धनिमीलित पलकों को तन्मयता की कारा

में बन्दी बना किन्हीं अज्ञात कारणों से अपने मन के अन्तरतम प्रदेश में एक विचित्र उमंग, एक विचित्र कसमसाहट और मीठी व्यथा का अनुभव किया था। यौवन का उद्दाम वेग कभी उनकी धमनियों में इतना तीव्र हो उठता था कि उन्हें ऐसा लगता मानो वे इसे रोक सकने में असमर्थ हैं। एक अजीब मदहोशी एवं तन्द्रिलता में उन्हें वातावरण की निस्तब्ध शान्ति, असीम शून्य का मूक मौन, और जीवन की बृहत्तम शून्यता अखरने लगती। उनका मन किसी अज्ञात वस्तु के साक्षात्कार की लालसा में तड़प उठता। जब शुभ्र स्निग्ध चान्दनी की पतली सी हल्की, झीनी चादर प्रकृति पर छा जाती और आकाश में बादल के सफेद, छोटे टुकड़े चपल शिशु से इठलाते डोलते, जब सारा संसार बेखबर सो जाता और ज्योत्स्ना पर तिरते हुए शीतल बयार के झोंके एक छोर से दूसरे छोर तक लहरा-लहरा उठते, तब उनके हृदय की उमंग, आकांक्षा और मस्तिष्क की अशान्ति चान्दनी के दूरस्थ तट पर टकरा कर लौट आती और किसी का किसी के प्रति नीरव संदेश कहती हुई प्रकृति के तार तार में प्रकम्पन भर देती।

यौवन स्वप्न

अपने जन्मस्थान फ्रांकफुर्ट नगर में स्थित अपने विशाल पारिवारिक भवन की खिड़कियों से गेटे ने न जाने कितनी बार आत्म विभोर हो धुन्धलि के आवरण में आवृत प्रकृति के अदृश्य सपना में अपनी प्रेयसियों के सुन्दर मुख मण्डल का दर्शन किया था। अहह, नवयौवना ग्रेशन की व्यथाभरी स्निग्ध मुस्कान और चपल नैनों के क्रूर कटाक्ष न जाने कितनी बार उसकी गीली आंखों के समक्ष बिजली से कौंध गये थे कि ह कि वह गर्भघाती और पीड़क होने पर भी यावज्जीवन न भुला सका था। एक स्थल पर वह लिखता है —

"उसका प्यारा गोल मुख खिड़की से बाहर लटका हुआ था। सचमुच, मैंने उसे आकाश की ओर निहारते देखा। वह जरा भी हिली डुली नहीं। बहुत धीमी धीमी पुराने गीत की अस्पष्ट सी एक कड़ी सुन पड़ रही थी "यदि मैं चिड़िया होती।" वह नगर की सुदृढ़, विशाल प्राचीरों का अवलोकन कर रहे थे, और उसकी विरह-व्यथा पर अट्टहास-सा करते प्रतीत होते थे।"

अपनी द्वितीय प्रेयसी फ्रेडरिका ब्रायन की सरल उत्सुकता, उद्दीप्त लालसा एवं निराश प्रेम की आकुल पीड़ा को भी वह मन ही मन सोच अधीर हो उठता था, जिसके सच्चे प्रेम की अवहेलना कर उसने घोर अपराध किया था और जिसके

लिये वह अपने आप को कभी क्षमा न कर सका। 'फॉस्ट' के प्रथम भाग की नायिका मागरिट उसकी प्रेयसी फ्रेडरिका ब्रायन की प्रतीक ही है, जिसकी सच्ची लगन और 'प्रेम की पीर' को उसने निम्नलिखित पंक्तियों में इस प्रकार व्यक्त किया है--

"मेरी शांति भंग हो गई।
मेरा हृदय तड़प रहा है ।
आह! उस शांति को मैं कभी न पा सकूंगी--न--न कभी नहीं।
केवल उसे देखने के लिये ही मैं यहां बैठी हूं।
केवल उससे मिलने के लिये ही मैं घर से निकल पड़ी हूं।"

'फॉस्ट' में मागरिट की दयनीय स्थिति पर फॉस्ट का हृदय भी द्रवीभूत हो उठता है और वह अपनी दुर्बुद्धि और अनुचित व्यवहार पर आत्मग्लानि से भर जाता है, जिससे कि हम फ्रेडरिका ब्रायन के प्रति गेटे की अन्तर्व्यथा और मानसिक अनुताप का सहज ही अनुमान लगा सकते हैं।

सुन्दर युवक गेटे के आकर्षक व्यक्तित्व पर मुग्ध होने वाली मनचली छोकरियो की कभी कमी न रही और एक के बाद एक उसे अपने प्रेमपाश में आबद्ध करने की मानो होड़ सी लगा रही थी। कैशन, फ्रेडरिका ब्रायन, लोट (चारलोटवफ), लिली, चारलोट फॉन स्टाइन, क्रिश्चियन वुलूपियस आदि अनेक सुन्दरी सुकुमारियां उसके जीवन मे आई। सभी ने उसके हृदय के तार झनझना दिये, किन्तु किसी के प्रति भी वह विश्वस्त न रह सका और प्रेम की शृंखलाएं उसके अस्थिर मन को कभी बांध कर न रख सकीं। गेटे के प्रेम का दम्भ, उसके हृदय की जलन, किसी मे अपने हृदय का समूचा प्रेम उंड़ेल देने की उसकी उत्कट इच्छा, किसी मे अपने को खो देने, अपने अस्तित्व को विलीन कर देने की उसकी अतृप्त लालसा कभी पूरी न हो पाई। उसने स्वयं लिखा है--"मेरे जीवन का सबसे बड़ा आनन्द है उस वस्तु की अभिलाषा, जो मेरी पकड़ से बाहर है--जो मुझ से अदृश्य है।" आदर्शवादियो की दृष्टि मे गेटे का यह कदाचित् सबसे महान् अपराध था, किन्तु उसकी उसने पर्वाह न की। वह आजन्म स्वच्छन्द प्रेम का उपासक रहा।

"आह! यह पृथ्वी, यह सूर्य
यह उल्लास, यह आनन्द
यह प्रेम, यह आकर्षण

कितना सुन्दर है, कितना मोहक और कितना सुखकर जैसे प्रभातकालीन

मेघ पर्वत शिखरों पर उड़ानें भरते हों।"

प्रेम की मधुर व्यथा की अभिव्यंजना करते हुए गेटे लिखता है—

"प्रेम में स्वर्गीय आनन्द और मृत्यु का-सी यन्त्रणा है, किन्तु जो प्रेम करता है वही सच्चा सुखी और भाग्यवान् है।"

प्रसाद भी जब 'निर्जन प्रान्त में अन्धकार भरे आकाश में नीचे तारों से अठखेलियाँ करता अथवा बाह्य सौन्दर्य की रमणीयता में उनका मन विभोर हो जाता तो वे 'पावस की मेघमाला में छिपे हुए आनन्द पिंड को निरखने की अदम्य चेष्टा करते।' प्रेम की अभ्यर्थना में वे लिखते हैं, "स्वास्थ्य, सरलता तथा सौन्दर्य के प्राप्त कर लेने पर प्रेम-प्याले का एक घूंट पीना पिलाना ही आनन्द है। इसकी पूर्णता बन्धनयुक्त होने पर ही सम्भव है।'

अल्हड़ यौवन की देहरी पर पाँव रखते ही उन्होंने प्रेम की कसक का अनुभव किया था और वह ही उनके हृदय का मूक हाहाकार बन उनके स्वरों में पिघल गया था।

'माधव! जब से तेरा साथ छूटा तब से असन्तोष, अतृप्ति और अटूट अभिलाषाओं ने हृदय को पागल बना डाला। इन विहंगमों का कलरव मन को शांत होकर थोड़ी देर भी सोने नहीं देता। यौवन सुख के लिये आता है—यह एक भारी भ्रम है। आशामय भावी सुखों के लिये इसे कठोर कर्मों का सङ्कलन ही कहना होगा। उन्नति के लिये मैं भी पहली दौड़ लगाने वाला हूँ। देखूँ क्या अदृष्ट में है।'

कभी कभी उनके हृदय के किसी सुदूर भीतरी कोने में उदासी उभर आती और एक हल्का-सा अजीब-सा बोझ मन पर छा जाता। अल्हड़ी प्रकृति जब पत्तों की पायल झनकारती और इन्द्रधनुष की रंगीनी एवं बिजली की कौंध के चमचमाते आभूषण धारण कर इठलाती, मचलती नीलाकाश में मेघमाला से आँखें लड़ाती तो कवि के हृदय-पटल पर किसी निर्मम बाला की चाह मचल उठती, अधरों पर अनुराग बिखर आता और नयनों में विरह की छाया छटपटा उठती। मौन वातावरण में वह खोया सा अवाक् बैठा रह जाता और विशाल गहरी वेदना में उन्हें एक चुटीली मिठास का अनुभव होता। एक अस्पष्ट-सा आकार, प्रतिक्षण विलीन होकर पुनः जुड़ती हुई वर्तुल रेखाओं से घिरा एक ज्योतिपुंज मानवाकार उनके नेत्रों के समक्ष थिरक उठता जिससे उन्हें अनिर्वचनीय सुख शान्ति की अनुभूति होती। "अजातशत्रु' से उद्धृत निम्नलिखित पंक्तियों में उनके अपने हृदय की प्रेमोन्मत्त स्थिति का कुछ कुछ आभास मिलता है।

"मल्लिका ! तुम्हें मैंने अपने यौवन के पहले ग्रीष्म की अर्द्ध-रात्रि में आलोक-पूर्ण नक्षत्र लोक से कोमल हीरक कुसुम के रूप में आते देखा। विश्व के असंख्य कोमल कंठ की रसीली तानें पुकार बन कर तुम्हारा अभिनंदन करने, तुम्हें संभाल कर उतारने के लिये नक्षत्र लोक को गई थीं। शिशिर कक्षों से, रिक्त पवन तुम्हारे उतरने की सीढ़ी बना था। ऊषा ने स्वागत किया, चाटुकार मलयानिल परिमल की इच्छा से परिचारक बन गया, और बरजोरी मल्लिका के एक कोमल वृन्त का आसन देकर तुम्हारी सेवा करने लगा। उसने खेलते खेलते तुम्हें उस आसन से भी उठाया और गिराया। तुम्हारे धरणी पर आते ही जटिल जगत् की कुटिल गृहस्थी के आलवाल में आश्चर्यपूर्ण सौन्दर्यमयी रमणी के रूप में तुम्हें सबने देखा।"

'वेर्टेर' और 'आंसू'

कहने की आवश्यकता नहीं कि गेटे और प्रसाद के वैचित्र्यपूर्ण जीवन में जो जो करुण अनुभूतियाँ हुई, जो जो आघात और ठेसे लगी, जो जो वेदना और निराशाऐं संचित होती गई—वे गेटे की लेखनी से 'वेर्टेर के शोकाश्रु' (The sorrows of Werther) और प्रसाद द्वारा 'आंसू' में उमड़ वह चली।

जो घनीभूत पीड़ा थी
मस्तक में स्मृति सी छाई।
दुर्दिन में आंसू बन कर
वह आज बरसने आई।

गेटे ने मन की बहुत ही डांवाडोल स्थिति में अपने रोमांचकारी उपन्यास 'वेर्टेर' की रचना की थी। 'लोट' नाम की एक अठारह वर्षीया किशोरी ने उसके प्रेम को ठुकराकर उसके हृदय पर गहरा आघात किया था। उस मातृ-विहीना बाला के सुन्दर, सौम्य मुख-मंडल, गम्भीर चेष्टा, ललकती दृष्टि और दयार्द्र एवं करुणा-विगलित व्यवहार मे कुछ ऐसा आकर्षण था जो दूसरो को सहज ही वश में कर लेता था। वह जिस खूबी और चतुराई से अपने छोटे छोटे ग्यारह भाई-बहिनों की देखभाल करती और अपनी उद्धत तरुणाई में भी मन को संयत रखकर अपनी समस्त गृह-व्यवस्था को सम्भालती—उससे गेटे के मन पर बिजली की भांति असर हुआ। वह अनजाने में ही अपना सब कुछ उस पर न्यौछावर कर बैठा। लोट का विवाह—सम्बन्ध एक मेधावी युवक जॉन केसनर से तय हो चुका था, अतएव

उसने प्रेम की डोर कभी शिथिल न होने दी और केसनर ने भी सब परिस्थिति से अवगत होते हुए उस पर कभी सन्देह न किया। वह गेटे की भावुकता से परिचित था और लाट की सच्चरित्रता पर उसे इतना दृढ़ विश्वास था कि ईर्ष्या करने का उसे कोई कारण नजर नहीं आया। अन्त में गेटे के भावी जीवन का रंगीन स्वप्न बालू की भीत साबित हुआ। उसकी आशाओं और आकांक्षाओं पर पानी फिर गया। घोर अशांति, विग्रह और मन में करुण क्रन्दन लिये वह निराश्रय और असहाय हो फ्रांकफुर्ट लौट आया। उस समय लाट और केसनर को जो उसने पत्र लिखे हैं, उनकी ध्वनि अत्यन्त विह्वल दर्दीली, अतृप्त प्रेम की प्यास और हृदय की तड़पन से ओतप्रोत है। प्रेम के कंटकाकीर्ण पथ पर वह अरमानों की झोली लेकर प्रेम की भीख मांगने चला था, किन्तु बदले में उसे मिला क्या-निराशा और दुत्कार। वह विक्षिप्त सा हो उठा और आत्महत्या करने की बात सोचने लगा। उन दिनों सोने की मूठवाली एक सुन्दर कृपाण उसके सिरहाने लटकी रहती थी और उसका मन मौत की अंधेरी छाया में भटकता रहता था। उसी समय एक और भयंकर घटना घटी जिससे गेटे के दिल पर मर्मभेदी प्रहार हुआ। यरूशलम नाम का एक धार्मिक प्रवृत्ति का लेखक, जो गेटे से व्यक्तिगत रूप से परिचित था, अपने एक मित्र की पत्नी से असफल प्रेम के कारण आत्महत्या कर बैठा। इस दुख भरे संवाद को सुनकर गेटे तिलमिला उठा और उसने तत्क्षण केसनर को एक अत्यन्त शोक एवं व्यथा भरा पत्र लिखा जिसमें उसने ऐसे कठोर और वज्रहृदय व्यक्तियों की भर्त्सना की जो दूसरों के अरमानों की राख पर अपना घर बसाते हैं। मन की उद्दण्ड स्थिति में लिखा हुआ होने के कारण इसका कथानक भी अत्यन्त प्रचंड और प्रभावोत्पादक सिद्ध हुआ। इसमें एक निराश प्रेमी के दारुण आत्मघात की कथा वर्णित की गई, जिसमें घोर अन्तर्व्यथा और चीत्कार होने से गहरी निराशा और अवसन्नता निहित थी। गेटे ने 'वेर्दर' लिखने के कई वर्ष बाद लिखा था,

"जिस प्रकार जल दारुण शीत से बर्फ की कठोरता में परिणत हो जाता है और किंचित् उष्णता पाकर पिघल कर बह जाता है—उसी प्रकार 'वेर्दर' की रचना करते हुए जो निर्मम परिस्थितियां मेरे दिल पर आ संघटित हो गई थीं वे जरा-सी गर्मी पाते ही उपन्यास में उमड़ आईं।"

इस उपन्यास के छपते ही जर्मनी और सारे यूरोप में खलबली मच गई और कई भाषाओं में इसके अनुवाद हुये। 'वेर्दर' से पूर्व गेटे ने 'गोट्ज विद दि आयरन हैण्ड' (Goetz with the Iron Hand) पुस्तक की रचना की थी, किन्तु अभी तक जनता

उसे जान न पाई थी। 'वेर्टेर' केवल उसी के अल्हड़ यौवन की करुण अभिव्यक्ति न थी, अपितु प्रत्येक तरुण की दुर्दम्य इच्छाओं का आलोड़न प्रकट करती थी। इस उपन्यास को पढकर मनचले युवक-युवतियों के दिल विचलित हो गये और कई प्रेम की भ्रामक स्थिति में आत्महत्या कर बैठे, जिससे गेटे को अपनी सफलता पर गर्व होने के बजाय हार्दिक क्षोभ और पश्चात्ताप हुआ।

प्रसाद द्वारा रचित "आंसू' विरह-काव्य में हृदय का उच्छल आवेग होते हुये भी 'वेर्टेर' जैसी भावों की तीव्रता और विचारों का विस्फोट नही है। पूर्व रचित 'चित्राधार', 'कानन–कुसुम','प्रेम–पथिक' और 'झरना' में जो अव्यवस्थित विषाद, परिवर्त्तनोन्मुखी प्रवृत्ति एवं बिखरे प्रेम की अभिव्यंजना मिलती है वह 'आंसू' में आकर बहुत कुछ संयत और गम्भीर हो गई है। पहले की रचनाओं में अनिर्दिष्ट प्रेयसी के प्रति प्रेम की लौकिक-अलौकिक भावनाएं बिखरी पड़ी हैं, किन्तु 'आंसू' में स्निग्ध आर्द्रता और हृदय की आहें हैं। जिस रूपसी रमणी के सम्पर्क से कवि के दिल में एक अजीब मस्ती, प्रेमोन्माद, विलासितापूर्ण सरसता और यौवन-विलास का उद्रेक हुआ था, वह उसके विछोह से क्षण भर में विलुप्त हो गया। वह तो अपनी झलक दिखाकर शून्य मे समा गई, किन्तु उसकी स्मृति न मिटी। जो तड़पन, जो आकुलता, जो व्यथा वह छोड़ गई-वह बल खाता हुआ 'आंसू' में बह आया। ठीक जिस परिस्थिति में गेटे द्वारा 'वेर्टेर' की रचना हुई उसी परिस्थिति में 'आंसू' भी लिखा गया, किन्तु 'वेर्टेर' में धधकती अग्नि सुलग रही है, जिसकी आंच दूसरों को भी दग्ध करती है और 'आंसू' में शीतल ज्वाला है, जिसका धुआं अन्दर ही अन्दर उठकर रम जाता है। 'वेर्टेर' में प्रचण्डता और दाह है, 'आंसू' में रोदन और करुणा। 'वेर्टेर' में मस्तिष्क की आंधी तूफान बनकर प्रकट हुई है-'आंसू' में प्रशांत भाव-धारा अश्रुकणो मे बिखर फूट पडी है। गेटे की निराशा और कटूक्तिया दिल पर चोट करती हे, प्रसाद की व्यंजना परिष्कृत और हृदय-तल को स्पर्श करने वाली है। कहने की आवश्यकता नही कि विश्व के विरह काव्यों में 'आंसू' का विशिष्ट स्थान है और कवि की आंतरिक जिज्ञासाएं अत्यन्त सूक्ष्म और रम्य होकर प्रकट हुई है। कवि की दृष्टि नारी के बाह्य-सौंदर्य तक ही सीमित नहीं, बरन् अंतर्मुखी और रहस्यमयी होती गई है। सत्य और सौंदर्य मे नित्य डूबे रहने के कारण उसमें सामूहिक अनुभूतियों का एकीकरण है।

इस करुणाकलित हृदय में
अब विकल रागिनी बजती

क्यों हाहाकार स्वरों में
वेदना असीम गरजती ?
बस गई एक बस्ती है
स्मृतियों की इसी हृदय में
नक्षत्रलोक फैला है
जैसे इस नील निलय में।

'आँसू' में प्रेयसी की निष्ठुरता और हृदय की गहरी टीस है। मानस-सागर में अतीत स्मृतियों की ऐसी उथल-पुथल मची हुई है कि जरा भी शांति नहीं। शून्य क्षितिज से हाहाकार की प्रतिध्वनि टकरा टकरा कर लौट आती है और कवि की विकल वेदना को जगा कर बेसुध सा कर जाती है।

मानस सागर के तट पर
क्यों लोल लहर की घातें।
कलकल ध्वनि से है कहतीं
कुछ विस्मृत बीती बातें।

इस विकल वेदना को ले
किसने सुख को ललकारा
वह एक अबोध अकिंचन -
बेसुध चैतन्य हमारा।

आती है शून्य क्षितिज से
क्यों लौट प्रतिध्वनि मेरी
टकराती बिलखाती सी
पगली सी देती फेरी।

अभिलाषाओं की करवट
फिर सुप्त व्यथा का जगना
सुख का सपना हो जाना
भीगी पलकों का लगना।

'आँसू' के अन्त में सुख-दुःख का सामंजस्य और निराश प्रेम का समाधान है। रोने के पश्चात् कवि का मन बहुत हल्का हो गया है।

मानव-जीवन वेदी पर
परिणय हो विरह मिलन का

दुःख-सुख दोनों नाचेंगे
है खेल आँख का मन का।

और भी . . . . .

लिपटे सोते थे मन में
सुख-दुःख दोनों ही ऐसे
चन्द्रिका अंधेरी मिलती
मालती कुंज में जैसे

कवि की आंतरिक कसक इन पंक्तियों में आ विश्राम पाती है और त्रस्त मन को सुखमय जीवन का संदेश दे जाती है।

चेतना लहर न उठेगी
जीवन समुद्र थिर होगा
संध्या हो सर्ग-प्रलय की
विच्छेद मिलन फिर होगा।

विकास-पथ की ओर

गेटे और प्रसाद के जीवन में 'वेर्टेर' और 'आँसू' की रचना एक महत्त्वपूर्ण घटना है। उनकी अपरिपक्वावस्था की खुमारी, आकुलता, पीड़ा, उन्माद और भावोद्वेलन इन प्रारम्भिक कृतियों में आ मानों केन्द्रीभूत हो गया है। किन्तु इन्हें लिखने के पश्चात् पहले की बेचैनी शनैः शनैः भावनाओं की गहराई बनने लगी और प्रेम की उद्दण्डता कोमलता में परिणत हो गई। जीवन का अंधड़ और पागल उन्माद शांत हो गया और अंधकार को विच्छिन्न करके प्रकाश की रेखाये फूट पड़ीं। इन दोनों प्रेम-पथिकों ने अपनी अनवरत साधना से विषमताओं में भी सरल पथ का अन्वेषण किया और वासनाजन्य कलुषता में आध्यात्मिक उत्कर्ष और जीवन की समरसता का आभास पाया।

परिस्थितियों के समयाश्रित प्रभाव के कारण गेटे के जीवन में भी अभूतपूर्व परिवर्तन हो चुका था। अब सीना फुलाकर और सिर ऊंचा करके चलने की चाह कुछ कम हो गई थी, अभिरुचि में परिष्कार हुआ था और श्रृंगार-भावना व सौन्दर्य-प्रेम-चित्र भी तन्मयता के सबे स्वरों में बदल गये थे। फ्रांकफुर्ट के उच्छृंखल जीवन से गेटे का मन अकस्मात् ऊब गया और वह ड्यूक के आमंत्रण पर वाइमार चला आया। कुछ लोगों ने उसके वाइमार में बसने पर आश्चर्य प्रकट किया है, क्यो कि 'गोट्ज़' और 'वेर्टेर' में गेटे ने दरबारी जीवन की विभीषिकाओं का विशद चित्रण

किया है। वस्तुतः फ्रांकफुर्ट के कोलाहलपूर्ण जीवन से दूर भागने की इच्छा के मूल में उसके सामाजिक अथवा राजनीतिक दृष्टिकोण में परिवर्तन होने की बात न थी जैसा कि कुछ लोगों का भ्रम है, प्रत्युत् वह निष्क्रियता में कर्म के आह्वान का कायल था और निम्नस्तर से साहित्य-साधना की उच्च मनोभूमि को स्पर्श करने का हिमायती। उसने मानव-जीवन के विविध पहलुओं में झांकने का प्रयास किया और मनोवृत्तियों के संकीर्ण दायरे से ऊपर उठकर विकास-पथ की ओर अग्रसर होने में गौरव और गर्व का अनुभव किया। जिस समय वाइमार का ड्यूक फ्रांकफुर्ट में गेटे से मिला, उस समय उसका मन अपने चतुर्दिक् वातावरण से अत्यन्त अशान्त रहता था। वह कुछ ऐसे आवारा युवक-युवतियों के कुचक्र में फंस गया था जिसका नेतृत्व स्थानीय बैंकर की लड़की लिली करती थी और जिसके पंजे से छूटना आसान बात न थी। लिली के सौंदर्य सुगठित शरीर के उभार और आकर्षक भावभंगियों पर वह इतना मुग्ध हो उठा था कि सीसनहेम में उसे फ्रेडरिका ब्रायन ने भी इतना आकर्षित न किया था और 'वेर्टेर' की लोट के उन्मत्त प्रेम से भी वह इतने निम्न स्तर प्रभावित न रहा था। गेटे इस 'इश्क' की बला को अपने सिर से टालने की भरसक चेष्टा कर रहा था। उसे लगता था मानो लिली और उसका फैशनेबुल परिवार उसकी जीवन-शक्तियों का ह्रास कर रहा है, उसकी चेतना को शिथिल बना रहा है और रूप की मोहिनी डाल कर उसकी सोचने, समझने और विवेकपूर्वक कार्य करने की शक्ति का अपहरण कर रहा है। अपनी उन दिनों की स्फुट रचनाओं में गेटे ने अपनी इस घृणित आसक्ति के प्रति असंतोष प्रकट किया है और लिली को मायाविनी व जादूगरनी बताया है।

किन्तु वाइमार में आकर रहने पर भी गेटे की जीवन प्रणाली में कोई विशेष अन्तर न हुआ। नौजवान ड्यूक और उसके साथियों के सम्पर्क में निरन्तर आमोद प्रमोद में ही उसे जुटा रहना पड़ता। हां—यहां वह फ्रांकफुर्ट की भांति किसी रूपसी नारी के हाथों की कठपुतली मात्र न था, वरन् उस पर ही सब कार्यों को सम्पन्न करने का उत्तरदायित्व था। वह नृत्यशालाओं, रंगमंचों, नाटकों, खेलों और पार्टियों का स्वयं प्रबन्ध करता कभी घुड़दौड़ और शिकार आदि खेलने की योजना बनाता और कभी वाइमार के इर्दगिर्द के जंगलों और समीपवर्ती ग्रामों में दोस्तों और लड़कियों के साथ सैर-सपाटे को निकल पड़ता। गेटे के इस आचरण की कुछ लोगों ने निंदा की है यहां तक कि अनुभवी और मननशील लेखक वाइलण्ड ने भी इसे पार्थिव वृत्तियों के प्रदर्शन की पराकाष्ठा बताया है। किन्तु गेटे को यह

समय का अपव्यय न लगता—जैसा कि लिली की संगति में उसे ज्ञात होता था। निर्बंध विलास एवं अधिकार की स्पृहा ने उसकी सुप्त चेतना को जगा दिया था और उसका आतरिक प्रेम वाहरी आनन्द से ओतप्रोत हो भीतर से परिपुष्ट और विकसित होता जा रहा था।

११ जून, सन् १७७६ को वह ड्यूक द्वारा स्टेट का प्रिवीकौंसिलर नियुक्त कर दिया गया, जिससे सेना-संचालन और गृह-विभाग की व्यवस्था का भार भी उस पर आ पड़ा। गेटे की जिम्मेदारियाँ वढ़ गई। उसका दैनिक कार्यक्रम अत्यन्त व्यस्त हो गया। वह सारे कामों की स्वयं देखभाल करता और गांव-गांव, घर-घर घूमकर किसानों और ग्रामीणों की जीवनदशा का अवलोकन करता। कभी दूर खेतो अथवा उनकी झोंपड़ियो मे घुसकर उनकी दुरवस्था पर करुणा से भर जाता और ड्यूक से उनकी उन्नति और सुव्यवस्था की सिफारिश करता। एक वार किसी गाँव में आग लगने पर वह स्वयं घटनास्थल पर पहुंच गया और वहुत देर तक अग्नि से संघर्ष करता रहा, उन्ही दिनो उसने लिखा, "मेरी आंखों मे आग की लपटें और धुएं की तसवीर खिच गई है। मेरे पैरो की एड़ियो मे अभी तक कसक और पीड़ा है। फायर-ब्रिगेडो के सम्वन्ध में मेरी पहले की धारणा अव विलकुल वदल गई है।"

वाइमार में रह कर उसने अपना आत्मानुभव वढाया और उसकी विचारधारा भी क्रमशः परिपुष्ट और विकसित होती गई। गेटे के प्रारम्भिक नाटको, उपन्यासो और स्फुट कविताओ मे इतनी परिपक्वता न आई थी, जितनी कि सन १७७५ से लेकर सन् १७८६ तक की उसकी रचनाओ मे दृष्टिगत होती है। इस समय की कृतियाँ जीवन के श्रेष्ठतम चित्रो से पूर्ण हैं। मानव की विभिन्न भावनाओ को उसने सच्चे कलाकार की भांति एक अदृश्य सूत्र में वांध कर दर्शाया है। 'इफीगीनी' (Iphigenia), 'इगमोंट' (Egmont) और 'विल्हेल्म माइस्टर' (Wilhelm Meister) में उसकी दृष्टि जीवन के किसी एक पक्ष अथवा अंश-विशेप पर न पड़ कर समष्टि पर पड़ती है और अनुभूति के व्यस्त पट पर एक विचित्र एक्योत्पादन प्रकाश को विखेर देती है। सिद्धांत रूप से गेटे तो न वदला था, उसके विचारों और दृष्टिकोणो में भी विशेष अन्तर न हुआ था, किन्तु उसकी अभि-व्यंजन-शैली और कला का वाह्य रूप वदल गया था। उसकी भौतिक-प्रवृत्ति अंत प्रवृत्ति में परिणत हो गई थी और रोमांटिसिजम से क्लासिसिजम की ओर उसका सहज झुकाव दीख पड़ता था।

गेटे की चिंतन शक्ति और प्रतिभा का सवसे भव्य रूप उसके एक नाटक

'टारक्वेटो टासो' (Torquato Tasso) में प्रस्फुटित हुआ जिसकी रचना उस वाइमार में आते ही शुरू कर दी थी किन्तु जो लगभग दस वर्षों में इटली लौटने तक समाप्त हुआ। 'वेर्टेर' में दुःख और निराशा का कोलाहल है 'टासो' कवि की वय-संधि की रचना होने के कारण कोमल-कल्पना और प्रौढ़ भावनाओं से ओतप्रोत है। 'वेर्टेर' में यौवन की खुमारी है, पर उसका कोई उपचार नहीं, 'टासो' में समस्या और उसका समाधान साथ साथ प्रस्तुत किया गया है। 'वेर्टेर' का शृंगार और यौवनोन्माद 'टासो' में आत्म-समर्पण और उत्सर्ग में परिणत हो गया है। उसमें गोधूलि की सी मदिर शिथिलता और जीवन की समरसता का पूर्ण सामंजस्य है। उसका 'विल्हेल्म माइस्टर' उपन्यास भी जर्मनी के पारिवारिक और सामाजिक जीवन का सुन्दर दिग्दर्शक है। इसने छपते ही उपन्यास-क्षेत्र में धूम मचा दी और गेटे की विराट् प्रतिभा, सूक्ष्म-चित्रण शक्ति और अनुभव का खजाना खोल कर जनता के समक्ष रख दिया।

वाइमार में आते ही एक और आश्चर्यजनक घटना गेटे के जीवन में घटी। चारलोट वॉन स्टाइन नाम की एक विवाहिता महिला से, जो आयु में उससे सात वर्ष बड़ी थी और जिसके कई बच्चे थे उसका प्रेम हो गया। गेटे के इस विचित्र प्रणय-सम्बन्ध का लोगों ने भिन्न भिन्न अर्थ लगाया है। कुछ व्यक्तियों की सम्मति में चारलोट वॉन स्टाइन के प्रति उसकी आसक्ति फेडरिका और लिली की आसक्ति से सर्वथा भिन्न थी। वह उसे अपनी माँ अथवा अपनी मृत बहिन 'कार्नेली' के रूप में देखता था। उसे देख कर उसमें वासना के बदले समादर का भाव जागृत होता और उसके सम्पर्क से उसे आंतरिक शान्ति एवं साहित्यिक प्रेरणा मिलती। कुछ भी हो—यह सम्बन्ध भी अधिक न टिक सका और वह सन् १७८६ में चारलोट और वाइमार के शासन भार से पिण्ड छुड़ा कर इटली भाग आया। चारलोट को उसके इस आकस्मिक परिवर्तन का कुछ भी पता न लगा और सन् १७८८ में जब वह पुनः वाइमार लौट कर गया तो उनके पारस्परिक सम्बन्ध में पर्याप्त शिथिलता आ गई थी।

कला की साधना

जीवन और विज्ञान संबंधी कतिपय छुटपुट रचनाओं तथा उसकी अपनी 'आत्मकथा' के अतिरिक्त गेटे के जीवन की सबसे महत्तम कृति है 'फास्ट', जिसे पूरा करने में उसकी सारी उम्र ही खप गई। इस महानाटक में उसने अपने जीवन के असंख्य भाव-रूपों, विविध प्रसंगों और विशेष परिस्थितियों को काव्योचित कर दिया, वैयक्तिक धरातल पर पनपनेवाली भीतरी आत्मचेतना की रहस्यात्मक

भावच्छायाओं को उभारकर दर्शाया और स्नेहसिक्त हृदय की करुण-कल्पनाओं को शाश्वत सत्य में परिणत कर दिया। उसकी समस्त अनुभूतियाँ, यौवन की छटपटाहट, संघर्ष, द्वन्द्व, विषमताएं, मधुर और कटु-स्मृतियाँ इसमें बिखरी पड़ी है, मानों अपने जीवन का सारा रस उड़ेलकर उसने विश्वव्यापी वृत्तियों को कला और सौन्दर्य की रंगीनियों में रंग अपनी अमर कलाकृति द्वारा लोकोत्तर और कल्पनातीत रूप दे दिया है। इस महाग्रंथ की कथन-शैली प्रधानतः भावात्मक है, किन्तु साथ ही इसमें बौद्धिक और निगूढ़ दार्शनिक-चिंतन भी दृष्टव्य है। इसका कथानक गेटे से लगभग दो सौ वर्ष पूर्व रचित 'अरफॉस्ट' (Urfaust) नामक पुस्तक से लिया गया है, जिसमें सहस्रों वर्षों से प्रचलित एक दुष्ट और बदकिस्मत जादूगर की अत्यन्त रोचक कथा वर्णित थी। स्वाबिया के निवासी इस जादूगर ने अपने चचा द्वारा दी हुई सम्पत्ति को आमोद-प्रमोद मे उड़ाकर और निर्धन हो जाने पर संतोष करने के बजाय पुनः भौतिक उन्नति की लालसा में अपनी आत्मा को एक शैतान के हाथ बेच दिया था, जिसकी आसुरी-शक्ति की सहायता से वह चौबीस वर्ष तक निर्द्वन्द्व ऐश्वर्य और सांसारिक सुखों का उपभोग करता रहा, किन्तु अंत में उसके पाप का घड़ा इतना लबालब भर गया कि उसके अंग-प्रत्यंग नोच कर उसे नरक की भीषण यातनाओं को सहन करने के लिये फेंक दिया गया। 'अरफॉस्ट' की यह भयंकर कहानी मध्ययुगीन जर्मनी में अत्यन्त प्रसिद्ध थी और इस पुस्तक का यूरोप की समस्त भाषाओं में अनुवाद हो चुका था। एलिज़बेथिन-कालीन अंग्रेजी में अनुवादित होने पर इसने मारलोव को भी प्रभावित किया था और इस कथा का सूत्र पकड़कर उसने एक कल्पित डॉक्टर फॉस्टस की कथा अपने अमर दुःखांत नाटक में प्रस्तुत की थी।

गेटे बाल्यावस्था से ही इस कथा को सुनता आ रहा था। एक दिन कठपुतली के खेल में इसकी पुनरावृत्ति देखकर उसे अद्भुत अंत प्रेरणा मिली और तभी से यह कथा उसके हृदय-पटल पर अंकित हो गई। इसी कथा के आधार पर एक विशद ग्रंथ लिखने का संकल्प-विकल्प उसके मन मे होता रहा और चौबीसवें वर्ष में उसने अपनी यह पुस्तक लिखनी प्रारंभ कर ी। मित्रों की प्रशंसा से उसकी लिखने की गति कभी तीव्र हो जाती और कभी छिद्रान्वेषी व्यक्तियों की निन्दा से उसका उत्साह शिथिल पड़ जाता। मस्तिष्क की अशांति और ऊहापोह मे इस प्रकार कई वर्ष बीत गये और सन १८०६ में 'फॉस्ट' का प्रथम भाग समाप्त हुआ।

गेटे के 'फॉस्ट' में मनुष्य व्यापारी मेफिस्टोफेलीज (शैतान) 'अरफोस्ट' से कम भयंकर और मारलोव के डॉक्टर फॉस्ट नाटक से कम शानदार है, किन्तु उसकी अत्यन्त वीभत्सता और क्रूर चेष्टाओं ने मार्गरेट-ट्रेजेडी को अधिक सजग बना दिया है। मार्गरेट सम्बन्धी करुण दृश्यों का उद्घाटन जल्दी जल्दी होता है जो बीच बीच में गेय पदों के रख देने से अत्यन्त मर्मस्पर्शी और प्रभावोत्पादक होगया है। भोली मार्गरेट जब फॉस्ट की दुर्बलताओं का शिकार होती है और भाई व पिता की मृत्यु के दारुण शोक से विक्षिप्त होकर अत्यन्त करुण गीत गाती है तो समस्त वातावरण विक्षुब्ध हो उठता है।

'ओफ! मेरा दम घुट रहा है, जैसे किसी ने मेरा गला दबोच लिया हो। मेरा हृदय डूबा जा रहा है।''

मस्तिष्कीय अस्तव्यस्तता के कारण वह अपने नवजात शिशु की भी हत्या कर देती है और उसे इस अपराध में मौत का दंड दिया जाता है। मार्गरेट की दयनीय मृत्यु के समय एक दिव्य संगीत सुन पड़ता है कि मेफिस्टोफेलीज के षड्यंत्र और इसके द्वारा किए गए पापों के बावजूद भी उसे क्षमा कर दिया गया है। संगीत समाप्त होते ही शैतान के क्रूर अट्टहास के साथ 'फॉस्ट' के प्रथम भाग का अंत होता है।

'फॉस्ट' का द्वितीय भाग घटनापूर्ण और दुरूहता लिए हुए है। उसमें अनेक कथाओं एवं उपकथाओं की उत्पत्ति और विकास, आंतरिक एवं बाह्य निरीक्षण के आधार पर मानवीय भावनाओं का सूक्ष्म विश्लेषण और ज्ञान विज्ञान की न जाने कितनी बातें व्यक्त की गई हैं। प्रथम और द्वितीय परिच्छेद में फॉस्ट द्वारा स्वर्ग और नरक की साहसपूर्ण यात्राओं का वर्णन है। तृतीय परिच्छेद में ग्रीक देश की सुन्दरी हेलेन का आविर्भाव होता है जिसके अद्भुत सौंदर्य पर फॉस्ट मुग्ध हो जाता है। रोमांटिसिज्म और क्लासिसिज्म के प्रतीक फॉस्ट और हेलेन के सम्मिलन से नवीन युग का प्रतिनिधित्व करने वाले बालक यूफोरियन की उत्पत्ति होती है। उसकी प्रकृति बड़ी ही चपल और विचित्र है। वह उछलता कूदता नाचता, गाता, चढ़ता, उतरता और तरह तरह के उत्पात करता हुआ कभी चुप नहीं बैठता। उसके माता पिता उसकी इन आदतों से अत्यन्त दुःखी और परेशान हैं। असमय में ही यूफोरियन की मृत्यु हो जाती है और उसके मरने के बाद शोक-गीत गाया जाता है। यूफोरियन तत्कालीन अंग्रेज कवि बॉयरन को लक्ष्य में रखकर लिखा गया है, जिससे गेटे बहुत अधिक प्रभावित था और बिना देखे ही जिससे वह

अपना आत्मिक संबन्ध मानता था ।

चतुर्थ परिच्छेद में लड़ाइयों और साहसिक कृत्यों का उल्लेख है, जिसमे सम्राट् की ओर से फांस्ट और मेफिस्टोफेलीज भाग लेते है । मेफिस्टोफेलीज् भ्रमात्मक जल और अग्नि उत्पन्न करके शत्रु को पराजित करने में सफल होता है ।

पचम परिच्छेद मे नाटकीय तत्व अपनी चरमता पर पहुंच गये हैं । मेफिस्टोफेलीज के सम्पर्क से फांस्ट की आत्मा और सद्गुणों का दिन दिन ह्रास दिखाया गया है और सुख-ऐश्वर्य को पाकर वह इतना अविवेकी और क्रूर हो गया है कि थोडी सी ज़मीन के लोभ में दो निरपराध वृद्ध व्यक्तियो का वध करा देता है । अपने अवसान-काल में शैतान की शक्तियों पर भी अविश्वास करने के कारण वह अंधा और निरुपाय हो मरने को पड़ा है । मेफिस्टोफेलीज के तत्त्वाव ान में उसके लिए कब्र खोदी जारही है, किन्तु उसे लगता है कि यह उसके लिए बनाए जाने वाले भवन-निर्माण की ध्वनि है । नियति का क्रूर व्यंग उस समय और भी भीषणता धारण कर लेता है जब कि फॉस्ट भावी सुखों की कल्पना करके खुशी में चिल्ला पड़ता है और तत्क्षण निर्जीव होकर कब्र खोदनेवालों की गोद में ढुलक पड़ता है । मेफिस्टोफेलीज् भी इस दर्दनाक दृश्य को देख कर विचलित हो जाता है ।

"मेफिस्टोफेलीज्– आखिर यह भयानक, दु:खदायी मृत्यु की अंतिम घड़ी भी आ पहुंची, जिसको यह बेचारा सदैव टालने की कोशिश करता रहा । अपने साहस और दंभ-बल से इसने मेरी भी अवहेलना की, किन्तु समय ज़बर्दस्त है, वह टाले नहीं टलता । देखो, इस बूढ़े की क्या दशा है । घड़ी भी स्तब्ध हो गई है ।

प्रतिध्वनि—घड़ी भी स्तब्ध हो गई है-जैसे कि सुनसान अर्ध-रात्रि । उसकी सुइयां रुक गई हैं ।

मेफिस्टोफेलीज्—उसकी सुइयाँ रुक गई है और सब कुछ समाप्त हो गया है ।"

कहना न होगा-ऐहिक उन्नति-अवनति, जीवन-मृत्यु और सुख-दु:खों का कितना गंभीर तथ्य गेटे के इस महानाटक में सन्निहित है । प्रत्येक मानव में सत्-असत् की दो प्रवृत्तियों का सदैव द्वंद्व रहा है । महत्वाकांक्षा और सुखोपभोग की

लालसा विवश, नीतिमत्ता और सुस्थिर मन पर अनायास ही विजय प्राप्त कर लेती है और मानव को नीचे पतन के गर्त में ढकेल देती है।

गेटे की जिन मूल अन्त प्रवृत्तियों का उल्लेख हम ऊपर कर चुके हैं—उनका आभास हमें प्रसाद की रचनाओं में भी यत्र-तत्र होता है। मानव-हृदय की वेदना और विरह-कातरता जो 'आँसू' में व्यक्त हुई थी-वह समय की रगड़ पाकर भावों की गहराई और मानव-जीवन के सत्य में बदल गई। 'लहर' का एक स्फुट पद देखिये —

जीवन कितना ? अति लघु क्षण,
ये शलभ पुंज से कण कण,
तृष्णा वह अनिल शिखा बन—
दिखलाती रक्तिम यौवन।
वेदना विकल यह चेतन,
जड़ का पीड़ा से नर्तन,
लय-सीमा में यह कम्पन,
अभिनयमय है परिवर्तन।

कभी कवि का हृदय आशा के आलोक से भर जाता है कभी अतीत की स्मृतियाँ उभर आती हैं और कभी विषाद की छाया उसके हृदय को मलिन बना देती है। कोलाहल से दूर वह उस निर्जन स्थान में जाना चाहता है जहाँ चिरंतन विश्राम और अमर-जागरण की ज्योति बिखरी हुई हो।

ले चल वहाँ भुलावा देकर,
मेरे नाविक ! धीरे धीरे।
जिस निर्जन में सागर लहरी
अम्बर के कानों में गहरी—
निश्छल प्रेम कथा कहती हो
तज कोलाहल की अवनी रे।
श्रम विश्राम क्षितिज वेला से—
जहाँ सृजन करते मेला से—
अमर जागरण उषा नयन से—
बिखराती हो ज्योति घनी रे।

प्रसाद की बहुमुखी प्रतिभा का ज्यो ज्यों विकास होता है, उसकी जीवन-सरणि विविध दिशाओ का अनुधावन करती हुई प्रवाहित होती है। कभी इतिहास के गौरव-गान में वह रम जाती है, कभी अतीत उसे अपनी ओर आकृष्ट करता है और कभी जीवन का गंभीरतम तथ्य कण कण हो उसके समक्ष बिखर जाता है। प्रसाद के नाटको में बौद्ध-संस्कृति और भारत के अतीत जीवन की झांकी है। 'राज्यश्री', 'विशाख', 'अजातशत्रु', 'जन्मेजय का नाग-यज्ञ', 'चन्द्रगुप्त', 'स्कंदगुप्त' आदि सभी नाटक सांस्कृतिक भावनाओ से युक्त और मानवीय-मनोभावो का सूक्ष्म विश्लेषण प्रस्तुत करते है। गेटे के नाटको मे अमानुषी-तत्व की प्रचुरता होने से दुरूहता और एकांगीपन है। उनमें मानव-हृदय को विलोड़ित करने वाली वे अमर भावनाए और जीवन का वह साम्य और समरसता नही मिलती, जो प्रसाद के नाटको मे एक विशिष्ट युग का चित्रण होने से सहज ही विद्यमान है। गेटे के नाटकों में मानवीय और आसुरी शक्ति का संघर्षमय द्वन्द्व और आकस्मिकता होने से जीवन-विकास की अपूर्णता प्रकट होती है, प्रसाद के नाटकों में जीवन-समष्टि के समस्त तत्वों का निदर्शन होता है। उनके नाटको के छोटे-छोटे गेय-पदों में भी काव्यत्व और कला का निर्दिष्ट विकास देखा जा सकता है। 'अजातशत्रु' से उद्धृत श्यामा के गीत में अंतस्तल की पीडा और हृदय की कसक है।

'निर्जन गोधूलि प्रांतर में खोले पर्णकुटी के द्वार'
पलकें झुकी यवनिका सी थीं।
  अंतस्तल के अभिनय में ॥
इधर वेदना श्रम-सीकर,
  आंसू की बूंदें परिचय में ॥
फिर भी परिचय पूछ रहे हो,
  विपुल विश्व में किसको दूं ?
चिनगारी श्वांसों में उड़ती,
  रो लूं ठहरो दम ले लूं।

'जन्मेजय का नाग यज्ञ' से लिए हुए मणिमाला के निम्न कथन में सरस कल्पना और ओजपूर्ण शैली के दर्शन होते है।

मणिमाला—"मुझसे तो मानो कोई कहता है कि महाशून्य में विश्व इसीलिये बना था। यही उद्देश्य था कि वह एक सोनजुही की तरह नील वनराजि के बीच, यूथिका की छाया में बह चले और उसकी मृदु-वीचि से सुरभित पवन के परमाणु आकाश की शून्यता को परिपूर्ण करें।

आस्तीक पूछता है "क्या तुम कोई स्वप्न सुना रही हो"?

मणिमाला—"भाई, यह स्वप्न नहीं है, भविष्य की कल्पना भी नहीं है। जब सन्ध्या को अपने श्याम अंग पर तपन रश्मियों का पीला अंगराग लगाए देखती हूँ, तब हृदय में जो भाव उत्पन्न होते हैं—वे स्वयं मेरी समझ में नहीं आते, किन्तु फिर भी जैसे कोई कहता हो कि उस सुदूरवर्ती शून्य क्षितिज के प्रत्यक्ष से उस कोकिल का कोई सम्बन्ध है, और वह सम्बन्ध तभी विदित होगा जब शून्य पर फिर कालिमा के आवरण चढ़ने और कोकिल बोली का अर्थ समझ में आ जायगा।"

नीचे के अवतरण में प्रणय-वंचिता नारियों के मनोभावों का कैसा सुन्दर चित्रण है—

"प्रणय-वंचिता स्त्रियाँ अपनी राह के रोड़े, विघ्नों को दूर करने के लिये वज्र से भी दृढ़ होती हैं। हृदय को छीन लेने वाली स्त्री के प्रति हृतसर्वस्वा रमणी पहाड़ी नदियों से भयानक, ज्वालामुखी के विस्फोट से भी वीभत्स और अनल-शिखा से भी लहरदार होती है।"

प्रसाद के 'कामना' और 'एक घूंट' नाटक काव्यमय और दार्शनिक तत्वों से परिपूर्ण हैं। इनकी सभी रचनाओं में कुछ न कुछ अद्भुत चमत्कार देखा जा सकता है यहाँ तक कि छोटी छोटी कहानियों में भी दार्शनिक विवेचना और मनोभावों की सूक्ष्म व्यंजना है। 'आकाश दीप' की इन पंक्तियों में प्रेम और घृणा का कैसा विचित्र द्वन्द्व है।

"विश्वास? कदापि नहीं बुद्धगुप्त! जब मैं अपने हृदय पर विश्वास नहीं कर सकी उसी ने धोखा दिया तब कैसे कहूँ। मैं तुम्हें घृणा करती हूँ। फिर भी तुम्हारे लिए मर सकती हूँ, अंधेर है जलदस्यु! मैं तुम्हें प्यार करती हूँ। चम्पा रो पड़ी।"

'अघोरी का मोह' शीर्षक कहानी से लिए गए इस अवतरण में दार्शनिकता और गंभीर चिंतन है।

"लहरें क्यों उठती और फिर विलीन होती हैं ? बुदबुद और जलराशि का क्या सम्बन्ध है ? मानव-जीवन बुद्बुद है कि तरंग ? बुद्बुद हैं तो विलीन हो फिर क्यों प्रकट होता है। मलिन अंश फेन कुछ जल से मिल कर बुदबुद का अस्तित्व क्यों बना देता है। क्या वासना और शरीर का भी यही सम्बन्ध है। वासना की शक्ति कहां कहां किस रूप में अपनी इच्छा चरितार्थ करती हुई जीवन को अमृत-गरल का संगम बनाती हुई अनंत काल तक दौड़ लगावेगी ? कभी अवसान होगा, कभी अनंत जल-राशि में विलीन होकर अपनी अखण्ड समाधि लेगी।"

प्रसाद ने भी गेटे की भांति अपने जीवन में केवल तीन उपन्यास ही लिखे— 'कंकाल', 'तितली' और एक 'ईरावती' नाम का अधूरा उपन्यास। तीनो में जीवन का तत्वज्ञान और मानवीय-भावनाओं की कलापूर्ण अभिव्यक्ति हुई है, मानो मानव-जीवन के समस्त पाप, क्षुद्रताएं, आनंद, विषाद और त्रुटियो को स्वीकार कर उन्होंने मनोवैज्ञानिक ढंग से अपनी सजग चेतन-शक्ति और कल्पना द्वारा एक अपूर्व मानव-सृष्टि का सृजन कर उसके विराट् रूप का दर्शन कराया। अपने उपन्यास के पात्रो के साथ प्रसाद ने भाव-तादात्म्य का अनुभव किया और उनके सुख-दुःखो, विचारो एवं भावनाओ में अपनी आत्मा का स्पन्दन ध्वनित किया।

किन्तु उनकी समस्त जीवन-शक्तियों का समाहार 'कामायनी' में आकर हुआ। इस खण्ड-काव्य में कवि के बौद्धिक विकास, जीवन के सत्य, सौंदर्य और साधना का श्रेय भरा है। जीवन-व्यापी परिश्रांति से शिथिल कवि की कल्पना मानों आध्यात्मिक-प्रवाह मे डूब गई है और आदिम-युग की मानव-सभ्यता के द्वार खटखटाती हुई दार्शनिकता और आत्मप्रकाश की ओर मुड वह चली है। 'कामायनी' मे आदि-पिता वैवस्वत मनु और आदि-जननी श्रद्धा (काम की पुत्री कामायनी) की कथा है। देव-सृष्टि के जल-प्लावन के दृश्य से इस काव्य का आरभ होता है। मनु इस विध्वंसकारी दृश्य के मध्य एकाकी, चिंतित और निराश बैठे हुए हैं। अकस्मात् उनकी श्रद्धा से मुठभेड़ होती है और वे उसे पत्नी रूप में स्वीकार कर लेते है। कुछ दिन उसके साथ आनंदपूर्वक रहकर उनके मन में उच्चाटन होता है

और वे भ्रमण के लिए निकल पड़ते हैं। वहाँ इड़ा (बुद्धि) से उनका साक्षात्कार होता है और वे उस पर आसक्त हो जाते हैं। इस पर प्रजा विद्रोह करती है, और मनु घायल हो जाते हैं। श्रद्धा अन्त में आकर उनका कल्याण करती है और इच्छा, कर्म, ज्ञान के समन्वित ज्योतिर्मय त्रिपुर का दर्शन कराती है।

कामायनी में गूढ़ तात्त्विक विवेचन, प्रकृति चित्रण, सौंदर्य और रहस्यमय चेतना का बृहत् संयोजन है। विश्व के कोलाहल से दूर अन्तस् मानस जगत की असंख्य उन्मत्त भावनाओं को अपने उन्मुक्त उच्छ्वासों में भर कवि ने निस्सीम गगन में निर्बाध छोड़ दिया है और साधना की तल्लीनता में अपने हृदय का समस्त रस इस भाव-सागर में उंडेल वह मानो निश्चिन्त हो गया है।

परिणति

गेटे और प्रसाद की दुनिया में यत्र-तत्र रहस्याभास भी है, जो परोक्ष का संकेत है और विराट् शक्ति की सत्ता का व्यंजक है। 'फॉस्ट' में फॉस्ट मार्गरिट से कहता है —

"उसकी व्याख्या करने का कौन साहस कर सकता है और इसका स्पष्टीकरण भी कैसे किया जाए—यह कह कर कि "मैं उसमें विश्वास करता हूँ। जो देखता, समझता और अनुभव करता है वह कैसे उसकी सत्ता को अस्वीकार कर सकता है यह कह कर कि "मैं उसमें विश्वास नहीं करता।" वह सर्वशक्तिमान् परमेश्वर क्या मेरे, तेरे और समस्त चराचर जगत् के रूप में व्यक्त नहीं होता। क्या हमारे ऊपर आकाश नहीं है? क्या हमारी दृष्टि के समक्ष पृथ्वी का अनन्त प्रसार फैला हुआ नहीं है और क्या हमारे सिरों पर मित्र की भाँति मुस्कराते चन्द्र-सितारे नित्य ही उदित नहीं होते? मुख से मुख, नेत्र से नेत्र, हृदय से हृदय और तेरा-मेरा साक्षात्कार होने पर क्या उसकी परोक्ष-अपरोक्ष सत्ता का आभास नहीं होता और क्या इस प्रकार तेरे-मेरे जीवन के चतुर्दिक लिपटे हुए दृश्य-अदृश्य रहस्य का उद्घाटन नहीं हो जाता। उसकी शक्ति अपरिमेय और असीम है। उस अव्यक्त सत्ता की अव्यक्त-अभिव्यक्ति को अपने हृदय में अनुभव कर और जब तेरा हृदय आनन्द-रस से सराबोर हो जाए तो उसी को कल्याण, प्रेम और ईश्वर की निर्मिति दोनों हुई सदा समझ।

'कामायनी' में भी मनु तारा-जाल को देखकर अध्यात्म-चिंतन रत हो जाते

हैं। उन्हें सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी, आकाश यहां तक कि दृश्यलोक के प्रत्येक कम्पन में उसी विराट् की छाया छटपटाती दृष्टिगत होती है।

विश्वदेव, सविता या पूषा
सोम, मरुत चंचल पवमान;
वरुण आदि सब घूम रहे हैं
किसके शासन में अम्लान ?

किसका था भ्रू-भंग प्रलय सा
जिसमें ये सब विकल रहे;
अरे! प्रकृति के शक्ति-चिन्ह ये
फिर भी कितने निवल रहे!

विकल हुआ सा कांप रहा था
सकल भूत चेतन समुदाय।

अंतरिक्ष में ज्योतिर्मान;
ग्रह, नक्षत्र और विद्युत् कण

छिप जाते हैं और निकलते
आकर्षण में खिचे हुए;
तृण वीरुध लहलहे हो रहे
किसके रस से सिंचे हुए ?

सिर नीचा कर किसकी सत्ता
सब करते स्वीकार यहां;
सदा मौन हो प्रवचन करते
जिसका, वह अस्तित्व कहां ?

हे अनन्त रमणीय! कौन तुम ?
यह मैं कैसे कह सकता!
कैसे हो ? क्या हो ? इसका तो
भार विचार न सह सकता!

'हे विराट्! हे विश्वदेव! तुम
कुछ हो ऐसा होता भान'
मंद गंभीर घोर स्वर संयुत
यही कर रहा सागर गान।

प्रसाद और गेटे की सबसे बड़ी खूबी है कि उन्होंने मानव-जीवन के किसी भी पहलू को अछूता नहीं छोड़ा। उनकी कृतियाँ जीवन-समष्टि के समन्वयात्मक संस्कारों का भव्य समारोह है। उनकी दृष्टि रमणी की कोमलता और स्थूल सौंदर्य तक ही सीमित नहीं वरन् क्षितिज से दूर विश्व-व्यापी चेतना का स्पर्श करती है। इन दोनों महाकवियों के ग्रंथ 'फॉस्ट' और 'कामायनी' क्रूर काल के भाल पर अमर सौभाग्य बिंदुवत् हैं। एक में जीवन-समष्टि का सांगोपांग [illegible]-पाठ है तो दूसरा उसका सार-अंश। एक में विरोधी तत्वों का संधान है तो दूसरे में आत्मिक मनोभावों को अधिकाधिक रम्य बनाने का उपक्रम। दोनों में चिरंतन स्वर और स्पन्दन-संगीत सुन पड़ता है।

जैसे जल का बुद्बुद नीचे से स्वतः ऊपर उठ कर आता है उसी प्रकार इन महाकवियों की अन्तश्चेतना भी मन की गहराइयों से उभर कर ऊपर झलक मारती है और विराट् चेतना में लीन हो उसी को व्यक्त करती हुई उसी में समाहित हो जाती है—स्थूल-दृष्टि से दूर—न जाने कहाँ?

निराला और ब्राउनिंग

श्री सूर्यकांत त्रिपाठी निराला
जन्म-विक्रम संवत १९५३

राबर्ट ब्राउनिंग
जन्म-ईसवी सन १८१२
मृत्यु-ईसवी सन १८८९

जैसे नीरव निशीथ में अंधियारी किरणों में बंध दो अम्लान सौंदर्य-पुंज तमिस्रा की नत-अलकों से होड़ लगाने किसी अज्ञात-लोक की ओर अनजाने चल पड़ते हैं, उसी प्रकार निराला और ब्राउनिंग—नियति के आवर्त्तन-चक्र में दो शुक्रतारों की भांति उदित हुए और अपनी आन्तरिक-जिज्ञासा को विराट् की छाया में भर कभी रोये—कभी मुस्कराये। विपत्तियो ने उन्हें झुलाया, संघर्षो ने उन्हे झकझोरा, जीवन के झंझा—रथ पर आरूढ़ जगत् के क्रूर अट्टहासों ने उन्हें विचलित करने की चेष्टा की, अंध—स्वार्थो ने अपने निविड़ अंचल में उन्हें आवेष्ठित करने का प्रयास किया, किन्तु प्राणो में पुलक लिए, हृदय में मीठी व्यथा और कोमल—भावनाएं संजोए एक मस्त पथिक से वे निर्भीक कदमो से अनन्त, अगाध और अचंचल से साक्षात्कार करने के लिए आगे बढते रहे। मार्ग दुर्गम था, ऊबड़खाबड़ और अपरिचित, किन्तु अन्तर की प्रेरणा अपरिचित न थी। किसी अदृश्य शक्ति ने उंगली पकड़ कर मानो उन्हे उनकी मंज़िल तक पहुंचा दिया और अंतिम छोर पर पहुंच कर उन्हे विदित हुआ कि वे उस मान्मार क्षितिज पर आ टिके हैं, जिसका कोई आदि है न अंत। जीवन के कठोर धरातल पर क्रूर स्मृतियो ने जितनी बार निर्मम प्रहार किया, कवि के हृदय की प्रतिध्वनि उतनी ही बार आंतरिक-चेतना से टकरा कर तड़प मूक रह गई।

"जीवन चिरकालिक क्रन्दन !
मेरा अन्तर वज्र-कठोर,
देना जी भरसक झकझोर,
मेरे दुख की गहन अंध
तम निशि न कभी हो भोर !
क्या होती रहती उज्ज्वलता
इतना वन्धन-अभिनन्दन !"

निराला की उपर्युक्त पंक्तियों में विषमता का भाव है। जब अन्तस्तल में भाव-सरिता लहराती, टकराती और उफनती हुई प्रवाहित होती चलती है तो अपने ही दुःख-सुख और हास्य-रुदन की अभिव्यक्ति के लिये कवि का मन अधीर हो उठता है मानो उसकी उन्मुक्त भावनायें छहर छहर कर बाहर फूट पड़ना चाहती है और उस स्वप्निल्लोक के अन्वेषण में उन्मत्त उल्लास से उद्वेलित हो भटकती है अज्ञानमय आत्म निवेदन साकार लहलहा उठता है और बाह्य अनुभूतियाँ अनमुखा हो रहस्यावरण खोलती चलती है।

निराला और ब्राउनिंग की रचनाओं में करुण-अभिव्यक्ति और भावोन्मेष भरा रहा है। उनका बाह्य-रूप मधुर और प्रभावोत्पादक तथा आन्तरिक रूप भावात्मक है। अनेक कविताओं में उनकी कल्पना पंखों पर उड़कर रहस्यात्मक-झलक दिखाकर छिप जाती है और भावोन्माद की तरंगों पर तिरकर विराट्-सौन्दर्य की छाया में अभिसार-सा करता प्रतीत होती है। ब्राउनिंग लिखता है —

तमसाच्छन्न हृदयाकाश में मैने ईश्वरीय-ज्योति प्रज्ज्वलित कर दी। कभी न कभी तो अन्धकार को भेदकर आलोक बरसेगा ही। एक दिन मेरा अन्तर्मन दीप्त हो उठेगा। कदाचित् तुम मेरी बात समझते हो। मेरा संकेत पर्याप्त है।'

संघर्ष

जीवन का रहस्य सघन-तमिस्रा से भी सघन और दुर्भेद्य है। साधक के लिए परिस्थिति कभी प्रतिकूल नहीं होती, प्रत्युत् स्वर्णिम-क्षण नित्य उसकी बाट जोहा करते हैं। अपने अपने पृथक् व्यक्तित्वों को लेकर अपनी अपनी अलग साधों और तरुण मचलना को समेटे ये दोनों महाकवि जीवन की कठिन पगडंडी पर निर्भीक चरणों से आगे बढ़े किन्तु निर्दय संसार ने उन्हें अविश्वास की नजरों से

देखा। जीवन की पूर्णता के लिए वे एक नवीन आशा-समन्वित दृष्टिकोण को लेकर प्रकट हुए, किन्तु भौतिक कठिनाइयों से परास्त होकर, मानव-उपेक्षा से विचलित होकर उनकी आकाक्षाएं मूर्त्त विडम्बना-सी त्रिजडित रह गईं। प्रभात-वेला मे मधुर-झकोरों से आन्दोलित होकर वे दो पक्षी-शावकवत् अपने नीड़ों से अबाध उड़े। उनके सुकुमार हृदय मे आनन्द का ज्वार, नेत्रों मे आनन्दाश्रु, अधरो पर मधुर मुस्कान और आत्मा मे सुख की सिहरन थी। एक दिव्य झंकृति से उनकी हृदय-वीणा के तार झंकृत हो रहे थे। उनके मधुर कंठो से निकली मस्त-तान में अद्भुत प्रकम्पन था। उनके सुकुमार, सुरीले स्वर मे तरलता और शाश्वत-गति थी। उनका अंतर्नाद गंभीर और सागर की भांति निस्सीम था, किन्तु उन पर अभियोग लगाया गया—वे स्वच्छन्दवादी है। उनकी कविताएं जीवन से विलगाव उत्पन्न करती है और रूढि-परम्पराओ को तोड साहित्य-क्षेत्र में एक बेबस उद्योग हीनता को फैलाती है।

उनसे पूछा गया—क्या वे अपनी कला की धारा को अन्यत्र मोड़ सकते है? उन्होंने अपनी विवशता प्रकट की। उन्मुक्त भावधारा उनके समष्टि-चिंतन की सहज उद्भूति थी। उनका दृष्टिकोण सार्वजनीन था और उनकी अतर्भावनाए उनके प्राणों को हिलाकर, उनकी चेतना-परिधि को तोडकर बरबस मुखर हो उठती थीं। कुछ ने सोचा—कदाचित् उनकी साधना अधिक चल न सके और अपने ही स्वरो के उतार-चढाव मे विशृंखल होकर वह शायद बिखर जाए, किन्तु कलाकार अपनी साधना में खोये हुए, अपनी कला मे डूबे हुए विश्व की उपेक्षा पर विद्रूप की हसी हंस रहे थे। उनके हृदय में उल्लास था, आगे बढने का उत्साह था और उनके प्राणो की हर दौड़ के साथ यौवन की अथक सी उसांसे उनके अधूरे सपनो को बिखेर देने को आकुल थी। अंतत. विकर्षण आकर्षण बन गया। लोगो ने विरोध किया, किन्तु उनका विरोध ही उनकी कमजोरी बन बैठा। कला से दुराव ही कला से लगाव का कारण बना। उनकी कला में न जाने क्या आकर्षण था जो कहता कला श्रेय है और कलाकार में न जाने क्या था जो सोचने को बाध्य करता कलाकार प्रेय है। विरोध और द्वन्द्व से ऊबकर वे इस प्रलोभन से दूर भागना चाहते, किन्तु न जाने कहा से शिथिल भावुकता उन्हे लाचार और असहाय बना जाती और वे अपने हृदय के उठते हुए उफान को रोक सकने में असमर्थ हो जाते।

अपने अपने देश के साहित्य की अनुपम विभूति महाकवि निराला

और ब्राउनिंग का जीवन संघर्ष और द्वन्द्वों की अटूट शृंखला है। अनवरत आपत्तियों, जीवन आवर्तों और तूफानी हलचलों के साथ कदम से कदम मिलाकर चलने वाले इन विलक्षण प्रतिभा-सम्पन्न कलाकारों की बहुमुखी प्रवृत्तियाँ सरल और चंचल, कोमल और कठोर, शिशु-सुलभ और गम्भीर, सौहार्द्य और निस्पृह का अपूर्व सामञ्जस्य है। उनके जीवन का एक और दर्दीला पहलू है, जिसकी झाँकी अत्यन्त करुण और मर्मस्पर्शी है।

अल्हड़ जवानी में ब्राउनिंग ने अपने अरमानों की डोली जिस सुन्दरी, मानव सौन्दर्य-सपनों की स्नेहभरी रानी बेरट ब्राउनिंग के चरणों में बिखेर दी थी, जो स्वयं एक उच्चकोटि की कवयित्री थी और जिसने अपनी कलात्मक-अभिव्यक्तियों से पति के हृदय में प्रेरणा और स्फूर्ति भरी थी वह असमय में ही उसे छोड़ कर परलोक सिधार गई थी। निराला का तो पाँच-छः जीवन-वसन्तों के पश्चात् ही सोने का संसार उजड़ गया और उस जीवन-सहचरी प्राणप्रिया मनोहरा देवी का चिर वियोग उन्हें सहना पड़ा जिन्होंने हिन्दी सीखने और पढ़ने की उनमें अभिरुचि जाग्रत की थी। 'गीतिका' अपनी पत्नी को समर्पित करते हुए निराला लिखते हैं—

'जिसकी हिन्दी के प्रकाश से प्रथम परिचय के समय मैं आँखें नहीं मिला सका—लजाकर हिन्दी की शिक्षा के संकल्प से, कुछ काल बाद देश से विदेश, पिता के पास चला गया था और उस हीन-हिन्दी प्रान्त में, बिना शिक्षक के 'सरस्वती' की प्रतियाँ लेकर, पद साधना की और हिन्दी सीखी थी, जिसका स्वर गुरुजन परिजन और पुरजनों की सम्मति में मेरे संगीत-स्वरों को परास्त करता था, जिसकी मैत्री की दृष्टि क्षणमात्र में मेरी रचना को देखकर मुस्करा देती थी, जिसने अंत में अदृश्य होकर मुझसे मेरी पूर्ण-परिणीता की तरह मिलकर मेरे जड़ हाथ को अपने चेतन हाथ से उठाकर दिव्य शृंगार की पूर्ति की, उस सुदक्षिणा स्वर्गीया प्रिया प्रकृति श्रीमती मनोहरादेवी को सादर।'

पत्नी की मृत्यु से इन महाकवियों के दिलों पर गहरी ठेस लगी, मानो क्रूर झंझावात के एक ही झोंके ने उनके प्यार की मीठी कल्पनाओं का हरा-भरा चमन उजाड़ दिया। उनके हृदय की सुकुमार भावनाएँ इस भीषण आघात से सिसक उठीं। उनके साँचे सपने बिखर गये और बीते हुये सुखद पलों की याद मीठी कड़ुवाहट बन उनके चेतना क्षितिज पर छा गई। परिणाम यह हुआ—उनकी अंतर्व्यथा कविताओं में फूट पड़ी और दृश्यलोक के प्रत्येक कम्पन के साथ उनका दर्द, उनकी

बेकली और बेबसी रम गई । उनका आंतरिक प्रेम व्यापक होकर जीवन-जलधि में लहराने लगा, मूर्च्छनाएं जागी, प्रणय-गीत उठे और उनके हृदयाकाश को आच्छन्न कर लिया । उनकी नसो में पहले का भावोन्माद व्यथा की सिहरन बन गया और भीतरी आनन्द-पुलक पलकों पर घुंघियारी बन छा गया । अंत.प्रेरणा सूक्ष्म से साकार होगई,व्यक्तित्व बनकर छा गई,उनके मन की अधीरता सबे स्वरो में बदल गई और पागल उन्माद कठोर साधना में परिणत होगया । उनकी उस समय की लिखी हुई कविताओं में एक उन्मन उदासी, प्यार की थकी हुई प्यास और किसी में बरबस आत्मसात् होजाने की भावना व्यक्त होती है । निराला के हृदय की वेदना 'जुही की कली' में कितनी सूक्ष्म और अव्यक्त होकर प्रकट हुई है।

"विजन-वन-वल्लरी पर
सोती थी सोहाग भरी स्नेह-स्वप्न-मग्न
अमल कोमल तनु तरुणी-जुही की कली,
दृग बन्द किए, शिथिल पत्रांक में---
बासंती निशा थी ।"

विपुल वन-सुषमा के मध्य निर्जन वन-वल्लरी पर पत्रों की क्रोड़ में एक जुही की कली शिथिल, अलसायी, उनीदी और थकित सी दृग बन्द किये पड़ी थी। वसन्त ऋतु की मादक निशा थी । ऐसी स्थिति में उसका प्रियतम पवन उससे बिछुड़ गया था और किसी दूर, अज्ञात देश में उड़ चला गया था ।

"विरह-विधुर-प्रिया-संग छोड़
किसी दूर देश मे था पवन
जिसे कहते है मलयानिल ।"

किन्तु दोनो प्रेमियों के दिलों में एक दूसरे से मिलने की आतुरता थी । दोनों अंदर ही अंदर तड़प रहे थे और एक दूसरे की याद उन्हें उन्मत्त बना रही थी । इधर जुही की कली बेचैन थी और उधर पवन परेशान था ।

"आई याद बिछुड़न से मिलन की वह मधुर बात
आई याद चांदनी से धुली हुई आधी रात
आई याद कान्ता की कम्पित कमनीय गात ।"

उपर्युक्त पंक्तियो में कवि के जीवन की बीती स्मृतियां रह रह कर झलक मार रही है और उसकी अतृप्त लालसा की ओर भी संकेत करती है ।

नीचे उद्धृत कविता तो 'स्मृति' शीर्षक से ही लिखी गई है —

"जटिल जीवन-नद" में तिर तिर,
डूब जाती हो तुम चुपचाप,
सतत द्रुत-गति मयि अयि, फिर फिर
उभड़ करती हो प्रेमालाप।
सुप्त मेरे अतीत के गान,
सुना प्रिय, हर लेती हो ध्यान !

आँसुओं से कोमल झर-झर
स्वच्छ निर्झर जल कण से प्राण
सिमट सट सट अंतर भर भर
जिन्हें देते थे जीवन दान
यही चुम्बन की प्रथम हिलोर
स्वप्न-स्मृति, दूर, अतीत अछोर।'

कहीं कहीं कवि की भावनाएँ अत्यन्त सघन और गुम्फित होकर रहस्यमय अभिव्यंजना करती हैं —

रश्मि से दिनकर की सुन्दर
अश्रु वारिद-उर में तुम आप
तूलिका से अपनी रचकर
खोल देती हो हर्षित चाप
जगा नव आशा का संसार,
चकित छिप जाती हो उस पार।

पवन में छिपकर तुम प्रतिपल
पल्लवों में भी मृदुल हिलोर,
चूम कलियों के मुद्रित दल
पत्र छिद्रों में गा निशि भोर
विश्व के अंतस्तल में चाह,
जगा देती हो तड़ित् प्रवाह।

ब्राउनिंग ने भी अपनी पत्नी की मृत्यु के बाद लिखा था 'ईश्वर ने उसे अपनी गोदी में ऐसे ले लिया जैसे तुम किसी अंधकारमय, बेआराम बिस्तर में

बच्चे को उठा कर प्रकाश में लेजाते हो"।

इस उद्विग्न स्थिति में एक बेरहम उदासी कवि को सदैव व्यथित करती रहती। वह अपने पुत्र के साथ स्टिमेरी नामक एक छोटे से ग्राम में जा बसा था। वहाँ सूनी कुटिया का एकात उसके हृदय को ढाढ़स बंधाता और वह कभी कभी समुद्री-तट के साथ साथ दूर—बहुत दूर मीलो भ्रमण करने निकल जाता। उसकी उस समय की मानसिक स्थिति का चित्रण करते हुए अंग्रेजी समीक्षक गोस लिखता है, "सन् १८६३ में पत्नी की मृत्यु के बाद ब्राउनिग के स्वभाव में काफी परिवर्तन होगया था। किसी भी सामाजिक उत्सव या समारोह में वह भाग न लेता था और अपने पुत्र को पढ़ने के लिए स्कूल में दाखिल करने के बाद तो सूनी संध्याएं उसके लिए और भी असह्य होगई थी।" स्वय ब्राउनिंग ने भी एक स्थल पर लिखा है, "जब मै खिडकियों में से झाककर देखता हूं तो लगता है जैसे मेरे पैरो के नीचे से धरती खिसकी जा रही है। समुद्र कितना तूफानी और हवा कैसी विषादमयी है।"

भ्रांति

किन्तु इन महाकवियो के मन इस आकस्मिक दैवी-आपत्ति के आघात से त्रस्त हो केवल शून्य की परिधि में ही नही भटकते रहे थे, प्रत्युत् उन की बहु-वस्तु-स्पर्शिनी प्रतिभा संश्लेषात्मक सत्य के आलोक का सहारा ले जीवन-रहस्यों के अनुसंधान में भी प्रवृत्त थी, केवल कुछ समय के लिए उनकी जीवन-दिशा बदल गई थी और उनकी इच्छाओ के संसार मे नैराश्य और करुण-संवेदना व्याप्त होगई थी। उनका सासारिक-मोह बहुत कुछ हल्का पड गया था और सहज जीवन-प्रणाली मे भी एक धक्का सा लगा था। क्षणभंगुर संसार उन्हें विपन्न क्षणो में चिरंतन सत्ता की क्रीड़ास्थली सा प्रतीत होता और उनके समस्त सुख—स्वप्न और हृदय की आशा—आकांक्षाएं किसी अज्ञात सत्ता मे लीन हो जाने को आकुल हो उठती।

साधना की परीक्षा

कहने की आवश्यकता नहीं कि निराला और ब्राउनिग की भाव-व्यंजना का क्षेत्र अत्यत व्यापक है और उनकी कविताओ का अनुशीलन करने से ज्ञात होता है कि जीवन के विस्तृत दायरे के विभिन्न पहलुओ का काव्यात्मक आकलन करने की उनमें अद्भुत क्षमता है। जीवन की दारुण—परिस्थितियों और संघर्षो ने उनकी चेतना को इतना विकसित कर दिया है कि उनकी आंतरिक अनुभूतियाँ अत्यंत संयमित और मज-घिस कर प्रकट हुई है।

उनमें अतृप्त वासना हास्य-मुखर और अट्टहास का आवाहन नहीं है, वरन् उनकी अनमोल कल्पनाएँ उनके प्रेरणामय व्यक्तित्व से परिपूरित और गौरवमय हैं।

निराला का आत्मिक-सौन्दर्य उनकी कृतियों में लहलहा रहा है। जब कि हिन्दी-साहित्य के अंगों का विकास भी न हो पाया था उन्होंने सब अंगों की सम्यक पूर्ति के लिए कुछ न कुछ समाग्री एकत्र किया और अपनी साहित्यिक-कृतियों में मानव-जीवन से सम्बन्धित सभी भावनाओं का समावेश किया। उनकी कविता-धारा बंगला प्राचीन-पद्धति पर नवीन रूप लेकर प्रकट हुई और उन्होंने हिन्दी-काव्य-क्षेत्र में सर्वप्रथम मुक्त-वृत्त अथवा स्वच्छन्द-छन्द का प्रयोग किया। अपनी 'परिमल' की भूमिका में उन्होंने लिखा है 'मनुष्यों की मुक्ति की तरह कविता की भी मुक्ति होती है। मनुष्यों की मुक्ति कर्मों के बंधन से छुटकारा पाना और कविता की मुक्ति छन्दों के शासन से पृथक हो जाना। जिस प्रकार मुक्त मनुष्य कभी किसी के प्रतिकूल आचरण नहीं करता उसके समस्त कार्य औरों को प्रसन्न करने के लिए होते हैं—फिर भी स्वतन्त्र—इसी तरह कविता का हाल है। मुक्त—काव्य साहित्य के लिए कभी अनर्थकारी नहीं होता प्रत्युत् उससे साहित्य में एक प्रकार की चेतना फैलती है, जो साहित्य के कल्याण की ही मूल होती है। इस में संदेह नहीं—निराला अपने स्वच्छन्द छन्द के प्रयोग से ही कविता-क्षेत्र में युग प्रवर्तक के रूप में देखे गए और अपनी मौलिक प्रतिभा के कारण ही साहित्यिक क्रान्तिकारी सिद्ध हुए।

निराला अनंत पथ के पथिक हैं। उनमें भावों की ऊँची उड़ान और विचारों की गहराई है। उनकी दृष्टि के समक्ष भावनाओं के ऐसे सामूहिक रूप आकर उपस्थित हो जाते हैं कि वे निस्सीम के घूँघट-पट में झाँककर देखने का प्रयास करते हैं। उनकी 'परिमल' 'गीतिका' 'अनामिका' आदि पुस्तकों में उन्मुक्त भावनाओं का प्रवाह है। 'परिमल' की अनेक कवितायें तत्वज्ञान और रहस्यमयी भावनाओं से ओतप्रोत हैं। एक उदाहरण देखिए —

> तुम दिनकर के खर किरण-जाल, मैं सरसिज की मुस्कान,
> तुम वर्षों के बीते वियोग, मैं हूँ पिछली पहचान।
> तुम योग और मैं सिद्धि,
> तुम हो रागानुग निश्छल तप,
> मैं शुचिता सरल समृद्धि।
> तुम मृदु मानस के भाव और मैं मनोरंजिनी भाषा,

तुम नन्दन-वन-घन विटप और मैं सुख-शीतल-तलशाखा ।
तुम प्राण और मैं काया,
तुम शुद्ध सच्चिदानंद ब्रह्म,
मैं मनोमोहिनी माया ।
तुम आशा के मधुमास और मैं पिक-कल-कूजन तान;
तुम मदन-पंच-शर-हस्त और मैं हूं अनजान ।
तुम अम्बर मैं दिग्वसना,
तुम चित्रकार, घन पटल श्याम
मैं तड़ित् तूलिका रचना ।

प्रकृति-चित्रण

निराला ने प्रकृति-चित्रण के भी वहुत ही सम्मोहक चित्र खीचे हैं। उनकी 'वसंत-समीर', 'संध्या-सुन्दरी', 'वासंती', 'जलदके प्रति', 'शुरत्पूर्णिमा की विदाई', 'वन-कुसुमो की शय्या', 'यमुना के प्रति', 'प्रभात के प्रति' आदि रचनायें गूढ़ भावनाओं और जीवन-व्यापी प्रकृत-तत्त्वों से ओतप्रोत है। निम्नलिखित 'संध्या' का चित्र कितना सुन्दर और सजीव उतरा है।

"डूबा रवि अस्ताचल
संध्या के दृग छलछल
स्तब्ध अन्धकार सघन
मन्द गन्ध-भार पवन,
ध्यान-लगन नैश गगन,
मूंदे पल नीलोत्पल ।"
"देकर अन्तिम कर, रवि गए अपर पार,
श्रमित चरण आये, गृहिजन निज निज द्वार ।
अम्बर पथ से मंथर, सन्ध्या श्यामा,
उतर रही पृथ्वी पर, कोमल पद भार ।"

प्रभात कालीन सूर्य की रश्मियां जब नवालोक से आलोकित प्राची-दिशा में फूट पड़ती है तो उनकी शोभा अनुपम और दर्शनीय होती है।

"प्रथम कनक-रेखा प्राची के भाल पर,
प्रथम शृंगार स्मित तरुणी वधू का,
नील गगन विस्तार केश,

किरणोज्ज्वल नयन नत,
हेरती पृथ्वी को ।"

किरणों के आगमन के बाद 'प्रभात' का वर्णन भी आकर्षक और हृदय को गुदगुदाने वाला है।

'शीत निझर पर प्रात मनोहर
स्नान-गात शुभ अरुण चरण धर,
सरणि सरणि पर उतर रही भर
छन्द भ्रमर-गुंजित नीलोत्पल ।"

ब्राउनिंग के मनोभाव भी यत्र-तत्र प्रकृति के स्पन्दों में मुखरित हो उठे हैं। उसकी रचनाओं में सूक्ष्म निरीक्षण और उपमायें बड़ी नयी-नुकी, सुन्दर और प्रभावोत्पादक होती हैं। प्रकृति का अचल धाम उसने उसके प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष एवं सूक्ष्मातिसूक्ष्म स्वरूपों और विविध क्रिया-कलापों की सुन्दर अभिव्यक्ति की है। नीचे का अवतरण कितना स्वाभाविक और बोधगम्य व्यंजना से युक्त है —

"पृथ्वी शीत के आधिक्य से ठिठुरी हुई और जड पिण्ड सी निर्जीव पड़ी है किन्तु वासन्तिक वायु संगीतात्मक लय में नर्तन करती हुई उसके वक्ष स्थल पर इस प्रकार तैर रही है जैसे वह उसे सजग करने के प्रयत्न में हो। ऊबडखाबड़ पगडंडियों के किनारे पर कहीं कहीं हरियाली दृष्टिगत होती है। मुरझाए वृक्षों के जड़ों के सोमनें और कुहरे में फटी दरारें मुर्दीगर चेहरे की विवश मुस्कराहट सी ज्ञात होती है। लवा पक्षी प्रसन्नता से झूमता हुआ ऊपर-नीचे उड़ानें भर रहा है। प्रकृति की तटस्थता पर प्रभु अपने अनुग्रह का वरदान बिखेरा ही चाहते हैं।"

तथ्य व्यंजना और वातावरण-सृष्टि के लिए भी ब्राउनिंग ने प्रकृति से मानव का अनविच्छिन्न सम्बन्ध दिखलाया है, जो नीचे के उद्धरण से सहज ही द्रष्टव्य है।

सारा जंगल बर्फ से ढका हुआ श्वेत कठोरता में परिणत हो गया है। अतः जंगली वृक्षों पर गुलाबी पत्ते फूट आए हैं। बबूल के पेड़ देवदार-वृक्षों की संधियों में उगे हुए हैं और स्तब्ध अरण्य में मुस्कराते से प्रतीत हो रहे हैं। एक जादूगरनी मंत्रों का उच्चारण करती हुई रक्त भरे कड़ाव से कचरा निकाल कर धुए से धूमिल देवदार-वृक्षों के मोटे तनों पर लीपा-पोती कर रही है।

दिन दिन श्वेत पुष्पों पर अधिक ताजगी छा रही है और गुलाब की कलियाँ शनैः शनैः प्रस्फुटित हो रही हैं।

मौलिक-उद्भावनाएं

निराला और ब्राउनिंग ने छोटे छोटे, सुन्दर गीत भी लिखें है, जिनमें कोमल कल्पना और मधुर भावनाओं की मार्मिक व्यंजना हुई है। कोई कोई गेय-पद तो उनकी बड़ी कृतियों से अधिक उत्कृष्ट, मधुर, गूढ़-तत्त्वों से युक्त और हृदय को स्पंदित कर देने वाली उन्मत्त-भावना से ओत-प्रोत हैं। उन्हे पढ़ने से ज्ञात होता है जैसे वे कवि की आतरिक सिहरन, स्पंदन और कम्पन से आविर्भूत हुए है। 'गीतिका' में निराला के ऐसे बहुत से गीत बिखरे पड़े है। एक उदाहरण देखिए :—

"सखि ! बसन्त आया,
भरा हर्ष वन के मन,
नवोत्कर्ष छाया।
किसलय वसना, नव-वय-लतिका,
मिली मधुर प्रिय-उर, तरु-पतिका,
मधुप—वृंद बन्दी,
पिक-स्वर नभ सरसाया।
लता-मुकुला-हार-गंध-भार भर,
वही पवन बंद मन्द-मंदतर,
जागी नयनों में वन—
यौवन की माया।
आवृत सरसी—उर—सरसिज उठे,
केशर के केश कली के छुटे,
स्वर्णशस्य अंचल,
पृथ्वी का लहराया।"

निराला के गीतों में मनोवेदना, भावुकता, अनियन्त्रित हृदय की उथल-पुथल और भावना का स्रोत उमड़ा पड़ रहा है।

"(प्रिय) यामिनी जागी,
अलस पंकज-दृग अरुण मुख,
तरुण - अनुरागी,
खुले केश अशेष शोभा भर रहे,
पृष्ठ-ग्रीवा-बाहु-उर पर तर रहे।

बादलों में घिर अपर दिनकर रह,
ज्योति की तन्वी,
तडित्‌द्युति ने क्षमा माँगी ।'

ब्राउनिंग के दो छोटे छोटे प्रख्यात गीत 'यामिनी मिलन' और 'प्रभात-कालीन विदा' का भावानुवाद यहाँ दिया जाता है।

यामिनी मिलन (Meeting at Night)

(१)

'नीचे विस्तृत उदास समुद्र और लम्बा कृष्ण-वर्ण भूखण्ड
ऊपर बड़ा अर्धाकार धूमिल अर्ध चन्द्र
जैसे ही मैं अपनी नाव को खेता हुआ घुमावदार खाड़ी तक पहुँचता हूँ
तो लघु लघु तीव्र लहरियाँ गोलाकार हो थिरक उठती हैं और मैं अपने
द्रुत गमन को दलदली जमीन के पास जाकर रोक देता हूँ।

(२)

पुनः उष्ण समुद्रीय तट के साथ साथ एक मील लम्बा भ्रमण।
तत्पश्चात तीन खेतों को पार करके एक फार्म का दृश्य।
फिर खिड़की के शीशे पर हल्की सी थपथप, शीघ्र ही चटखनी खुलने
की आहट और दियासलाई की सींक का हल्का, नीला प्रकाश। प्रसन्नता
और भय से लरजता धीमा स्वर और फिर दो धड़कते दिलों का परस्पर
आलिंगन।'

प्रभातकालीन विदाई (Parting at Morning)

"अन्तरीप के इर्द गिर्द घुमावदार समुद्र,
और पर्वत शृंग के ऊपर झाँकता हुआ नवोदित सूर्य,
फिर दृष्टि-पथ के समक्ष दूर तक फैला हुआ सुनहरा प्रकाश,
और तब कोलाहलपूर्ण विश्व के लोगों से शीघ्र ही मिलने की मेरी
दारुण विवशता।"

इस प्रकार अत्यन्त छोटे छोटे गेयपदों में इन महाकवियों की आन्तरिक संवेदना और उज्ज्वल भावना अधिक आकर्षक रूप में प्रकट हुई है। इन गीतों में लय, आकर्षण, आवेग और सरसता है। सांसारिक-वैविध्य के प्रति उनकी इन्द्रधनुष-प्रमत्त शील विह्वलता के कारण उनके मनोभाव इनमें गहरे हो गये हैं कि कभी स्वप्निल रंगीनियों में डूबते-उतराते प्रकट होते हैं कभी सविशेष कल्पना की शय्या में पैठकर ऊपर उभर उभर कर आते हैं और कभी जीवन-वैचित्र्य

पर मुग्ध हो संवेदनात्मक-भावस्थिति में पहुंच जाते है। 'भिक्षुक' पर लिखी हुई निराला की कविता कितनी सजीव और करुणा-विगलित-है।

"दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता।
पेट पीठ दोनों मिलकर है एक
चल रहा लकुटिया टेक,
मुट्ठी भर दाने को—भूख मिटाने को,
मुंह फटी पुरानी झोली का फैलाता—
दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता।"

कवि की लेखनी से उभरी रेखाये कितनी सुस्पष्ट, संयत और बारीकी से अकित की गई है। निम्नलिखित 'विधवा' का चित्र कितना पवित्र और उदात्त-भावनाओ को जगाने वाला है।

"वह इष्ट-देव के मन्दिर की पूजा-सी,
वह दीप-शिखा सी शान्त, भाव में लीन,
वह क्रूर-काल-ताण्डव की स्मृति-रेखा सी,
वह टूटे तरु की छुटी लता सी दीन,
दलित भारत की ही विधवा है।"

ब्राउनिग भी शब्द-चित्र उपस्थित करने मे बड़ा ही सिद्धहस्त है। विभिन्न नारियो के चित्र देखिए :—

"छोटे, गोल मुख वाली, जीर्ण-शीर्ण चियड़ो में लिपटी उस रुग्ण बालक की मां ने त्रस्त भावभंगी और भीत चेष्टा से मुड़कर पीछे देखा।"

"वह मोटी, श्रांत, हांफती और घबराई हुई महिला, जिसकी फड़फड़ाती छतरी जमीन पर पटकी हुई नसों का ढांचा मात्र है।"

"तुम्हारा जैसा विचित्र मुंह मैंने कभी नहीं देखा, क्योंकि वह इतना फटा है कि कभी बन्द नहीं होता। तुम्हारी ठोढी भी बड़ी बेढंगी है और तुम्हारे बोलने की प्रक्रिया ऐसी अजीब है कि जिन शब्दों को तुम जानते हो उनका ठीक उच्चारण नहीं कर पाते।"

निराला ने भी भद्दी, कुरूपा नारियो के बड़े ही सजीव चित्र खीचे है। 'खजोहरा' में गांव के तालाब में स्नान करती हुई बुआ का वर्णन बड़ा ही रोचक है।

"पैठी बुआ ताल में जैसे हथिनि,
मारे डर के कांपने लगा पानी,
लहरें भगीं चढ़ने को किनारे पर,

रेला पानी बुआ ने बाहों में भर।
नींव के खम्भों से पर कीच में थे,
जाँघ से छाती तक जग बीच में थे।"

रानी और काना कविता की भी कुछ पंक्तियाँ यहाँ उद्धृत की जाती हैं।

"लेकिन था उल्टा रूप
चेचक मुँह दाग, काली नाक चिपटी,
गंजा-सर, एक आँख कानी।
रानी औरत की जात
ब्याह कहीं, कब हो
कानी जो है वह।'

कहना न होगा कि निराला और ब्राउनिंग की प्रतिभा इतनी बहुमुखी है कि साहित्य-क्षेत्र में उनके विचारों का योगदान अपूर्व है। कहीं कल्पना की मनोहर उड़ान है तो कहीं रुचि-सौन्दर्य और अपने लक्ष्य का स्पष्टीकरण। कहीं अनुभूतियों का एकीकरण है तो कहीं जीवन के प्रत्येक पहलू की मार्मिक तत्त्वालोचना। कहीं प्रकृति की अनुपम झाँकी है तो कहीं प्रणय और वेदना का करुण क्रन्दन। कहीं वीरों की यशोगाथा है तो कहीं दीन-दुनिया के दुख-दर्द की सच्ची तसवीर खींचने का जागरूक प्रयत्न। हास्य और व्यंग्य का भी उन्होंने उन्मुक्त व्यवहार किया है। निराला का 'कुकुरमुत्ता' और 'नये पत्ते' तथा ब्राउनिंग का 'दि पाइड पाइपर' (The Pied Piper) व्यंग्यात्मक कविताओं के संग्रह हैं। इसके अतिरिक्त उनकी अनेक स्फुट रचनाओं में ढोंग, पदलिप्सा, धनिकवर्ग का अहम्, साम्य-वादी विचारधारा, आधुनिक रोमांस, दकियानूसी रूढ़ प्रणाली और प्राचीन अन्धविश्वासों पर मीठी चुटकियाँ ली गई हैं। निराला की श्रेष्ठ रचनाओं में 'तुलसीदास' का विशेष महत्त्व है जिसमें कवि की भावनाओं की गहन तारतम्यता और आन्तरिक प्रेरणा का अंकन है। 'अप्सरा', 'अलका', 'निरुपमा', 'प्रभावती' नामक चार उपन्यास और 'उषा' नाम की एक छोटी सी नाटिका भी है।

इसके अतिरिक्त 'रवीन्द्र-कविता कानन', 'हिन्दी-बंगला शिक्षा', 'प्रह्लाद', 'ध्रुव', 'राणा प्रताप' आदि इनकी कृतियाँ हैं। 'सखी' नाम का एक कहानी-संग्रह और पुत्री के शोक में लिखी हुई कविता 'सरोज-स्मृति' भी है जो हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ शोकगीत (Elegy) है।

निराला और ब्राउनिंग की रचनाओं में गहरा आत्म-विश्वास और तटस्थ जीवन-दर्शन है। यद्यपि उनका हृदय सदैव संघर्ष और चिन्ताओं से जर्जर रहा

तो भी उनका काव्य स्वानुभूत सत्य और अंतर्जगत् की अनहद ध्वनि है, जिसमें भाव-संकुलता और गंभीर विचारधारा बरबस फूट पड़ी है। कभी कभी इन कवियों की कोमल भावनाओ पर परिपार्श्विक प्रभावो की ऐसी आकस्मिक ठेस लगती है कि भाव-प्राबल्य के कारण उनके छंदों का बारीक सूत्र छिन्नभिन्न हो जाता है। कोई कोई पंक्ति विशृंखल, उखड़ी-उखड़ी और बेकार सी लगती है, किन्तु इस अस्थिर शैली में भी इन महाकवियो की काव्य-शक्ति और अंतर्वैभव का सहज ही परिचय मिलता है।

ब्राउनिंग की कृतियों में मार्मिक तथ्य-व्यंजना, मानव के मनोजगत् में पैठने की बलवती आकाक्षा, बौद्धिक मनोविश्लेषण, गम्भीर-चिन्तन और अन्धकार में टटोलने की वृत्ति अधिक परिलक्षित होती है। कवि अपने बुद्धिबल से सत्य को पकड़ने की चेष्टा मे सतत संलग्न है। उसकी दृष्टि निरन्तर कुछ खोजने का प्रयास करती है और वस्तुओं के मर्म में पैठने की इच्छा रखती है। प्रारम्भ में ब्राउनिंग कीट्स और शेली से अत्यधिक प्रभावित था, किन्तु ज्यो ज्यो उसका बौद्धिक विकास होता गया, उसकी भाव-प्रवणता और उद्भ्रांत कल्पना विचारो की गहराई और निर्वेद-चिंतन में परिणत होती गई। 'पालिन' (Pauline) केवल प्रेमगीति ही नही है, वरन् कवि की अन्तर्चेतना की अभिव्यक्ति है। 'पैरासिलसस' (Paracelsus) में संघर्षमय और संश्लेषात्मक विचारधारा उद्भूत हुई है, जो समस्त नियन्त्रणो को तोड़कर अजस्र रूप से प्रवाहित हो उठी है। इस जीवन-नाटिका में ब्राउनिंग का व्यक्तित्व आनुषंगिक रूप में व्यक्त हुआ है, क्योकि उसकी विश्लेषक बुद्धि कल्पना एवं भावतरलता के आवरण में लिपटी हुई प्रकट होती है।

सन् १८४० में 'सोरडेलो' (Sordello) प्रकाशित हुआ। यह पुस्तक जीवन से इतनी दूर जा पड़ी और कवि की भावनायें इसमें इतनी पांडित्य और विद्वत्ता के भार से लद कर प्रकट हुई कि स्वयं टेनीसन ने लिखा कि मैं इसकी प्रथम और अन्तिम पंक्ति को छोड़ कर और कुछ न अधिक समझ सका। डगलस जेरोल्ड विषयक एक विचित्र घटना 'सोरडेलो' के सम्बन्ध में प्रचलित है। डगलस लम्बी बीमारी से उठा था। उसने डाक्टर से दिन में कुछ पढ़कर दिल बहलाने की अनुमति प्राप्त करके अचानक अपने सिरहाने रखी हुई पुस्तकों में से 'सोरडेलो' निकाल कर पढ़ना शुरू किया, किन्तु शीघ्र ही उसके मुंह पर हवाइयां उड़ने लगी और वह सिर थाम कर बैठ गया। मन में सोचा, "हाय! मैं अच्छा हो गया, किन्तु मेरी ग्रहण-शक्ति जाती रही। आश्चर्य! महान् आश्चर्य! एक अंग्रेजी कविता की मैं कुछ पंक्तियां भी न समझ सका।" उसने अपने सारे परिवार को बुलाया और

उनके हाथों में चुरवाग पुस्तक देकर इस कविता पर उनकी सम्मति जानने का आग्रह किया। लेकिन सभी के मुखों पर घबराहट की छाया फैल गई और उन्होंने इस सम्बन्ध में अपनी असमर्थता प्रकट की। इगल्स आश्वस्त हुआ और सोने चला गया।

उस समय सारडेलो के महत्त्व से जनता अनभिज्ञ थी, अतएव यह पुस्तक अधिक समादृत न हुई। ब्राउनिंग भी अपनी कमजोरी समझ गया और उसने मध्यम-मार्ग अपनाया। अब तक की अपनी कृतियों में वह कलाकार कम और विचारक एवं आदर्शवादी अधिक था। अब कलात्मक अभिव्यक्ति की ओर उसका ध्यान आकृष्ट हुआ। 'डि ड्रेमेटिक लिरिक्स' (The Dramatic Lyrics) जिसके निर्माण में उसे पूरे दस वर्ष लगे उसके जीवन-साक्षात्कार की विवृति है। 'इवलिन होप' (Evelyn Hope) में कोमलता, इन ए गाण्डोला (In a Gondola) में मूल्यमर्मिता 'माइ लास्ट डचेस' (My last Duchess) में बौद्धिक चमत्कार 'वेरिंग' (Waring) में करुण भावुकता और दि पाइड पाइपर' (The Pied Piper) में हास्य विनोद, व्यंग और उन्मत्त उन्माद फूटा पड़ रहा है।

एक बार सन् १८३५ के दिसम्बर मास में ब्राउनिंग तत्कालीन अभिनेता मेकरेडी का अतिथि होकर उसके गाँव एल्मट्री गया। चलते हुए मेकरेडी ने उससे सानुराग प्रार्थना की, 'ब्राउनिंग! आप एक नाटक लिखें।" कवि ने वायदा कर लिया और उसी वर्ष अगस्त मास में उसका सर्वप्रथम नाटक 'स्ट्रफोर्ड (Strafford) प्रकाशित हुआ, जो मेकरेडी द्वारा रंगमंच पर खेला गया। इसके पश्चात् तो नाटकों का ताँता-सा लग गया और ब्राउनिंग ने सन् १८४१ में 'पिप्पा पासेस' (Pippa Passes), सन् १८४२ में किंग विक्टर एण्ड किंग चार्ल्स (King Victor and king Charles), सन् १८४३ में दि रिटर्न आफ दि ड्रूजेस' (The Return of the Druses) और 'ए ब्लाट इन दि स्कुचियान' (A Blot in the Scutcheon), सन् १८४४ में 'कालाम्बीज बर्थ-ड' (Colombe's Birtl day), सन् १८४६ में 'ए सोल्स ट्रेजेडी' (A Soul's Tragedy), और लूरिया' (Luria) तथा सन् १८५३ में 'इन ए बाल्कनी' (In a Balcony) आदि अनेक नाटक लिखे। सभी नाटकों में हृद्गत भावनाओं का स्वाभाविक चित्रण, मानव-स्वभाव को परखने की अद्भुत क्षमता और सांस्कृतिक गौरव की प्रतिध्वनि है।

अपने विवाह के पश्चात् ब्राउनिंग पत्नी सहित इटली में आ बसा और

वहां सन् १८५० में 'क्रिसमस ईव और ईस्टर डे' (Christmas Eve and Easter Day) और सन् १८५५ मे 'मेन एण्ड विमेन' (Men & Women) पुस्तके लिखी। पत्नी की मृत्यु का निर्मम आघात और जनता की उपेक्षा ने ब्राउनिंग को कुछ वर्षों तक निष्क्रिय वना दिया। सन् १८६४ मे वह पुनः सजग हुआ और दो तीन वर्षों के भीतर ही उसकी दो पुस्तकें 'ड्रेमेटिस परसनिया' (Dramatis Personea) और 'दि रिंग एण्ड दि बुक' (The Ring and the Book) प्रकाशित हुई। अव जनता शनैः शनै उसके महत्व को समझने लगी थी और अपने जातीय कवि को सम्मान प्रदान करने को उत्सुक थी। उसकी वाद की लिखी रचनाओ मे 'फिफाइन एट दि फेयर' (Fifine at the Fair), 'दि इन-एलवम' (The Inn Album), 'ड्रैमेटिक आइडिल्स' (Dramatic Idyles), 'फरिश्ताहज् फेन्सीस्' (Ferishtah's Fancies) और 'एसोलडो' (Asolando) आदि कविता-संग्रह प्रमुख है।

कवित्व और दार्शनिकता का समन्वय

निराला और ब्राउनिग की कृतियो में कवित्व और दार्शनिकता का अपूर्व सामजस्य तथा उनकी अंत-साधना के साथ साथ आत्म-साक्षात्-भावना और दार्शनिक तथ्य सन्निहित हैं। ऐसा लगता है मानो जीवन के कर्ममय प्रहर में भी ये महाकवि विराम चाहते है—चिरंतन विराम और शाश्वत शांति। जव उनकी कोमल भावनायें अवगुंठन हटाकर वास्तविकता में झाकने का प्रयास करती है तो वौद्धिक आलोक में जीवन के सुख-दुःख, वन्धन और मुक्ति दोनो की सीमायें मिटती हुई सी प्रतीत होती है। कवि सांसारिक थपेड़ों से मूर्च्छित होते हुए भी निर्लिप्त है और तत्वज्ञानी की दृष्टि से अपनी आन्तरिक-प्रेरणा का अंकन करते हैं। ब्राउनिग लिखता है.—

"जीवन जागरण है, सुषुप्ति नहीं, उत्थान है, पतन नहीं। पृथ्वी के तमसाच्छन्न, अन्धकारमय पथ से गुज़र कर दिव्य-ज्योति से साक्षात्कार करना है, जहां द्वन्द्व और संघर्ष कुछ भी नहीं है और जहां हृदय की अनुभूति विराट् की छाया से तादात्म्य स्थापित करती है। निःसन्देह चिन्मय शक्ति ही अनुपम सत्ता है।"

जव उदात्त-कल्पना ईश्वर की सत्ता में झलकती है, तो दार्शनिक-भावनायें मुखर हो उठती हैं और दु ख-सुख की मृग-मरीचिका से परे उनकी वुद्धि का निर्माण होता है। निराला लिखते है—

"करना होगा यह तिमिर पार,
देखना सत्य का मिहिर द्वार

बहता जीवन के प्रखर ज्वार में निश्चय ।"

निराला और ब्राउनिंग ज्यों ज्यों जीवन-पथ पर अग्रसर होते हैं उनका मन ऊर्ध्वगामी होता चलता है मानो जीवन की भ्रान्ति को वहन करते करते उनका बोझ बहुत हल्का हो गया है और भावनाओं के तीव्र यातायात में उनका सम्मोहक सपना टूट गया है।

"मैं अकेला,
देखता हूँ, आ रही,
मेरे दिवस की सान्ध्य बेला।"

कभी वे कल्पना के यान पर चढ़ कर अन्तरिक्ष में विहार करते हैं तो कभी कठोर दार्शनिक की भाँति जीवन के मर्म में पैठने का अथक प्रयास। कभी अपने सुमधुर स्निग्ध स्वरों में वे अंतर के तार झनझना देते हैं तो कभी अपनी सत्प्रेरणाओं से साहस समय का मार्ग सुझा देते हैं। उन्हें सौन्दर्य-स्नान में चेतन-स्वरूप का दर्शन होता है और वे सीम में निस्सीम तथा विशेष में निर्विशेष का आभास पाते हैं।

तुम हो अखिल विश्व में,
या यह अखिल विश्व तुम में,
अथवा अखिल विश्व तुम एक,
यद्यपि देख रहा हूँ तुममें भेद अनेक ?
बिन्दु! विश्व के तुम कारण हो
या यह विश्व तुम्हारा कारण ?
कार्य पंच भूतात्मक तुम हो,
या कि तुम्हारे कार्य भूतगण ?
"पाया हाय न अब तक इसका भेद।
सुलझी नहीं मेरी, कुछ मिटा न खेद।"

जीवन दर्शन

निराला और ब्राउनिंग का जीवन परिस्थितियों की शृंखला में आबद्ध हो कर भी दुख-सुख की परिधि से परे है। वे सामाजिक-मर्यादाओं में रह कर भी उन से बहुत ऊपर उठ गये हैं। उन्होंने असीमता का आह्वान किया है और क्षुद्र कामनाओं में महानुराग का स्वप्न देखा है। हमें तो पूर्व और पश्चिम के इन महान् कलाकारों के स्वभावों में भी आश्चर्यजनक समानता दृष्टिगत होती है। दोनों ही मानवीय अहं और वैयक्तिक-स्वार्थ की पराजय के प्रतीक हैं और दोनों ही बहिर्द्वन्द्व और अन्तर्द्वन्द्व से आंशिक मुक्ति पा चुके हैं। निराला की निम्नलिखित पंक्तियाँ

इन दोनों के व्यक्तित्वों की अतल गहराई और व्यापक मनोभूमि की व्यंजना करती है और उनके विराट् और वहु-रूप-समन्वित जीवन का दर्शन कराती है।

ऐ निर्बंध !—
अंधतम-अगम-अनर्गल—बादल !
ऐ स्वच्छन्द !—
मंद-चंचल-समीर-रथ पर उच्छृंखल !
ऐ उद्दाम !
अपार कामनाओं के प्राण !
बाधा रहित विराट् ।
ऐ विप्लव के प्लावन !
सावन-घोर-गगन के
ऐ सम्राट् !

शैली और पन्त

श्री सुमित्रानन्दन पंत

जन्म—विक्रम संवत १९५८

पर्सी बिशे शैली
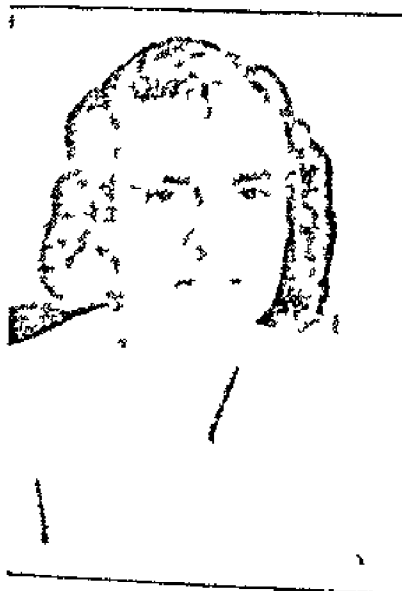
जन्म—ईसवी सन १७९२

मृत्यु—ईसवी सन् १८२२

"मनुष्यो द्वारा परित्यक्त, शून्य, रहस्यमय, अज्ञात गुम्बज मे अनजानी लटकी हुई नि:शब्द, गतिहीन और चिर-विस्मृत वीणा की भाति मेरी हृदय-वीणा के मूक स्वरो में ओ पिता! अपना दिव्य प्रकम्पन भर दो, जिससे ऐसी अपूर्व रागिनियां वज उठें, जो सृष्टि के अणु-परमाणु को झंकृत कर दे ; जो वन, समुद्र और जीवित प्राणियो को वेसुध और तन्मय बना दे ; जो नर्तन करती हुई सगीतात्मक ध्वनियो की प्रत्येक धड़कन पर चुपके चुपके पद-प्रहार करके दूर ठेल दे और मनुष्य की गहराइयों मे पैठ उसके अन्तर के गूढ़ तत्वो का रहस्योद्घाटन कर दे।" (शेली)

अनन्त के अज्ञात स्वप्नलोक की एकात-साधना मे लीन शेली और पंत की अतृप्त, तृषित दृष्टि लहराते हुये जीवन सागर में भावमग्न हो उन्मन लहरियों से टकराती और मदमाती क्रीडा करती हुई ससीमता से उठ कर असीमता के सूक्ष्म किन्तु अटल रहस्य का भेद जानने को सदैव उत्सुक है। नश्वर जगती के दो अनश्वर पुष्प एक दूसरे का हाथ पकडे और मुस्कराते हुये मानो शून्यता के वितान से निकल कर न जाने आवेग का एक कैसा भीना उच्छ्वास दिग्दिगन्त तक बिखर जाते है और तत्क्षण वृक्षो की दूर तक फैली हुई सघन छाया और तन्द्रिल अधखिली कलियो से टकरा कर गूज उठती है एक मादक मर्मर ध्वनि, जो विश्व की अलस पलको मे स्वप्न छाया-सी भर लौट जाती है। कहने की आवश्यकता नही कि इन दोनो कवियो की रूप-सुधा-अनुरजित नेत्रों की मदिर शिथिलता मे अंतर्विश्व का

बिखर जाता है और उनके भावों की गति भाषा की गति के साथ समरस होकर आगे बढ़ती है। शेली मे धुआधार अप्रतिहत वेग है, पंत मे अपूर्व धारा प्रवाह है। शेली वाह्य-सौन्दर्य पर मुग्ध है, पत आभ्यंतरिक सौन्दर्य के सवेदनशील द्रष्टा है। शेली के हृदय मे सृजन की स्फूर्ति और स्वप्न-निर्माण का वैभव है, पंत मे आध्यात्मिक चेतना और वस्तु-सत्य के समन्वय की जागृति। एक की दृष्टि आकाश की ओर एक-टक निहार रही है, दूसरे की नीचे-ऊपर के सूक्ष्म-सत्यो को जानने को सतत उत्सुक। एक मे भौतिकता का परिष्कार करने की प्रवृत्ति है, दूसरे मे चिरंतन समाधान की आकाक्षा। किन्तु दोनो ही कल्पना-लोक के स्वच्छन्द विहारी है और मनचाही नवीन सृष्टि की रूप-रेखाये अकित करने मे अति पटु है। दोनो की कृतिया रस-भावना की सुन्दर सरसी है और प्रेम-वेदनाओ की डाली मे दोनो मानो कोमल भावना-कलियो का सचय कर रहे है। उनके हृदय-कोष से निस्सृत स्निग्ध, रसीला मधु-गुजन अनंत रागिनी बजा रहा है और जगती के अचिन्त्य स्वरों में दिव्य प्रकम्पन भर रहा है।

धूल की ढेरी में अनजान
छिपे है मेरे मधुमय गान।
कुटिल कांटे है कही कठोर,
जटिल तरुजाल है किसी ओर,
सुमन दल चुन चुन कर निशि भोर
खोजना है अजान वह छोर।"

प्रिया से साक्षात्कार

मदमाते यौवन के कठिन, एकाकी डगर मे शेली और पंत का नन्हा सा मन-पंछी फुदक फुदक कर चहक मचाता है और प्रणय की मदिरा-सिक्त प्याली कोमल कर मे लिये सूनी सांझ की वेला मे अर्द्ध-उन्मीलित नयनो से दूर क्षितिज के पार अपनी अंतर्व्यथा को साकार देखता रह जाता है। जीवन की शून्यता उन्हे अखरने लगती है और मादक क्षणो मे एकाकी यौवन उन पर भार-सा बन लद जाता है।

"अविरत इच्छा ही में नर्त्तन,
करते अबाध रवि, शशि, उडुगण,
दुस्तर आकांक्षा का बंधन !
रे उडु, क्या जलते प्राण विकल,

अदृश्य लोक की सुषमा है, प्रेम-शशि की स्निग्ध निर्मल आभा है, जिसके संकेत मात्र से निर्जीव प्राणों में भी जीवन लहरा उठता है। वह प्रभात, वसंत और यौवन की प्रतिमा है और स्वप्नलोक की मधुर झंकार।"

पंत की 'भावी पत्नी के प्रति' कविता मे उनकी प्रियतमा का भी ऐसा ही भाव-चित्र है।

"मृदूर्मिल-सरसी में सुकुमार
अधोमुख अरुण-सरोज समान,
मुग्ध कवि के उर के छू तार
प्रणय का सा नव-गान:
तुम्हारे शैशव में, सोभार,
पा रहा होगा यौवन प्राण;
स्वप्न-सा, विस्मय-सा अम्लान,
प्रिये, प्राणों की प्राण!"

इन कवियों की प्रेयसियों की रूप-राशि अखिल विश्व मे बिखरी हुई है और उनके नेत्रों मे तीव्र मादकता और अनन्त स्नेह-कोष छलका पड़ रहा है। लजीली पलकों पर बिखरी अलकों के साथ होड करती हुई कोमल आरक्त कपोलों की अरुणिमा प्रकृति के तार-तार मे मुखरित हो रही है और उनकी वाणी का अक्षत माधुर्य अणु-परमाणु मे एक दिव्य उद्वेलन और नवल प्रकम्पन भर रहा है। प्रेयसी की सौन्दर्य-दीप्ति शनैः शनैः प्रणयियों की उन्मद भावनाओं को उस अनन्त ज्योति की ओर अग्रसर करती है, जहां स्थूल और सूक्ष्म का भेद मिट जाता है, जहां चिर-वियोग में आकुल प्राण किसी अज्ञात से मिलने के लिये तडफड़ा उठते हैं और जहा विश्व कवि टैगोर के स्वर मे स्वर मिला कर उनकी अंतश्चेतना गूंज उठती है, "सीमे सीमे माझे असीम तुम्ही, बाजाओ आपोन सुर।" वस्तुत इन कवियों को सृष्टि का प्रत्येक तत्त्व प्रेयसी की सौन्दर्य-सुषमा से समरस दीख पड़ता है।

"मुकुल-मधुपों का मृदु मधुमास,
स्वर्ण, सुख, श्री सौरभ का सार,
मनोभावों का मधुर-विलास,
विश्व सुषमा ही का संसार
दृगों मे छा जाता सोल्लास
व्योमबाला का शरदाकाश।"

प्रणय की भावुक कल्पना जब अत्यन्त उत्तेजित हो जाती है और कवियत्री की सूक्ष्म-बुद्धि हृदय की तीव्रानुभूति के साथ मिल कर सजीव हो उठती है तो प्रेयसियों का विरह रूप अत्यन्त व्यापक होकर प्राकृतिक चित्रों में रम जाता है।

आज उन्मद मधु-प्रात
गगन के इन्दीवर से नील
झर रहा स्वर्ग-मरन्द समान
तुम्हारे शयन शिथिल सरसिज उन्मील
छलकता ज्यों मदिरालस, प्राण!"

अतः उनकी सारग्राहिणी भावुकता जब पराकाष्ठा को पहुँच जाती है तो प्रत्येक छोटी से छोटी सूक्ष्म से सूक्ष्म वस्तु भी उन्हें प्रियतम का मूर्त रूप दीख पड़ती है, जिसकी व्यापकता में उनका मन पंछी खो जाता है।

"तुम्हारे नयनों का आकाश
सजल, श्यामल, अकूल आकाश!
गूढ़, नीरव गंभीर प्रसार,
बसाएगा कैसे संसार
प्राण! इनमें अपना संसार!
न इनका ओर छोर रे पार
खो गया वह नव पथिक अजान!'

समग्र सृष्टि सौन्दर्य की दिव्य प्रकाश-धारा में स्नान करती हुई सी प्रतीत होती है। उषा निश्चल और निस्तब्ध प्रेयसी की किंचित्-सी झाँकी पाने को उत्सुक है और सन्ध्या उन्मनी-सी सूने नभ के आँगन में उसी की प्रतीक्षा में चक्कर काट रही है।

"कब से विलोकती तुमको
ऊषा आ वातायन से?
सन्ध्या उदास फिर जाती
सूने नभ के आँगन से!"

प्रेमी की भी आह्लादजनक अनुभूति जब हृदय में अंगड़ाइयाँ लेती उभर पड़ती है तो उसके नयन-तारों में प्राणप्रिया की अंतरतम झलक बिजली सी कौंध जाती है। उसे ऐसा प्रतीत होता है मानो वह अनुपम शृंगार किये अचिर आभा

विखेरती हुई पृथ्वीलोक पर उतर रही है और समस्त वातावरण के अंचल में सम्मोहन और अपने अनुराग की अरुणिमा भर रही है। निम्न पक्तियां देखिये :—

"समस्त वातावरण मादक मृदुता से ओतप्रोत है। पुष्पों की गन्ध प्रकृति के तार-तार मे सुगन्ध भर रही है और अस्पृश्य एवं अदृश्य आद्रता का कुहरा सदृश हल्का झीनापन पृथ्वी के वक्ष पर तैर रहा है, जो अलसायी पलको पर अपनी तन्द्रिलता का साया विखेर जाता है। श्वेत और गुलाबी पुष्पो की पखुडिया उभर-उभर कर वाहर झाक रही है और मस्तिष्क मे तीक्ष्ण गंध भर रही है। एक अजीव मदहोशी और मधुर कसक वाह्य-चेतना को मूर्च्छित-सा वना जाती है और प्रत्येक ध्वनि, प्रत्येक सकेत, प्रत्येक रश्मि, प्रत्येक सुगन्धित वयार का झोका चिरतन सगीत के साथ समरस हो कर थिरक रहा है। इस वासन्ती मधुरिमा मे अपनी समस्त यौवन-सुषमा लिये कोई प्रणय की भव्य-साधना सी चुपचाप सकुची और लजायी हुई खड़ी है—वह किसी स्वप्न की अव्यक्त आकार और मधु-व्रात की मूक प्रतिध्वनि-सी प्रतीत होती है।"

जगत् की अनन्त सौन्दर्य—श्री के मध्य विहसती, इठलाती, यौवन-विलास का भार और माधुरी की छलना लिये किसी सजीली सुन्दरी की रूप-माधुरी इन कवियो को मतवाला वना जाती है और राका-रजत-परी-सी उनकी प्रणय-भावनाओ को इन्द्रधनुषी सप्तरगी आभा मे भर वेसुध वना जाती है।

"अरुण अधरों की पल्लव प्रात,
मोतियों का हिलता हिम हास;
इन्द्रधनुषी पट से ढंक गात
वाल-विद्युत् का पावस लास,
हृदय में खिल उठता तत्काल
अधखिले अंगों का मधुमास
तुम्हारी छवि का कर अनुमान
प्रिये, प्राणो की प्राण!"

इसी प्रकार प्रेयसी के शत शत प्रतीक, उसके मधुर अधरो पर विखरा हास, श्यामल कुन्तलपाश की विखरी रेखाये, यौवन—भार से विकम्पित वक्ष स्थल, क्षीण कटि-प्रदेश में झलमलाता रेशमी परिधान और मृग-शावक सदृश नयनो में मादक मधुरिमा लिये वह सुहाग की मधुमयी रात्रि मे मथर गति से नीची पलकें

लिये चुपचाप सशंकित मन से प्रियतम के पास आती है और कवि की सूक्ष्म कल्पना के स्पर्श से सजीव रूप धारण कर लेती है।

"अरे वह प्रथम मिलन अज्ञात !
विकम्पित उर मृदु, पुलकित गात
सशंकित ज्योत्स्ना-सी चुपचाप,
जड़ित-पद नमित पलक दृग्-पात,
पास जब आ न सकोगी प्राण !
मधुरता में सी मरी अजान
लाज की छुई मुई सी म्लान
प्रिये, प्राणों की प्राण !"

कवि तन्वंगी के स्पर्श से आत्म-विभोर हो जाता है और मन की मलिनता को अपहरण करने वाली पावन तरंगों में स्नान करता है।

"तुम्हारे छूने में था प्राण !
संग में पावन गंगा स्नान !
तुम्हारी वाणी में कल्याणि !
त्रिवेणी की लहरों का गान।

शेली के मन-मन्दिर में विस्थापित प्रेयसी की मानसिक प्रतिमा भी अत्यन्त सुन्दर और आकर्षक है। 'एलास्टर, अथवा, दि स्पिरिट आफ सालिट्यूड' (Alastor or, The Spirit of Solitude) नामक कविता में कवि की कल्पना भ्रमण करती हुई जब काश्मीर की घाटी में विचरण करती है तो एक प्राकृतिक निकुंज की शोभा को देख ठिठकी रह जाती है और एक छोटे से नाले के समीप लेट कर प्राणप्रिया की मधुर झांकी का दर्शन कर उल्लसित हो उठती है। उपर्युक्त कविता की कुछ पंक्तियों का भावानुवाद यहाँ दिया जाता है —

काश्मीर की दूर सूनी घाटी में जहाँ सुगन्धित पौधों और कोमल वृक्ष-लताओं ने खोखली चट्टानों के निम्न भाग को आवेष्टित कर लिया था—एक प्राकृतिक निकुंज में स्वच्छ जल से परिपूरित नाले के समीप कवि ने अपने परिश्रान्त अंगों को फैला दिया। अर्द्ध निद्रा की अचेतन स्थिति में उसके मानस-क्षितिज पर मधुमयी आशाओं का ऐसा कल्पनातीत ज्योतिपुंज मानवाकार में समुपस्थित हो गया जिसने उसके कपोलों पर लज्जा की लाली बिखेर दी। उसे स्वप्न हुआ मानों

एक अवगुंठनमयी नारी उसके समीप बैठी हुई अत्यन्त गम्भीर और धीमे स्वर में उससे वार्त्तालाप कर रही है। उसकी वाणी उसके अपने अंतस्तल की अंतर्ध्वनि से मिलती-जुलती थी, जो प्रशांत विचार-धारा की अतल गहराई में स्पष्ट सुन पड़ रही थी और उसकी वाणी से निस्सृत संगीतात्मक ध्वनि वायु अथवा जल-प्रपात की मर्मर-ध्वनि के सदृश लहरा रही थी तथा कवि की सूक्ष्म-चेतना को तरंगित-आभा और विविध-रंगो के ताने-बाने मे उलझाकर जडवत् मूक बना गई थी। ज्ञान, सत्य और गुणों की वह साक्षात् प्रतिमा थी और दिव्य-स्वातन्त्र्य से उद्भूत उदात्त-आशाओं को संचरित कर रही थी। वह अत्यन्त प्रिय भावनाओं और कविता को जगा रही थी, यही नही प्रत्युत् वह स्वयं भी एक कवि थी।"

शेली की सूक्ष्म भावना शनै. शनै. सजीव हो उठती है और बहुत ही मनोरम, चित्रमय स्थूल रूप धारण कर लेती है।

"सहसा वह उठ खड़ी हुई—मानो अपनी ही आकुल भावनाओ के असह्य भार को वह वहन करने मे असमर्थ थी। आवाज़ से चौंक कर वह मुडा और उसने अपने आसपास फैले आलोक मे हवा से भी झीने आवरण के मध्य से झांकते हुये उसके लावण्यमय अंगों को देखा। उसकी फैली हुई बाहुयें निरावरण थीं, उसकी श्यामल अलकावलियां रात्रि की नीरवता मे सिहर सी रही थीं, उसकी लज्जावनत पलकें, उसके अधखुले मुरझाये ओष्ठ तीव्र औत्सुक्य से कांप रहे थे। कवि का मजबूत दिल भी डोल उठा और वह प्रेम की उमंग मे विभोर हो गया। उसने अपने प्रकम्पित अंगों को सुस्थिर किया, तीव्र श्वास-प्रश्वास को शांत किया और उसके धड़कते वक्ष को अपने मे समाहित करने के लिये उसने अपनी भुजायें फैला दी। वह ठिठक कर पीछे हट गई, किन्तु प्रेमोन्माद की विचित्रानुभूति का लोभ वह अधिक समय तक संवरण न कर सकी। एक अस्पष्ट सी आह और उन्मत्त अदा के साथ वह उसकी सुदृढ बाहुओं मे ढुलक पड़ी और तभी कवि की उनींदी आंखो मे धुंध सा छा गया। रात्रि की कालिमा उस सुन्दर प्रतिमा को निगल गई और निद्रा ने उसके मस्तिष्क की शून्यता को आच्छन्न कर लिया।"

'ग्रन्थि और एपिपस्किडियॉन' (Epipsychidion)

उपर्युक्त कृतियां इन दोनों कवियों के व्यक्तिगत प्रेम, वेदना और आंतरिक कसक के हाहाकार की झांकी है। जब उनके भावी-जीवन का रंगीन-स्वप्न ध्वस्त हो गया और समस्त आशा-आकांक्षाओं पर पानी फिर गया तो उनका अहर्निश

तड़पता हृदय वर्णनमय की अभिव्यक्ति की भावना से प्रेरित होकर इन प्रणय-गीतों में उमड़ पड़ा। शेली के जीवन में प्रथम रोमांस—प्रेम की असफलता और अतृप्त प्रेम की प्यास कभी तृप्त न हो पाई। उसका समस्त जीवन प्रणय की मादक अनुभूतियों से आनन्दित है। तारुण्य की मंजु वेला में जब वह केवल उन्नीस वर्ष का था तो एक हैरियट वेस्टब्रुक नाम की स्कूल में पढ़ने वाली सोलह वर्षीया बालिका से उसका परिचय हुआ। वह शेली के आकर्षक व्यक्तित्व पर इतनी मुग्ध हो उठी कि उसने उससे कहा कि वह उसके बिना जीवित न रह सकेगी। वे दोनों प्रच्छन्न रूप से एडिनबरा चले गये और विवाह सूत्र में बंध गये। किन्तु उनका यह प्रेम दो वर्षों से अधिक न टिक सका और वैवाहिक जीवन का दुःखमय अन्त हुआ। हैरियट ने दुःखावेग में अपनी आत्महत्या कर ली और इस बीच उससे उत्पन्न अपनी दो सन्तति पर भी शेली अधिकार न पा सका। उसकी द्वितीय पत्नी मेरी गॉडविन थी जो स्वयं साहित्यिक अभिरुचि की विदुषी महिला थी।

इसके पश्चात् शेली के जीवन में एक और महत्त्वपूर्ण प्रणय-घटना घटी जिसको वह जीवन-पर्यन्त न भुला सका। एमिली विवियानी नाम की एक अत्यन्त सुकोमल सुकुमारी ने उसके जीवन में प्रवेश किया। उसके कुंचित केश, लजीली चितवन, शरीर के अंग प्रत्यंग और यौवन विलास में कुछ ऐसा अद्भुत आकर्षण था जो काव्य-सौन्दर्य से मिलता जुलता था और इससे शेली के हृदय में एक अजीब नशा और मधुर गुदगुदी उत्पन्न करता था। एमिली ने अपने पिता द्वारा अभिप्रेत वर से विवाह करना अस्वीकार कर दिया था, अतएव उसने रुष्ट होकर उसे एक स्थान में रख दिया था जहाँ से उसे बाहर आने-जाने की सख्त मनाही थी। शेली को यह सब ज्ञात होने पर अत्यन्त दुःख हुआ और उसने उसे इस घृणित कारा से मुक्त करने की भरसक चेष्टा की। इसी बीच उन दोनों में कसमसाता आवेगपूर्ण तीव्र आकर्षण जाग्रत हुआ, जो 'एपिप्सिकिडियोन' (आत्मा की कविता) के अमर शब्दों में अनश्वर रूप से स्थापित हो गया। प्रेम के मादक क्षणों में कवि को ऐसा भान होता है मानो वह प्रेम के परों पर चढ़ कर किसी दूसरे अज्ञात लोक में उड़ा चला जा रहा है जो विश्व के कोलाहल से अत्यन्त परे है।

'एमिली !'
एक जहाज द्वीप की ओर बढ़ा जा रहा है।
हवा पर्वत-शृंग को स्पर्श करती हुई बह रही है।

समुद्र के विशाल, नील वक्ष पर सीधा मार्ग है।
किसी भी जहाज की धुरी ने आज तक इस मार्ग को चीर कर पार नहीं किया।
शांत द्वीप के इर्द गिर्द समुद्र में घोंसला बनाने वाली चिड़ियायें उड़ती रहती हैं।
और विश्वासघाती समुद्र की लहरें वहां तक पहुंच नहीं पातीं।
वहां के बसने वाले खुशदिल मल्लाह भी वीर और साहसी हैं।
मेरी आत्म-सखि! बोल, क्या तू मेरे साथ वहां तक चलेगी?
हमारी नाव उस समुद्री पक्षी की भांति है, जिसका घोंसला दूर प्राची दिशा में नन्दन कानन में स्थित है।
आकाश के नीचे विचित्र प्रकार से लटका हुआ यह द्वीप स्वर्ग का भग्नावशेष सा प्रतीत होता है।
इजियन-नदी का नीला जल परिवर्तनशील ध्वनियों से भरा झलमलाता हुआ झाग सहित उसे स्पर्श कर रहा है।"

कवि चाहता है कि इस एकांत द्वीप मे अपनी प्रेयसी के साथ वह निश्चिंत होकर रहे, जिससे समस्त दुःख-क्लेश मिट जायें और उसके हृदय-दीपक को वह सदैव प्रकाशित करती रहे।

"किन्तु सब से अधिक विलक्षण बात यह है कि इस निर्जन प्रदेश मे एक सूना घर है। 'यह कब बनाया गया और किसके द्वारा बनाया गया इस बात को कोई द्वीप-निवासी नहीं जानता। यह कोई सुदृढ इमारत नही है, यद्यपि यह अपनी ऊंचाई मे सारे जगल को आच्छन्न किये हुये है। यह आमोद-गृह है और किसी बुद्धिमान् व दयालु समुद्री-राजा द्वारा, जबकि पाप का आविष्कार भी नही हुआ था, बनवाया गया था। उस प्राचीन समय का यह एक भव्य-स्मारक है। यह द्वीप और घर मेरा है और मैंने इस एकात स्थल की रानी बनाने का तुम्हें निश्चय किया है। वहां हम प्रेम की बातें करेंगे, जबकि हमारे अन्तर्मन की संगीत-धारा इतनी मादक और मधुर गुदगुदी उत्पन्न करने वाली होगी, जो वाणी द्वारा व्यक्त न हो सकेगी। हम कुछ बोल न सकेंगे, हमारी भावभंगी और चेष्टायें हमारे मनोभावों को प्रकट करने मे असमर्थ होंगे और शब्द निस्सृत होकर भीतर ही भीतर घुट कर रम जायेंगे। हमारे हृदय साथ-साथ धड़केंगे और हमारे अधर मूक सभाषण का अभिनय करते हुये हमारी जलती आत्मा को तिरोहित कर लेंगे। हमारी नसों में जो सिहरन है, हमारे दिलों में जो गुबार है और हमारे अन्तरतम हृदय-प्रदेश से जो वासनात्मक स्रोत निस्सृत हो रहे हैं—वे प्रेम की पावन-धारा मे उसी प्रकार उमड़ बह चलेंगे,

जैसे सूर्य की रश्मियों में झञ्झावात पवन निर्झर बह उठते हैं। हम दोनों एक हो गये एक शरीर एक प्राण। दो इच्छा शक्तियों के मध्य एक प्रेरणा। दो नक्षत्रों के मध्य एक नक्षत्र, एक अभिलाषा, एक जीवन, एक मृत्यु, एक स्वर्ग, एक नरक। हम साथ साथ अमर रहेंगे और साथ साथ नष्ट।

अन्त में मनस्वी जब कवि को वास्तविकता का बोध होता है तो उसका हृदयाकाश निराशा के कुहरे में घिर कर अन्धकारमय हो जाता है और एक दर्दीली टीस उसके हृदय में निकल पड़ती है।

"ओफ! मेरा दुर्भाग्य!
वे नभचारी शब्द जिनके पंखों पर बैठकर मैं प्रेम के उच्च मनोलोक में भ्रमण कर रहा था, वे अग्नि की प्रचण्ड शिखायें और लौह-शृंखला में बन कर मुझे जकड़े हुए हैं। मैं हाँफ रहा हूँ, नीचे धँसा जा रहा हूँ, काँप रहा हूँ और नष्ट हो रहा हूँ।"

पन्त द्वारा रचित 'ग्रन्थि' भी कवि की व्यक्तिगत प्रणय वेदना की सहज उद्भूति है जिसमें विरुद्ध प्रणयाभाव और आशा की अजान तड़पन छिपी है। कवि का हृदय दुःखदग्ध और चिन्ताओं से जर्जर है तो भी आन्तरिक-पीड़ा उच्छलित आभा बन कर फूट पड़ती है। ग्रन्थि का कथानक बहुत छोटा है। सन्ध्या समय कवि की नौका एक झील में डूब जाती है और कुछ क्षण के लिये वह निश्चेष्ट पड़ा रहता है। किन्तु पुनः सजग होते ही वह देखता है कि एक सुन्दरी युवती उसका सिर अपनी गोद में रक्खे हुए उसे एकटक बैठी निहार रही है। दोनों के हृदय प्यार, ममता और मूक संवेदना से भर जाते हैं, परस्पर आँखें चार होती हैं और उनके नयनों के दर्पण में स्नेह प्रतिबिम्ब उभर आते हैं। कवि जिस अनुकूल जीवन-संगिनी का अन्वेषण कर रहा था वह उसे सहज ही मिल जाती है। किन्तु समाज के ठेकेदार उसे अपने प्रेम-व्यापार में सफल नहीं होने देते। कवि उपेक्षित रह जाता है और उसकी प्रणयिनी का ग्रन्थिबन्धन किसी दूसरे युवक से कर दिया जाता है। प्रथम परिचय के समय दोनों का दृष्टि-विनिमय कितना सजीव है।

"एक पल मेरे प्रिया के दृग्-पलक
थे उठे ऊपर, सहज नीचे गिरे
चपलता ने इस विकम्पित पुलक से
दृढ़ किया मानो प्रणय सम्बन्ध था।"

आगे की पंक्तियो में उसके हृदय के उद्भ्रान्त-भाव छहर छहर कर बाहर प्रस्फुटित होते हैं। प्रिया के स्पर्श से उसके अग-प्रत्यग मे एक अजीब पुलक और मधुर सिहरन पैदा हो रही है।

"कौन मादक कर मुझे है छू रहा,
प्रिय! तुम्हारी मूकता की आड़ मे।"

कवि अपने प्यार और असयमित भाव-स्रोत को रोक सकने में असमर्थ है। उसके हृदय-कोण में प्रेम की दर्दीली अनुभूति और तीव्र कसक है। निम्नलिखित पंक्तियो मे प्रेम की कैसी रम्य-व्यजना हुई है।

"यह अनोखी रीति है क्या प्रेम की
जो अपांगो से अधिक है देखता
दूर होकर और बढ़ता है, तथा
वारि पीकर पूछता है घर सदा।"

कवि ने अपने अल्प-जीवन काल मे ही इतने कष्ट झेले है, इतनी तकलीफें उठाई हैं कि उसके प्राण दु खो की लू मे सदैव झुलसते ही रहे। बाल्यावस्था मे माता-पिता का वियोग, अविवाहित जीवन, आर्थिक-वैषम्य और साधन-विहीन व्यवस्था होने से उसे लगता है कि उसके भाग्य का लेखा अविराम बहते अश्रुओ से लिखा गया है। 'ग्रन्थि' में कवि ने अपने जीवन पर भी किंचित् प्रकाश डाला है। फिर उसकी वह असफल प्रेम-कहानी अंकित है—जबकि वह सर्वप्रथम प्रेम के पंखो पर बैठ कर ज्योत्स्ना-स्नात स्वप्निल-लोक मे उडा चला जा रहा था और दुर्भाग्य के क्रूर थपेड़ो ने उसके पख नोच कर उसे ज़मीन पर गिरा दिया था। अभी तो प्रेम-पौधा पनपा भी न था कि दुर्भाग्य की आधी ने उसे झकझोर डाला। प्रभात-वेला मे जो स्वर्णिम-रश्मि का आलोक उसके जीवन-पट पर बिखर गया था-वह सध्या की धूमिलता में तत्क्षण अदृश्य हो गया।

"प्रात सा जो दृश्य जीवन का नया
था खुला पहिले सुनहले स्पर्श से,
सांझ के मूर्च्छित प्रभा के पत्र पर
करुण-उपसंहार, हा, उसका मिला!"

कवि के हृदय-मंदिर की आराध्यदेवी, जिसे वह भूल से अपनी समझे बैठा था, देखते ही देखते किसी दूसरे की हो गई और सदैव के लिये उसके हृदय मे हाहाकार बसा गई।

"हाय, मेरे सामने ही प्रणय का
ग्रन्थि बंधन हो गया, वह नवकुसुम
मधुप-सा मेरा हृदय लेकर, किसी—
अन्य मानस का विभूषण हो गया।"

प्रियतमा के वियोग में कवि का हृदय तड़प रहा है, तिलमिला रहा है और उसमें गहरी निराशा व वेदना व्याप्त है। जब प्रकृति का अणु अणु प्रेम रस में डूबा हुआ दीख पड़ता है किन्तु उसका अपना हृदय सूना और निर्जीव है।

"तटिनि! जाओ मिलो तुम सिन्धु से
अनिल आलिंगन करो तुम गगन का,
चन्द्रिके चूमो तरंगों के अधर,
उडुगनों गाओ पवन बीना बजा।
पर हृदय सब भाँति तू कंगाल है।

अन्त में प्रिया मिलन की असफलता कभी मर्मभेदी निराशा का रूप धारण कर लेती है—देखिये—

"हा अभय भवितव्यते! किस प्रलय के
घोर तम से जन्म तेरा है हुआ!
तू सरल कोमल कुसुम दल में कहाँ
है छिपी रहती कठिन कंटक बनी।

* * * *

स्वर्ण-मृग तेरा पिशाचिनि! हर चुका
इष्ट कितनों के हृदय का है अहा!"

कहना न होगा कि 'ग्रन्थि' और 'एपिप्सिचिडियॉन' दोनों में ही प्रेम की मार्मिक अभिव्यंजना, कला का निखरा रूप, हृदय की अन्तरतम अनुभूतियों का अभिनव चित्रण, निराशा, दुःख, आकुल वेदना और हृदय को उन्मत्त बना देने वाली भावना का जाग्रत स्वरूप है। कहीं प्रेम की शीतल धारा प्रवाहित हो रही है तो कहीं हृत्तल से विरहाग्नि की चिनगारियाँ छिटक छिटक कर बाहर फूट पड़ती हैं। कहीं करुण उच्छ्वास है तो कहीं आँसू की बूँदें, कहीं उन्मुक्त प्रेम की कलकल ध्वनि है तो कहीं आंतरिक-वेदना का करुण क्रन्दन। दोनों ही प्रणय-ग्रन्थ उत्कृष्ट चित्रमय-कल्पना से युक्त और परिष्कृत शृंगार रसमत्ता से ओतप्रोत हैं।

'पल्लव' और 'प्रोमोथियस अनबाउण्ड'

शैली और पन्त के अत्यन्त करुण प्रणयोद्गार, जो अटपटे और अल्हड़पने से एक अनिर्वचनीय टीस और विवशता के साथ उनकी प्रारम्भिक कृतियों में फूट पड़े

थे—वे 'पल्लव' और 'प्रोमोथियस अनबाउण्ड' में आकर दार्शनिक अंतर्धारा और प्रेम की गहराई मे परिणत हो गए। शेली की अब तक की रचनायें 'क्वीन मेब' (Queen Mab), 'एलास्टर' (Alastor) और 'दि रिवोल्ट आफ इस्लाम' (The Revolt of Islam), भावोन्माद, चित्रमयी कल्पना और उद्दीप्त भावुकता से ओतप्रोत थीं। उनमें गंभीर-चिंतन और जीवन के विराट्-चित्र देखने को न मिले थे, किन्तु 'प्रोमोथियस अनबाउण्ड' मे कल्पना की उड़ान सूक्ष्मातिसूक्ष्म और अंतस्य की भावनायें अत्यन्त परिपक्व और गभीर हो कर मौलिक रूप मे प्रकट हुई। ग्रीस देश के कलाकार एचिलस द्वारा जो 'प्रोमोथियस-बाउण्ड' नाटक की रचना हुई थी और उसका दूसरा भाग 'प्रोमोथियस अनबाउण्ड' विस्मृति के गर्त मे समा गया था—उस स्थान की पूर्ति शेली का यह काव्य-नाटक करता है, यद्यपि ग्रीक-नाटक से इसका बहुत कम सादृश्य है। इसमे विश्व का अंतरतम सगीत, कल्पना का अद्भुत सृजन और मार्मिक अनुभूतियों का अनुपमेय एकीकरण है। शेली ने लिखा है, "रोम का स्वच्छ, निर्मल नीलाकाश, उल्लासमय वातावरण और वासन्तिक उन्माद, जो मस्तिष्क को बौखला देता है—इस नाट्य-ग्रंथ की प्रेरणा है।" एचिलस के प्रोमोथियस की भांति शेली के नाटक का नायक भी मनुष्य–मात्र का हितैषी होने के कारण पर्वत-शिखर पर ज्यूस देवता द्वारा वन्दी बना लिया जाता है, किन्तु क्रोध के भयकर विस्फोट और उत्तेजना मे वह दहाडता है। आसुरी-शक्तियां उसके चारो ओर चक्कर काटती है और उन भावी मानवीय आपत्तियो के दृश्य उसकी दृष्टि के समक्ष उपस्थित करती है, जो आगामी युगो मे मनुष्य जाति को अवाछित रूप से सहन करने पड़ेगे। किन्तु शनै. शनैः दैवी-कोप नष्ट हो जाता है और सात्विक-शक्तिया, समुद्र-देवियां और दैव-वाणी उसे धीरज बंधाती है, सारे वातावरण को आह्लाद और औत्सुक्य से भर देती है और उसके चिंतित मन मे दिव्य दीप्ति बिखेर जाती है। निम्नलिखित पक्तियो मे जीवन-व्यापी संघर्षो के वात्याचक्र मे पड़े हुए प्रोमोथियस के हृदय का अतर्प्रवाह है।

"ओ पृथ्वी! ओ पर्वत! क्या तुमने मेरे दु खो को महसूस नही किया?

ओ स्वर्ग! ओ सर्वव्यापी सूर्य! मै तुमसे पूछता हू कि क्या तुमने मेरी मुसीबते नही देखी?

ओ समुद्र! जो नित्य ही अपनी शात अथवा तूफानी छाती पर विस्तृत गगन के प्रसार की हिलती छाया को लिये रहता है क्या तेरी वधिर तरंगो ने मेरी करुण-गाथा नही सुनी? आह! मेरे चारो ओर विषाद ही विषाद और दु ख ही दु ख की काली घटाये छायी हुई है।"

"अहो, कौन हो दमयन्ती-सी
तुम तरु के नीचे सोई,
हाय ! तुम्हें भी त्याग गया क्या
अलि ! नल सा निष्ठुर कोई ?"

'मौन-निमत्रण' मे रहस्यात्मक-भावना और कोमल कल्पना का अवस्थान है ।

"देख वसुधा का यौवन-भार
गूंज उठता है जब मधुमास,
विधुर उर के से मृदु उद्‌गार
कुसुम जब खुल पड़ते सोच्छ्‌वास
न जाने सौरभ के मिस कौन
संदेशा मुझे भेजता मौन ।"

यहा हम यह स्पप्ट कर देना चाहते है कि 'पल्लव' और 'प्रोमोथियस अनबाउण्ड' में कथा-साम्य न हो कर इन कवियो की अतर्मुखी वृत्तियो का साम्य है। दोनो कवि व्यापक चेतनाओं मे इतने रम गये है और अपने विपय के सौन्दर्य से इतने अभिभूत हो गए है कि जीवन के स्थूल पहलू उनकी दृप्टि से ओझल हो गए है। प्राकृतिक-तत्वो के साथ क्रीड़ा करते हुए इन दोनो अनासक्त कलाकारो ने सौन्दर्य के पार्थिव रूप को हटाकर उसके दृश्य-आवरण के भीतर छिपी रहने वाली दिव्य-आत्मा का दर्शन किया है। उनकी सूक्ष्म वुद्धि ने वस्तुतल को स्पर्श कर उभार उभार कर दर्शाया है और अपनी अमर लेखनी से हृदय के आलोडन-विलोड़न और जीवन के मार्मिक मन्थन को प्रकट किया है। 'पल्लव' और 'प्रोमोथियस अनबाउण्ड' विश्व के ग्रन्थ-रत्नो में अपना विशिष्ट स्थान रखते है।

प्रकृति चित्रण

इन दोनों कवियों ने प्रकृति के सौन्दर्य का अकन भी अत्यन्त सधी रेखाओ से किया है। प्रकृति के व्यक्त प्रसार को देखकर दोनो की जिज्ञासा की तृप्ति होती है और जगत् की अनेकरूपता और विभिन्न चेष्टाओ मे वे भगवान् की मगलमयी शक्ति का दर्शन करते है। स्वयं पन्त के शब्दो मे, "कविता करने की प्रेरणा मुझे सब से पहले प्रकृति-निरीक्षण से मिली है, जिसका श्रेय मेरी जन्मभूमि कूर्माचल प्रदेश को है। कवि-जीवन से पहले भी, मुझे याद है, मै घंटो एकांत मे बैठा, प्राकृतिक दृश्यो को एकटक देखा करता था; और कोई अज्ञात आकर्षण, मेरे भीतर, एक अव्यक्त सौन्दर्य का जाल बुन कर मेरी चेतना को तन्मय कर देता था। जब कभी मै आंखें मूद कर लेटता था, तो वह दृश्य-पट, चुपचाप, मेरी आंखों के सामने घूमा करता था। अब

मैं सोचता हूँ कि क्षितिज में सुदूर तक फैली एक के ऊपर एक उठी, ये हरित नील धूमिल कूर्माचल की छायांकित पर्वत-श्रेणियाँ जो अपने शिखरों पर रजत-मुकुट हिमाचल को धारण की हुई हैं और अपनी ऊँचाई से आकाश की अवाक् नीलिमा को और भी ऊपर उठाए हुए हैं किसी भी मनुष्य को अपने महान् नीरव सम्मोहन के आश्चर्य में डुबा कर, कुछ काल के लिये भुला सकती हैं। और यह शायद पर्वत प्रान्त के वातावरण ही का प्रभाव है कि मेरे भीतर विश्व और जीवन के प्रति एक गंभीर आश्चर्य की भावना, पर्वत ही की तरह, निश्चल रूप से अवस्थित है।"

कहना न होगा कि शेली और पन्त ने कहीं कहीं तो अपने प्राणों का समस्त रस उड़ेल कर सूखी वस्तुओं का सिंचन किया है, अपनी रंगीन और मधुमयी कल्पना से बेढंगी-वस्तुओं को संवारा-सजाया है और अपनी अप्रतिम सृजन शक्ति से निर्जीव प्राणों में भी जान डाल दी है। निम्नलिखित पंक्तियों में सूर्य का कैसा सजीव चित्रण हुआ है।

"अभी गिरा रवि, ताम्र कलश सा,
गंगा के उस पार
क्लान्त पान्थ, जिह्वा विलोल
जल में रक्ताभ प्रसार।"

पंत प्रकृति-जगत् के एक जाग्रत प्रहरी हैं और शैलगिरिवासी होने के कारण वन पर्वत नदी-नाले पेड़-पौधे, पशु-पक्षी आदि प्रकृति के खुले क्षेत्र में उनकी कल्पना विचरती है। प्राकृतिक उपादान उनको संकेत से उन्हें अपने पास बुलाते-से ज्ञात होते हैं और चतुर्दिक वातावरण की मीठी कुहुक उनकी चेतना को विमूर्च्छित सा कर जाती है। कवि आत्मविस्मृत सा विहंगिनी से पूछ बैठता है।

"प्रथम रश्मि का आना रंगिणि ! तूने कैसे पहिचाना ?
कहाँ कहाँ हे बाल-विहंगिनि ! पाया तूने यह गाना ?"

कभी वह भ्रमरी से सानुरोध आग्रह करता है—

"सिखा दो ना हे मधुप कुमारि !
मुझे भी अपने मीठे गान !"

कभी कभी छायारूप जगत् में कवि की कल्पना इतनी विभोर हो जाती है कि अल्मोड़े की चित्रित घाटी भी उसे उड़ती हुई नजर आती है।

"लो, चित्र शलभ सी पंख खोल
उड़ने को है चित्रित घाटी,

यह है अल्मोड़े का वसन्त
खिल पड़ी निखिल पर्वत पाटी !"

पंत के मस्तिष्क में प्रकृति सदैव एक प्रयोगशाला के मूर्त रूप में विद्यमान रहती है और उनकी सहज चेतना प्रयोग में सतत तत्पर। उनकी व्यंजनाओं में जड़-पदार्थ भी बोल उठे है और उन्होंने अपने अंतर्प्रेम को प्रकृति के साथ मिला कर एकाकार कर दिया है। उनकी प्रियतमा सदैव प्रकृति के अंचल में छिपी रहती है, जिसे खोजने के मिस वे उसकी तह पर तह उघाड़ते चलते है। 'चादनी' कविता में चांदनी की कल्पना द्वारा एक नारी की भावभंगी का कैसा सजीव चित्र खींचा है।

"नीले नभ के शतदल पर वह बैठी शारदहासिनी
मृदु करतल पर शशिमुख धर अनिमिष एकाकिनी।"

शैली के प्राकृतिक चित्र भी सूक्ष्म-कल्पना के साथ मिल कर सजीव हो उठे है और प्रकृति की गोचर सीमा में उसे अव्यक्त सत्ता का आभास कराते है। 'टु नाइट' (To Night) कविता में कल्पना की मधुरता के साथ साथ अंतर्भावों का कैसा कोमल अंकन हुआ है।

"ओ रात्रि ! अपने को तारो मंडित नीली साड़ी मे लपेट कर तू अपने काले घने लहराते बालो से दिन की आंखो को धूमिल कर दे और उसके मुख पर इतनी चुम्बनो की बौछार कर कि वह परिश्रांत हो जाए। नगर, समुद्र और पृथ्वीतल को अपनी जादू की छड़ी मे स्पर्श करती हुई तू जल्दी ही वापिस लौट आना। मैं तेरी प्रतीक्षा करूंगा।

जब मैं सोकर उठा तो देखा दिन निकल आया है। मैंने तेरे लिये एक ठण्डी आह भरी।। जब और भी प्रकाश फैल गया और ओसकण सूख गये, दोपहरी भार बनकर कोमल पुष्पो और वृक्षो पर लद गई तथा थका हुआ दिवस अप्रिय अतिथि की भांति आश्रय खोजने के लिये मुड चला तो मैंने तेरे लिये एक ठण्डी आह भरी।

तेरा भाई 'मृत्यु' आया और चिल्ला कर कहने लगा 'क्या तुम मुझे पसन्द करोगे ?' तेरी बालिका 'निद्रा' भी अपनी उनींदी पलको को उघाड़ कर मधुमक्खी की भांति गुनगुनाई ' क्या मैं तुम्हारी बगल में सो जाऊ ? मेरी उपस्थिति तुम्हें बुरी तो न लगेगी ?' मैंने उत्तर दिया, 'नहीं, मुझे तुम्हारी आवश्यकता नहीं है।'

जब तेरा अन्त होगा, तब मृत्यु आएगी। जब तू भाग जाएगी तभी नींद का भी आगमन होगा। मैं किसी से वरदान की याचना न करूगा। प्यारी रात ! मैं तुझसे प्रार्थना करता हूं कि तू जल्दी—बहुत जल्दी लौट कर आना।"

'दि स्काइ लार्क (The Sky Lark) दि वेस्ट विंड' (The West Wind) और दि क्लाउड (The Cloud) में कवि की आत्म-भाव की परिधि इतनी व्यापक हो गई है कि वह मानव-हृदय की उर्मिल-वृत्तियों को गुदगुदा कर उसकी मेधा की सक्रिय शक्ति का अवलोकन कराती है। दृश्यजगत् का सूक्ष्म से सूक्ष्म क्रिया-कम्पन उनके नयन-द्वार से सीधा मानस पर आ कर अंकित हो जाता है। पतझड़ के मौसम में 'अरनो' नदी के तट पर घूमते हुए कवि के मस्तिष्क में पश्चिमी हवा के बगूले जो हरे पीले धूमिल और गुलाबी पत्तों के ढेर के ढेर अपने साथ उड़ा कर इतस्ततः बिखेर जाते हैं नवीन भावनाओं का उद्रेक कर रहे हैं।

'पीले, काले, मुरझाये और लाल पत्ते,
हवा महामारी से जर्जर पत्र समूह,
ओ तू ! जो उनके काले, धूमिल बिस्तरे पर विश्राम करती है।

* * * *

परदार बीज श्मशान भूमि में रक्खे हुए शव की भांति
तब तक शिथिल और निर्जीव पड़े रहेंगे जब तक कि तेरी बहिन बसंत
उन्हें आकर जीवन-दान न देगी।

* * * *

सुप्त धरा पर उसकी प्राण भेरी बज उठेगी
और प्यारी मधुर कलियों को हवा से सजग करती हुई उनके चटकीले
रंग और सुगंध से मैदान और पहाड़ियों को भर देगी।

* * * *

ओ भीषण वायु-देव ! जो अनिहत वेग से सर्वत्र घूम रहा है
और जिसमें संरक्षण और ध्वंस दोनों ही शक्तियां निहित हैं—सुन, जरा सुन।"

पतझड़ की पछवाईं हवा संरक्षक और विध्वंसक दोनों ही है। वह यदि हरीतिमा का अपहरण करती है तो समुद्र आकाश और जंगल के कूड़े-कर्कट और मलिनता को स्वच्छ बनाती है तथा मनुष्य के हृदय को सुस्थिर और मजबूत बनाती है। 'वेस्ट विंड' में शैली की बौद्धिक-चेतना पराकाष्ठा को पहुँच गई है। ज्यों-ज्यों कविता की ध्वन्यात्मक लय अग्रसर होती है उसकी कल्पना पृथ्वी, आकाश और समुद्र के आर-पार को स्पर्श करती हुई अंतरिक्ष में वायु के साथ अठखेलियाँ करती है—

ओ तू ! मुझे लहर पत्ता और बादल की भांति उड़ा कर ले चल।

जिस प्रकार व्यक्त रूप में संसार के लिये उसी प्रकार अव्यक्त रूप में कवि की आत्मा के लिये भी यह हवा संरक्षक और विध्वंसक दोनों है। कवि उससे अनुरोध करता है—

"मुझे भी तू अपनी वीणा बना ले जैसे कि तूने सारे जंगल को अपने वश में कर लिया है। क्या है-यदि मेरे पत्ते झड़ झड कर नीचे गिर रहे है। तेरे महान् स्वरो का कोलाहल गंभीर, रहस्यमय ध्वनियो का सृजन करेगा—चाहे वे स्वर उदासी से भरे क्यो न हो।

जैसे शिथिल, मुरझाये पत्रो को नव-जन्म देने के लिये तू उन्हे उड़ा ले जाती है, उसी प्रकार मेरी निर्जीव, थोथी भावनाओ को छितरा कर समस्त पृथ्वीतल में विखेर दे।"

आगे की पक्तियो मे कवि की व्यक्तिगत भावना विश्वव्यापी भावना में परिवर्तित हो जाती है। पतझड़ के साथ साथ पुरातनता का ह्रास और वसन्त के साथ साथ नवीनता का आगमन पीड़ित मानव- जाति के लिये सुख का सवाहक है।

"ओ हवा !

यदि शीत ऋतु आ गई है तो क्या वसन्त दूर हो सकता है ?"

वस, यहीं इस विलक्षण कविता का अन्त होता है। विश्व-साहित्य मे इस कविता की तुलना में बहुत कम कविताएं रक्खी जा सकती है।

शेली का 'स्काइलार्क' उसकी ऊर्ध्वगामी वृत्तियों का दिग्दर्शक और 'दि क्लाउड' अध्यात्मचेता आत्मा की पुकार है। पत की 'वादल', 'समुद्र' आदि कई कविताएं शेली के अनुकरण पर लिखी गई है, किन्तु वे भाव और कल्पना की दृष्टि से मौलिक है और उनमे कोमल भावनाओ का सुन्दर चित्रण हुआ है।

अन्य कृतियां

पंत की प्रमुख कृति 'पल्लव' के पश्चात् 'गुजन' और 'युगात' मे उनका गम्भीर चिन्तन और दार्शनिक-अंतर्धारा का प्रवाह हमे देखने को मिलता है। 'पल्लव' में उनकी चित्रमयी कल्पना, जो आकर्षक एव स्पृहणीय रूप में प्रस्फुटित हुई थी— वह 'गुजन' मे आ कर सरस-प्रौढता मे परिणत हो गई और 'युगात' मे सौंदर्य-भावना का अन्त होकर एक नवीन प्राण-धारा का उद्रेक हुआ, जिसमे दार्शनिक-सत्य के साथ साथ गंभीर-चितन का भी समावेश था। वाहरी तूफानो और हलचलो से टक्कर लेने के पश्चात् कवि में आत्मस्थता आ गई थी और जीवन के प्रति भी सुख-दुःखो से परे उसका सम-दृष्टिकोण था।

"सुख दुख के मधुर मिलन से
यह जीवन हो परिपूरन,
फिर घन में ओझल हो शशि—
फिर शशि में ओझल हो घन।
जग-पीड़ित है अति दुख से
जग-पीड़ित है अति सुख से
मानव उर में बँट जाये
दुख सुख से औ सुख-दुख से।"

पंत द्वारा रचित 'ज्योत्स्ना' दार्शनिक-तत्त्वों से पूर्ण कल्पना प्रधान नाटिका है। यह पाश्चात्य पद्धति पर कल्पित कथानक लेकर लिखी गई है जिसमें अनूठी किन्तु सीमित कलात्मकता है। शैली ने भी 'दि विच आफ एटलस' (The Witch of Atlas) में बहुत ही मनोरंजक और आकर्षक ढंग से एक अत्यन्त सुन्दरी जादूगरनी की कहानी लिखी है जो एक निर्झर के समीप पवन-गुफा में रहती थी। कीट्स की मृत्यु के पश्चात् लिखा हुआ शोकगीत 'एडोनेस' (Adonais) भी शैली की अमर कृति है।

परिवर्तित दृष्टिकोण

शैली और पंत के जीवन के कतिपय विभिन्न पहलू हैं—कोई परिप्लुत मधुर रस से अभिषिक्त, कोई आत्मगत एवं आध्यात्मिक और कोई सामाजिक धरातल पर आधारित। उनकी अधिकतर कृतियाँ कोमल भावनाओं से उच्छ्वसित होकर चलती हैं किन्तु कुछ में आध्यात्मिक चेतना निहित है। कभी छायावाद में आदर्शवाद अपनी परिधि में सिमटा हुआ दृष्टिगत होता है और कभी वे जीवन के निकट आकर उसमें झाँकते हुए-से प्रतीत होते हैं। शैली आजन्म गाडविन की फिलासफी से प्रभावित रहा, किन्तु प्लेटोनिज्म में विशेष अभिरुचि होने से वह अपनी सौंदर्य चेता आत्मा का हनन न कर पाया। जब जब उसकी वस्तुवादी स्थूल दृष्टि प्रकृत-तत्त्वों को स्पर्श करती हुई यथार्थवाद की ओर झुकी तब तब उसकी हृदय को रमाने वाली भावुकता उभर आई और वह तीव्र-अनुभूति एवं आंतरिक सिहरन को व्यक्त किए बिना नहीं रह सका। शैली का अन्तस्तल मानवतावादी है किन्तु मस्तिष्क में तीव्र भावावेश होने के कारण वह व्यक्ति की अपेक्षा भावना से अधिक अनुप्राणित है। उसकी सृजनात्मक-बुद्धि मानवगत क्रिया-कलापों के आधारभूत तत्त्वों का स्पर्श करती हुई भी प्रेम और कल्पना की ऊर्ध्वगामी-वृत्तियों में जा अटकती है और उसी की चकाचौंध में खो जाती है। शैली में स्वातन्त्र्य भावना, विश्व बन्धुत्व और शोषितों के प्रति गहरा अनुराग और सहानुभूति है। जहाँ कहीं और जब कभी

भी उसका मानवतावादी दृष्टिकोण कविताओ मे प्रस्फुटित हुआ है--उसमे गहरा आत्मविश्वास और अन्तर्मुख चेतना का दर्शन होता है । 'दि मास्क आफ एनार्की' (The Masque of Anarchy),'प्रोमोथियस अनवाउंड' (Prometheus Unbound), 'हेलाज' (Hellas) और 'दि ओड टु दि वेस्ट विंड' (The Ode to The West Wind) आदि कविताए हमे उसकी प्रेम-कविताओं से भी अधिक प्रभावित करती है ।

पंत भी समयाश्रित जीवन की कठोर परिस्थितियो से प्रभावित होकर 'युगवाणी' और 'ग्राम्या' में यथार्थ की प्रकृत-भूमि पर उतर आये है और एक नवीन दृष्टिकोण को लेकर प्रकट हुए है, जो पूर्णत. युग-प्रवृत्ति का निर्देशक है । 'वीणा' से लेकर 'युगात' तक उन्होने अपनी आतरिक-भावनाओ को कल्पना के रंग मे रँग कर अर्थ-व्यंजना की थी, किन्तु अपनी इधर की नव-कृतियो मे मृग-मरीचिका के प्रति अपने इस तीव्र आकर्षण को उन्होने झटके के साथ अस्वीकार कर दिया और अतिशय भावपरकता में पगा हुआ उनका मन वस्तुगत-तत्त्व मे पैठने की चेष्टा करता रहा । यद्यपि उनकी चित्रण की पट-भूमि निराला और प्रसाद की भाति विस्तृत नही है, तथापि उनकी अन्तरिक्ष मे विचरण करती हुई दृष्टि विकृत-मानवता पर भी यदा कदा आ टिकी है ।

"खड़ा द्वार पर लाठी टेके,
वह जीवन का बूढ़ा पंजर,
चिमटी उसकी सिकुड़ी चमड़ी,
हिलती हड्डी के ढांचे पर ।
उभरी नीली नसें जाल सी
सूखी ठठरी से हैं लिपटी,
पतझर में ठूठें तरु से ज्यों
सूनी अमर बेल हो चिपटी ।"

शेली की एक कविता का भी कुछ ऐसा ही मिलता-जुलता भाव है, जो जीवन और जगत् के मिथ्यात्व का वोध कराता है ।

"मेरी एक ऐसे पथिक से भेट हुई, जो किसी अज्ञात दूर देश से लौट रहा था । उसने वताया कि दो विशाल मानवाकार पत्थर के पैर--विहीन ढांचे मरुस्थल में खड़े है । उनके पास ही एक ओर विरूप मानवाकार प्रस्तर-खण्ड पृथ्वी पर पड़ा है, जिसकी भयंकर चेष्टा, विकृत मुखाकृति और भाग्य-विडम्बना का विद्रूप उस मूर्त्ति में इतना स्पष्टतया अकित है कि मूर्त्तिकार मानव-अन्तर्भावो की अतल गहराई में

पढकर आज भी अपनी कला का अमिट छाप लोगों की दृष्टि के समक्ष छोड़ गया है। उसने कलात्मक हाथों से जीवन की अस्थिरता का उपहास किया है और उसकी सजग चेतना ने बड़प्पन के गर्व को तोड़ा है। प्रस्तर-खण्ड के नीचे मुदा हुआ है, 'म सम्राटों का सम्राट आजिमंडियास हूं। महानुभावो ! मुझे देखो और जीवन से निराश हो जाओ। उस जर्जर, विशाल प्रस्तर-खण्ड के समीप और कुछ न था केवल अथाह धूल का ढेर उसे चारों ओर से घेरे हुए था।'

पंत की नवीन कृतियां स्वर्ण-धूलि और स्वर्ण किरण सामाजिक-चेतना और आत्म परक भावना से युक्त है। जीवन की चकाचौंध और रंगीनियों को निरखते निरखते कवि की दृष्टि मानो इतनी श्रान्त हो गई है कि वह सात्विक उदात्त भावना में कुछ समय के लिये विश्राम चाहती है। कवि शान्तिदर्शी हो गया है उसकी अनुभूति पहले से अधिक जाग्रत है भावना का परिष्कार हुआ है और चिंतन प्रवृत्ति भी अपेक्षाकृत विरामोन्मुख और अन्तर्मुखी होती गई है। प्रेमोन्माद और यौवन की खुमारी से आंखें बन्द करके वह स्वस्थ दृष्टिकोण प्रस्तुत करना चाहता है और मानव-कल्याण की भावना से प्रेरित हो अपने युग के सामाजिक एवं राजनैतिक जीवन की नैतिक दुरवस्था पर महत्वांकन करता है। उसकी आकांक्षा है कि जन जन में नवजीवन का संचार हो और अन्धकार में प्रकाश की किरणें फूट पड़ें।

> "नवजीवन का वैभव जाग्रत हो जन गण में,
> आत्मा का ऐश्वर्य अवतरित मानव मन में।
> रक्त सिक्त धरणी का हो दुःस्वप्न समापन
> शांति प्रीति सुख का भू स्वर्ग उठे सुर मोहन।"

किन्तु पंत में इस नवीन दृष्टिकोण के अवतरित होने के बावजूद भी कल्पना-वैभव और रूप रंगों के प्रति मोह का सुनहरा तार कभी टूटने न पाया। उनकी पहले की विस्मय विमुग्ध दृष्टि तत्त्वस्पर्शी और शुद्ध आत्मानुभूति में पड़कर भी अनिर्वचनीय-सौंदर्य एवं शृंगारिक उन्माद से पृथक न हो सकी।

शैली और पंत-दोनों ही भावी स्वप्न-स्रष्टा हैं। वे विहग के स्वर्ण पंख पर बैठ कर अन्तरिक्ष में विचरते हैं। अमर-सत्य के परीक्षण के लिये उन्होंने अमर कृतियों का सृजन किया है, जिन्हें काल के क्रूर थपेड़े भी अपने गर्भ में कभी समाहित न कर सकेंगे।

मैथिलीशरण गुप्त और रॉबर्ट बर्न्स

जन्म संवत्–१९४३

जन्म–ईस्वी सन् १७५९
मत्यु–ईस्वी सन् १७९६

प्रमाद

दो दिन भी जीवन में रस-पी सका स्वाद है,
जीवन का आरम्भ तो भगवान सो हो गया।
अपनी कहूँ क्या, किस माना है प्रमाद से
मेरा शीर्षेन्दु सदा, शीर्षेन्दु हो गया।

आपका [illegible]
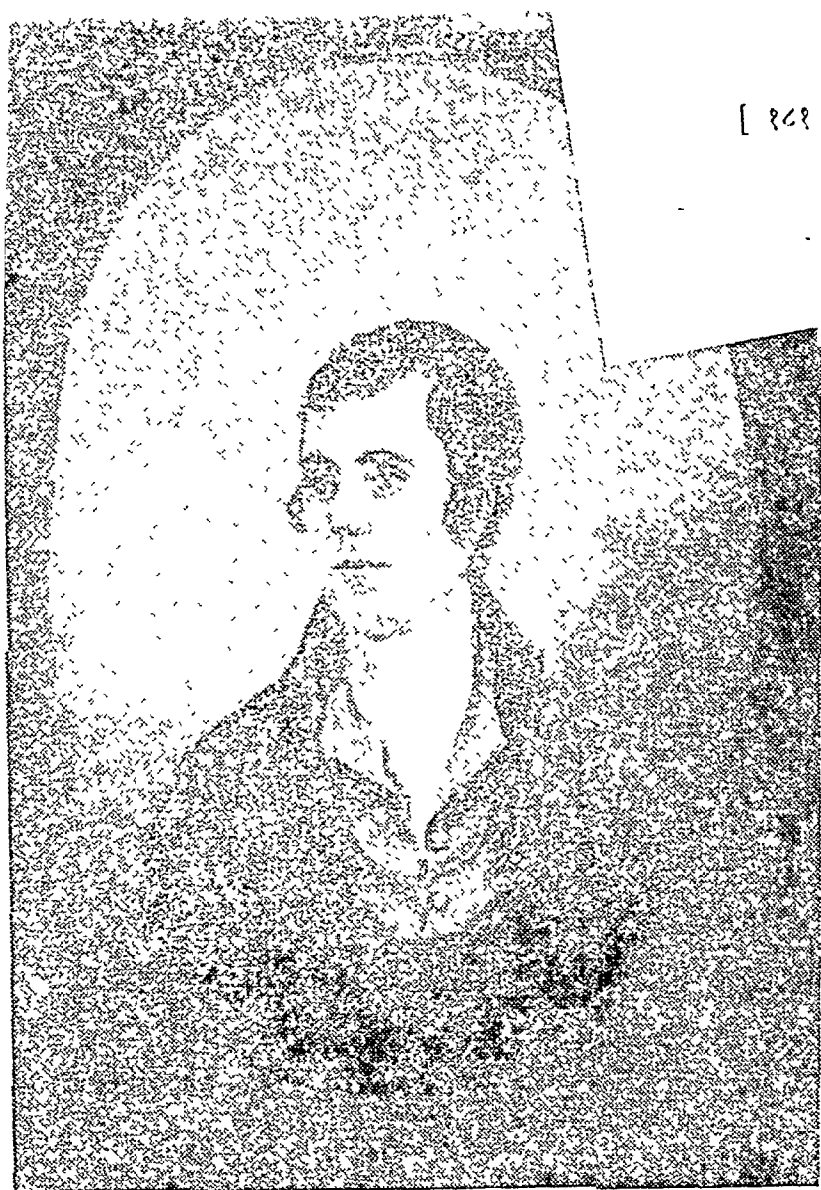
'Had we never lov'd sae kindly, "यदि हमने इतना खुल कर प्रेम न किया होता,
Had we never lov'd sae blindly, यदि हमारा प्यार इतना अंधा न होता,
Never met—or never parted, यदि हम कभी न मिलते अथवा कभी भी
We had never been broken-hearted" एक दूसरे से न बिछुड़ते—
(Robert Burns) तो हमारे हृदय इस प्रकार टूक टूक न होते।"
रॉबर्ट बर्न्स

यदि परिस्थितियों को अधिक मोड़ा-तोड़ा न जाय और प्रत्येक छोटी-मोटी स्फुट रचना अथवा कृति को साहित्यिक-परिधि में घसीटने का प्रयास न किया जाय तो यह सरलता से कहा जा सकता है कि मैथिलीशरण गुप्त और रॉबर्ट बर्न्स अपने अपने देश के तत्कालीन काव्य-क्षेत्र में प्रचलित दो धाराओं—प्राचीन और नवीन—को जोड़ने वाली बीच की कड़ी हैं। जिस समय देश में एक नवीन सामूहिक चेतना जाग्रत हो रही थी और नये युग का प्रगति-पंथी साहित्यिक प्राचीन रूढ़ियों रीतिकालीन परम्पराओं संकीर्ण और व्यक्तिवादी विचारों से अपने को पृथक् करके एक नये स्वर्णिम स्वप्न को स्थूल रूप दे रहा था, जब पुराने चकाचौंध उत्पन्न कर देने वाले रंग फीके पड़ रहे थे और स्वातन्त्र्य, भावयोग एवं अनेकरूपता के उपासक कवि अनन्त-सौन्दर्य को अपने दृष्टि बिन्दु में बन्दी बना एक नवीन आशा एवं आकांक्षा से उल्लसित हो रहे थे, जब मनुष्यत्व की साधना का क्षेत्र दूरवर्ती रहस्यपूर्ण धुंधले पुरातन का मोह छोड़ नवीनता की ओर अग्रसर हो रहा था—उस समय मैथिलीशरण गुप्त और रॉबर्ट बर्न्स ने अपने स्व निर्मित आधार की कठोर भूमि पर अपने आपको आजमाया और आगे बढ़ कर अदम्य उत्साह और साहस से समस्त मानव जाति को अपनी कृतियों का अपूर्व उपहार अर्पित किया।

सामंजस्यमूलक-प्रवृत्ति

कालचक्र के फेर से हमारी प्राचीन काव्य-धारा नैसर्गिक भावधारा से विच्छिन्न होकर रूढ-शब्दो, बंधी हुई अलकृत पदावलि, प्रचलित वस्तु-वर्णन की प्रणाली, रस और छदों से जकडी हुई इतनी निश्चेष्ट और भावशून्य हो चुकी थी कि वह जनता की मार्मिक अतर्भूमियो मे स्वच्छदतापूर्वक न विचर सकती थी। हिन्दी मे जो कुछ लिखा जा रहा था—वह पुरातन परम्परा का पोषक था और लेखक का व्यक्तित्व उसकी रचनाओ मे बहुत कम प्रस्फुटित होता था। भाषा का कोई एक निश्चित् रूप भी स्थिर न हुआ था और उसमे विविध प्रकार के भावो को व्यजित करने की सामर्थ्य अभी न आई थी। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और उनके सहयोगियो ने काव्य-धारा को नये नये विषयो की ओर उन्मुख तो किया, किन्तु भाषा ब्रज ही रहने दी और व्याकरण की त्रुटियो, पद्य के ढाचो और अभिव्यजना-पद्धति पर विशेष ध्यान न देकर शब्दो के मोड-तोड़ और मुहावरो की भरमार करके उसकी ऊपरी सतह को इतना फेनिल बना दिया कि नीचे की गहराई स्पष्ट रूप से लक्षित न हुई। जिस समय प० महाबीर प्रसाद द्विवेदी और उनका परिकर भाषा-सस्कार मे प्रवृत्त था, उस समय मैथिलीशरण गुप्त ने हिन्दी-कविता को अपने गभीर-चिन्तन और नवीन विचारो से अनुप्राणित किया और अपनी सीमित परिधि मे रूढि-समर्थित एव परिपाटी-विहित रसज्ञता से एकदम पिड न छुडा कर एक ऐसा मध्यम मार्ग अपनाया, जिसमे आर्य्योचित भाव-सौन्दर्य-दर्शन और रहस्यात्मक-अभिव्यक्ति का एक साथ आभास हुआ। उन्हे रूढि की देहरी लाघकर वृन्त-च्युत पत्र की भाति निराधार हो नवीनता की आधी मे उड़ जाने का शौक भी न था और न ही वे लकीर के फकीर बन कर आख-कान मूद और हाथ-पैर बाध प्राचीन काव्य-धारा मे चुपचाप बह जाने को प्रस्तुत थे, अतएव उन्होने अपनी कृतियो मे सामजस्यमूलक विवेक और कालानुसरण की क्षमता दिखाई। सामयिक परिस्थितियो और सास्कृतिक आदर्शो के बीच खड़े वैषम्य ने कवि की वाग्धारा को क्रान्तिकारी बना दिया और उसने जीवन-जागरण का एक ऐसा अतर्निहित अभिनव सदेश भर दिया, जिसने नये युग के नव-प्रभात के नवालोक में यथार्थ की सपाट भूमि पर उतर कर अनोखी अर्थ-व्यजना की।

उन्नीसवी शताब्दी मे इसी प्रकार की नवजाग्रति पश्चिम मे भी आई थी और गुप्तजी की भाति लगभग एक-सी परिस्थिति मे जन्म धारण करने के कारण रॉबर्ट बर्न्स ने भी अपने देश की प्राचीन और अर्वाचीन दो काव्य-परम्पराओ के बीच

हृदय के प्रत्येक स्पदन मे उनके अपने व्यक्तित्त्व की स्पष्ट झलक और सरल जीवन के शाश्वत स्वर निनादित होते सुन पड़ते है। उनका व्यक्तित्त्व साहित्य की दो परस्पर विरोधी धाराओ के आदान-प्रदान, सगम व श्राति का विराम स्थल है और उनकी कला साहित्य के विखरे उपकरणो को जोड़ती और अनैक्य मे ऐक्य का साक्षात्कार कराती है।

भाव-सृष्टि

गुप्तजी और बर्न्स दोनो का जन्म गांवो मे मध्यम श्रेणी के परिवारो मे हुआ था और दोनो ही जीवन की सत्यता एव सरलता का अवलोकन करते हुए बड़े हुए थे। गुप्तजी की जन्मभूमि झासी के समीप चिरगांव नाम का एक छोटा-सा कस्वा है, जहा उन्होने खुले मैदानो और सीधे प्राकृतिक उपादानो से प्रेरणा पाई है और बर्न्स स्कॉटलैंड मे आयर के समीप एलोवे ग्राम की एक हाथ से बनी झोपडी मे पैदा हुआ था, जो दुर्भाग्यवश उसके होने के कुछ दिन बाद एक जोर के तूफान मे उड़ गई थी और माता को अपने नवजात शिशु के साथ एक पड़ौसी के मकान मे शरण लेनी पड़ी थी। अत्यन्त निर्धनता के कारण बर्न्स की शिक्षा-दीक्षा भी ठीक से न हो सकी थी और एक स्थानीय ट्यूटर की देखरेख मे उसने अंग्रेजी, लैटिन और फ्रेंच आदि भाषाओ का ज्ञान प्राप्त किया था। बर्न्स ने लिखा है "मेरी स्मरण-शक्ति बड़ी विलक्षण थी और यद्यपि मुझे कई बार मास्टर साहब की बेंते खानी पडी थी तो भी मै उत्तरोत्तर अग्रेजी का विद्वान् होता जा रहा था।" पैसे के अभाव मे पुस्तके माग कर भी बर्न्स को ज्ञानार्जन करना पडा, जिनमे से कुछ का प्रभाव उसके मस्तिष्क पर सदैव के लिए इस प्रकार अमिट रूप से अकित हो गया कि अतिम क्षणो तक उसमे प्रेरणा व प्रोत्साहन भरता रहा। अपनी तेरह वर्ष की अल्पायु मे ही, जबकि अधिकाश बालक अपना समय आमोद-प्रमोद और खेल-कूद मे बिता देते है, बर्न्स को कई घटे अपने पिता के साथ खेती का काम करना पड़ता था और पन्द्रहवे वर्ष से तो इस प्रकार उसे मजदूरो की भाति घोर परिश्रम और जी-तोड़ मेहनत करनी पडी थी कि अपनी काव्य-साधना के लिए भी उसे बहुत कम अवकाश मिल पाता था। अर्थाभाव और अभिरुचि के विपरीत कार्य करने के कारण वह निरन्तर मानसिक ऊहापोह और दुश्चिंताओ से ग्रस्त रहता। सन् १७८६ मे प्रथम बार उसकी कविताओ का एक सग्रह प्रकाशित हुआ, जिसने एडिनबरा के फैशनेबुल साहित्यिक-क्षेत्र मे उसे प्रख्यात कर दिया, किन्तु इसके कुछ दिन पश्चात्

ही उस पुन सेवा में जा जाना पड़ा जिसके फलस्वरूप एक लड़के अर्से के लिए उसकी एकान्त-साधना टप पड़ गई।

कुछ भी हो बाल्यावस्था म ही वन्य के हृदय में जो मेला और प्रकृति के सुन्दर प्रसार एव दृश्य रूपा के प्रति भावुकता उद्भूत हुई थी—वह आजीवन उसकी दृष्टि में समस्त सृष्टि के लिए बसी ही बनी रही। कवि मेली करता हुआ तब गोचर जगत का आगे फान्तर विस्मय विमग्ध दृष्टि स देखता तो उसकी कल्पना लगा उसको पखा म उड़कर अनन्त म ऊँचे ना जाती और रहस्यावरण को भेद कर अन्य लोक में विचरती हुई ऐसी मोहक दिव्य तान छेड़ता जिसकी अस्पष्ट मधुर झकार समस्त अन्तर्जगत को मुखरित कर जाती। वस का प्रकृत्यात्मक चेतना उसकी अपनी हृदय की अनुभूति म उद्भूत हुई ह और उसमें प्रकृत के हृदय की छाया एव आत्मकथा का चित्र झलकता ह। प्रकृति का प्रत्येक कम्पन उसके हृदय को उल्लास म भर देता ह प्रत्येक लहलहाता हरा भरा खेत उसकी आखो म झूमता सा प्रतीत होता ह और वनप्रान्त का प्रत्येक सुरभित गुंज उसके प्राणो में हिलोर और अद्भुत सिहरन भर देता ह। कवि न अपनी अनेक कविताओ म ग्रामीणो और कृषको के पारिवारिक जीवन के एस भव्य चित्र खीचे ह जिनके स्वाभाविक सौन्दर्य और माधुर्य म हृदय गद्गद हो जाता ह।

क्या हुआ यदि हम साधारण व्यक्तियो की भांति निरुद्देश्य भटकते फिरते ह—हमें यह भी पता नहीं कि कहा जाना ह और ऊच ऊचे भवन और इमारतें क्या होती ह। तो भी हम प्राकृतिक सुषमा पर्वत-श्रेणिया जल-प्रपात, स्वच्छ सुन्दर घाटिया और फनिल ज्वारभाटे आदि की शोभा को तो स्वच्छन्दरूप स देख ही सकते ह। जब कभी रग बिरगे पुष्प पृथ्वी तल पर छा जाते ह और कोमल चिड़ियाये अपनी चहक स सारे वातावरण को उत्फुल्ल बना देता ह तो हमारे हृदय नववर्ष के स्वागत में सच्ची कृतज्ञता और खुशी स भर जाते ह। हम जब प्रसन्न होते ह तो घास पर बठकर कोई राग अलापने लगते ह और उल्लसित क्षणो में जो सगीत फूट पड़ता ह वह कार्य समाप्त होते ही झूमझूम कर आनन्दोन्मत्त हो जाते ह।

बड़ी बड़ी उपाधिया पदवी और लक्ष्मी के कुबेर का समस्त वैभव भी सच्चा सुख शान्ति को खरीद नही सकता। यदि प्रसन्नता हमारे हृदय सिंहासन पर विराजमान् न हो तो अधिक प्रयत्न पुस्तक अथवा विद्वत्ता भी हमें सच्चा सुखी बनाने में समर्थ नहीं। हम बुद्धिमान्, धनवान्, और बड़े बन सकते ह, किन्तु कभी भी सुखी और सन्तोषी नहीं बन सकते। दुनिया के खजाने और आमोद-प्रमाद

हमे अधिक समय तक खुश रखने मे असमर्थ है, वरन् हमारा अपना भीतरी प्रकाश ही हमे चिर-उल्लास से उल्लसित रख सकता है।"

('The Epistle to Davie' से उद्‌धृत)

कठोर परिस्थितियो से सतत संघर्ष करते हुए बर्न्स अपनी आत्मा की शांति और पेट पालने के लिए सदैव कठोर कर्मों में जुटा रहा। प्रकृति के सहज साहचर्य्य मे उसने जिन प्रकृत उपकरणों को चुनकर स्वाभाविक काव्य-सृजन किया—उसमे अतीत सस्कृति की मनोरम झाकी और ठेठ जीवन का सरल ठाठ है। उसकी दृष्टि कल्पना की सघन मेघमालाओ मे न रम कर लोक-जीवन की चिरंतन कठोर भूमि पर सुस्थिर होने की साधना करती रही और उसकी प्रतिभा की किरगे ऊपर अन्तरिक्ष मे न अटक कर नीचे चिंताशील जगत् की धरती को ही सदैव जगमग करती रही।

बर्न्स की कविता में केवल अपना ही दु ख-सुख और हास्य-रुदन नही है, वरन् उसकी हृदय-तन्त्री मे विश्व-वेदना के आकुल स्वर गूजते रहते है। उसका मन-पछी अदृश्य-लोक मे ही नही विचरता, वह तो निर्मम विश्व के अन्धड मे भी अपने पंख नुचवाता रहता है। कवि की कविता के प्रेरणा-स्रोत कभी कभी इतनी तुच्छ, नगण्य वस्तुओं पर आधारित है, कभी कभी वह क्षुद्र जीवों के स्नेह, सौहार्द्र और सहानुभूति मे इतना आत्म-विभोर हो गया है कि उसके जीवनगत दृष्टिकोण अपनी समस्त यथार्थता के साथ उसके सम्मुख हाथ बांधे खडे रहते है। सन् १७८५ के नवम्बर मास मे एक दिन ऐसी घटना घटी कि जब बर्न्स खेत में हल चला रहा था तो उसके हल की धुरी से एक चूहे का बिल उलट-पुलट गया। चूहा भयातुर हो जोर से भागा। बर्न्स का ब्लेन नाम का एक सेवक छड़ी लेकर उसे मारने दौडा, किन्तु बर्न्स ने उसे यह कह कर रोक दिया, "क्या इसने तुम्हारी कोई क्षति की है ?" सन्ध्या समय वह कागज-कलम लेकर बैठ गया और उसने चूहे पर कविता लिख डाली। बर्न्स की इस सुप्रसिद्ध कविता 'टु ए माउस' (To a Mouse) का भावार्थ नीचे दिया जाता है।

"ओ, छोटे, क्षीण, भयातुर, डरपोक प्राणी ! तेरे पेट मे कैसी उथल-पुथल मची। तुझे इस प्रकार आर्त्तनाद करते हुए शीघ्रता से सरपट दौड़ने की आवश्यकता न थी। मै अपनी हिंसक आकांक्षाओं को लेकर तेरे पीछे भागने की धृष्टता न कर सकता था।

मुझे हार्दिक क्षोभ है कि मनुष्य का शासन प्रकृति के सूक्ष्म, सामाजिक बन्धनो को क्षण भर मे ध्वस्त कर देता है। मेरे जैसे तुच्छ, पृथ्वी से उत्पन्न सखा

ध्वस्त पुष्प को देख कर कवि को जीवन की क्षणभंगुरता का स्मरण हो आता है और वह उत्तरोत्तर समीप आती हुई मृत्यु की कल्पना करता हुआ अपने को सम्बोधन करके कहता है।

"अरे तू भी, जो 'डेजी' की किस्मत को रो रहा है—इसी प्रकार एक दिन मर जायेगा। वह दिन दूर नही है जब तेरी भी यही दुर्दशा होगी। क्रूर सर्वनाश रूपी हल की धुरी तेरे यौवन पर कुठाराघात करेगी और सिकुडी खाल की झुरियों के भार से दबकर तू सीधा मृत्यु के मुह मे चला जाएगा।"

'डेजी' पर लिखी हुई वर्न्स की यह कविता लोगो के दिलो पर अपना अमिट प्रभाव छोड गई। उसकी मृत्यु के कई वर्ष बाद जब वर्ड्सवर्थ ने वर्न्स की जन्मभूमि की यात्रा की तो उसने 'डेजी' वाले स्थान का भी निरीक्षण किया था। अपनी एक कविता मे उसने इस प्रसग का इस प्रकार उल्लेख किया है ।

"मेरे साथी बालक ने बडे गर्व के साथ एक नीची छत की ओर, जो हरे-भरे वृक्षो मे आधी ढकी हुई थी, सकेत करके कहा, 'यह मॉसजेल फॉर्म है और यह वही खेत है, जहा वर्न्स ने हल की नोक से 'डेजी' पुष्प को छिन्नभिन्न कर दिया था।"

सृष्टि के जिस जिस अश के साथ वर्न्स के हृदय का सयोग हुआ और वाह्य-जगत् मे उसने जो कुछ देखा-सुना, वह अपने हृदय-नीड मे संजो सजो कर वह रखता गया और अनुकूल अवसर पाकर अपनी कल्पना के रग मे रँगकर उसे प्रकट कर दिया। प्राकृतिक वातावरण और दृश्यावली का सूक्ष्मावलोकन करते करते कवि की अतश्चेतना वाह्य-चेतन-स्वप्नो की सृष्टि करती है और कभी अर्ध-विमूढ सी अतर्विश्व मे अर्तहित होकर इतनी एकरस हो जाती है कि उसके अज्ञात-भाव प्राणो के रस मे डूब कर बोलते हैं। उसके प्रशस्त हृदय मे न जाने कितनी सुकुमार कल्पनाये उठती और विलीन होती है और वह न जाने किन किन सकेतो, दृश्य-रूपो और मोहक स्मृतियो मे अपने दु:ख-सुख को खोकर अपने अस्तित्त्व को भूल जाता है। किसी दृश्य अथवा वस्तु को देखकर कोई एक लघु भाव उसके हृदय के कोने मे उमड़ता है और सजीव रूप धारण करके उसकी लेखनी से बरबस निकल पड़ता है। 'चिड़िया' पर लिखी हुई उसकी निम्नलिखित पक्तियो मे कितनी हार्दिक सवेदना और करुणा का भाव है।

"ओ छोटी, खुशदिल, असमर्थ चिडिया! बसन्त ऋतु मे तेरे मुख से जो भी गीत फूटे, उन्होने मुझे वेसुध कर दिया। अब शीतकाल मे अपने काँपते पखो को कहा समेट कर रक्खेगी और अपनी रक्षा के लिये कौन-सा आश्रय-स्थल खोजेगी?"

पन्त की कविता धरा की नग्न प्रथम प्रणय की गाथा है। उसमें केवल असीम और ससीम का ही द्वन्द्व नहीं है, वह न केवल हमारी बाह्य चेतना को ही मुग्ध करती है वरन् उसकी कल्पना साधारण से साधारण चिर-परिचित दृश्यों और वस्तुओं की सघन गहराइयों एवं निविड़ता में पैठ कर प्रकृति के अंचल में निर्बंध विचरती है। चाहे किसी पुरुष की किसी स्त्री के प्रति गहरी प्रणय-वेदना की अभिव्यक्ति हो, चाहे टूटी फूटी झोपड़ी के निकट बैठे हुए कृषक-परिवार का चित्रण अथवा घायल सैनिक या अस्थिर व्याकुल व्यक्ति की मनोदशा का ही सूक्ष्म अंकन क्यों न हो—उसके हृदय के तार मर्मस्पर्शी स्वरों के साथ बज उठते हैं और बाह्यगत वस्तुवादिता से एकरूप हो विलक्षण काव्य-सृष्टि करते हैं।

पन्त की भांति मैथिलीशरण गुप्त का काव्य भी सरल भावानुभूतियों से आप्लावित है। उन्होंने जीवन-तथ्यों का उद्घाटन कर साधारण वस्तुओं में भी सौन्दर्य की खोज की है और अपनी स्वतन्त्र चेतना कलाकार की तूलिका से काव्यात्मक-पुट देकर उन्हें महत्त्वपूर्ण बनाया है। भारत भारती, साकेत, यशोधरा, पंचवटी, जय भारत, त्रिपथगा, अनघ, द्वापर आदि उनकी प्रमुख कृतियों में आत्म-चिन्तन और व्यापक लोक-निरीक्षण है। गुप्तजी का दृष्टिकोण इतना प्रकृतिस्थ और सुस्थिर है कि उनकी सामाजिक चेतना का आधार आत्मपरक मानववाद है जिसमें जीवन के अद्भुत तत्त्व भी सूरजमुखी की भांति खिले हुए हैं। उन्होंने जीवन से कायरतापूर्ण पलायन न करके कर्म-क्षेत्र में द्वन्द्व स्वीकार किया है और यद्यपि प्रारम्भ से ही अतीत-गौरव और जीवन-दर्शन की ओर उनकी प्रवृत्ति रही है, तथापि उनके संचित अनुभव में एक निर्मल सात्त्विक उल्लास और आत्मा की विशालता का प्रकाशन है। पन्त की कविता यदि व्यावहारिक अधिक है तो इनकी कविता अन्तर्जगत् की साधना के भावयोग से युक्त। उसका हृदय दूसरों के दुःख-सुख का अनुभव कर एक पराजित विह्वलता में प्रायः मूक हो जाता है तो इनके भाव अन्तरतम प्रदेश से उच्छ्वसित होकर जीवन-पुलिनों का स्पर्श करते हुए बरबस फूट पड़ते हैं। पन्त ने प्राकृतिक दृश्य रूपों और लोक-जीवन का चित्रण करके काव्य की सरस मानस्विता बढ़ाई है, गुप्तजी ने काव्य के इस सूक्ष्म पार्श्व पर विशेष ध्यान न देकर स्वाभाविकता के साथ साथ गंभीरता का भी यत्र तत्र सम्मिश्रण किया है। पन्त ने अपने सीमित संसार का निर्माण प्रकृति और जीवन के सरल उपकरणों को चुन चुन कर किया है, गुप्तजी ने प्राचीन आर्य-संस्कृति और व्यापक लोक जीवन से भी सम्बन्ध जोड़कर उसे परिपूर्ण बनाया है। पन्त का भाव उत्कर्ष के लिये

अध्यात्म-चिन्तन की अपेक्षा मानव-गुणों का उत्कर्ष ही अधिक अभिप्रेत है, किन्तु गुप्तजी सद्गुणों के उपासक होकर भी अपनी महान् सांस्कृतिक-परम्पराओं में रमण करते हुए अनुराग और विराग, भोग एवं त्याग तथा स्थूल और सूक्ष्म में पूर्ण संतुलन उपस्थित करते हैं। बर्न्स के जीवन में परिस्थिति एवं मनःस्थिति का द्वन्द्व कभी मिटने न पाया, कभी कोई सा उभर कर प्रमुख हो गया और कभी पिछला पहले को दबाकर उसकी अवहेलना करने लगा, किन्तु गुप्तजी अपने सहज गौरव से कभी विच्युत न होकर आश्वस्त बुद्धि से अपने मूलगत सिद्धान्तों का स्पष्टीकरण करते रहे। गुप्तजी राम के उपासक हैं, बर्न्स धार्मिक अभिरुचि का होते हुए भी धर्म की कट्टरता को अस्वीकार करता है। उसने कला-सृजन को आंतरिक अनुभूतियों एवं संवेदनाओं का समन्वय माना है, गुप्तजी ने अवचेतन-मन के संस्कारों को व्यक्त करके भी कला के गंभीर और मंगलकारी स्वरूप की प्रतिष्ठा की है।

कहने की आवश्यकता नहीं कि गुप्तजी की कला का स्तर अपेक्षाकृत ऊंचा है और उनकी अभिव्यक्ति का क्षेत्र भी अधिक व्यापक है। उन्होंने अनेक छोटे-बड़े प्रबन्धकाव्य लिखे हैं, जिनमें काव्य की विशिष्ट पदावली, रसात्मक-चित्रण, वाग्वैदग्ध्य और जीवनगत तथ्यों का मार्मिक उद्घाटन है। विश्व की अनन्त विविधताओं से संवेष्ठित होकर भी उन्होंने प्रकृति से तादात्म्य स्थापित किया है और दृश्यजगत् की अहर्निश उपयोग में आने वाली वस्तुओं से साहचर्य जोड़कर उनसे सौन्दर्य ही नहीं, स्वर भी प्राप्त किया है। 'साकेत' में अयोध्या के समस्त वैभव की अवहेलना करके जब सीताजी राम के साथ वन में आती हैं तो पहले से भी अधिक सुख एवं परितृप्ति का अनुभव करती हैं।

"निज सौध सदन में उटज पिता ने छाया,
मेरी कुटिया में राजभवन मन भाया।

* * *

क्या सुन्दर लता वितान तना है मेरा,
पुंजाकृति गुंजन कुंज घना है मेरा
जल निर्मल, पवन पराग सना है मेरा
गढ़ चित्रकूट दृढ़ दिव्य बना है मेरा
प्रहरी निर्झर, परिखा प्रवाह की काया,
मेरी कुटिया में राजभवन मन भाया।

* * *

विपन्न क्षणों में बाह्य विश्व का संघात विरहिणी के दुर्बल प्राणों को झकझोर डालता है और वह हवा के सुकोमल स्पर्श से भी अपने को वंचित रखना चाहती है।

"अरी, सुरभि! जा, लौट जा, अपने अंग सहेज
तू है फूलों में पली, यह कांटों की सेज।"

दीपक और शलभ को देखकर उसे दो प्रणयियों की विफल अंतर्व्यथा का आभास होता है और वह उनमें सादृश्य-भावना करती हुई व्याकुल हो पुकार उठती है।

"दोनो ओर प्रेम पलता है।
सखि, पतंग भी जलता है हा! दीपक भी जलता है।
सीस हिला कर दीपक कहता —
'बन्धु, वृथा ही तू क्यों दहता?'
पर पतंग पड़ कर ही रहता! कितनी विह्वलता है!
दोनो ओर प्रेम पलता है।
बच कर हाय! पतंग मरे क्या?
प्रणय छोड़ कर प्राण धरे क्या?
जले नहीं तो मरा करे क्या? क्या यह असफलता है?
दोनो ओर प्रेम पलता है।
कहता है पतंग मन मारे—
'तुम महान् मैं लघु, पर प्यारे,
क्या न मरण भी हाथ हमारे? शरण किसे छलता है?'
दोनो ओर प्रेम पलता है।
दीपक के जलने में आली,
फिर भी है जीवन की लाली
किन्तु पतंग भाग्य-लिपि काली, किसका वश चलता है?
दोनों ओर प्रेम पलता है।"

व्यथित क्षणों में सुखकर वस्तुयें भी अत्यन्त कष्टदायिनी प्रतीत हुआ करती है। विरहिणी अपनी असमर्थता और उदभ्रात चेतना के कारण अनन्त विभूति के साथ एकात्मता का अनुभव करती हुई अन्तर में छिपे सत्य की पूर्ण व्याख्या चाहती है।

'रुदन का हँसना ही तो गान।
गा गा कर रोती है मेरी हृत्तन्त्री की तान।
मीड़ मसक है कसक हमारी और गमक है हूक,
चातक की हृत-हृदय-वृत्ति जो, सो कोइल की कूक।
राग हैं सब मूर्छित आह्वान।
रुदन का हँसना ही तो गान।
कादम्बिनी प्रमद की पीड़ा हँसी तनिक उस ओर,
क्षिति का छोर छू गई सहसा वह बिजली की कोर!
उमड़ती है जलती मुसकान,
रुदन का हँसना ही तो गान।
यदि उमंग भरता न अद्रि के भी सू अन्तर्दाह,
तो फल फूट कर कहाँ निकलता निर्झर सलिल प्रवाह?
सुलभ कर सबको मज्जनपान।
रुदन का हँसना ही तो गान।"

वसन्त ऋतु में वन से लिपटी हुई लता विरहिणी यशोधरा को उसके अपने कपोलों की अरुणिमा से रंजित और उसकी शारीरिक कृशता का मानो उपहास करती हुई हरी भरी और प्रसन्न दीख पड़ती है:

"लता प्रस्फुटित हुई ध्यान से ले कपोल की लाली।
फूल उठी है हाय! मान ये प्राण भरी हरियाली।"

करुण वेदना के समय एक हृदय दूसरे हृदय को गले लगा लेता है। लक्ष्मण के विरह में उर्मिला का हृदय इतना विशाल हो गया है कि वह चकवा-चकवी की वियुक्त स्थिति से द्रवित हो उठती है।

कोक, शोक मत कर हे तात,
कोकि, कष्ट में हूँ मैं भी तो, सुन तू मेरी बात।
धीरज धर अवसर आने दे सह ले यह उत्पात।
मेरा सुप्रभात वह तेरी सुख सुहाग की रात।'

अन्तर और बाह्य-चेतना

गुप्तजी के काव्य की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने साधारण से साधारण प्रसंगों को भी अपनी कुशल कला से अभूतपूर्व बना दिया है और प्राचीन

बर्न्स की 'हाइलैण्ड मेरी', जिसकी मृत्यु के पश्चात् एक उदास संध्या को उसने ये निम्न पंक्तियां लिखी थीं :--

"Thou lingering star, with less'ning ray,
That lov'st to greet the early morn
Again thou usher'st in the day
My Mary from my soul was torn."

"ओ टिमटिमाते, धुंधले तारे !
जो उषा के स्वागत में अपनी आंखें
बिछाए रहता है—तू तो पुन: दिन
में भी प्रकट हो जायगा, किन्तु मेरी
'मेरी' तो हमेशा के लिए मुझसे छीन
ली गई।" —बर्न्स
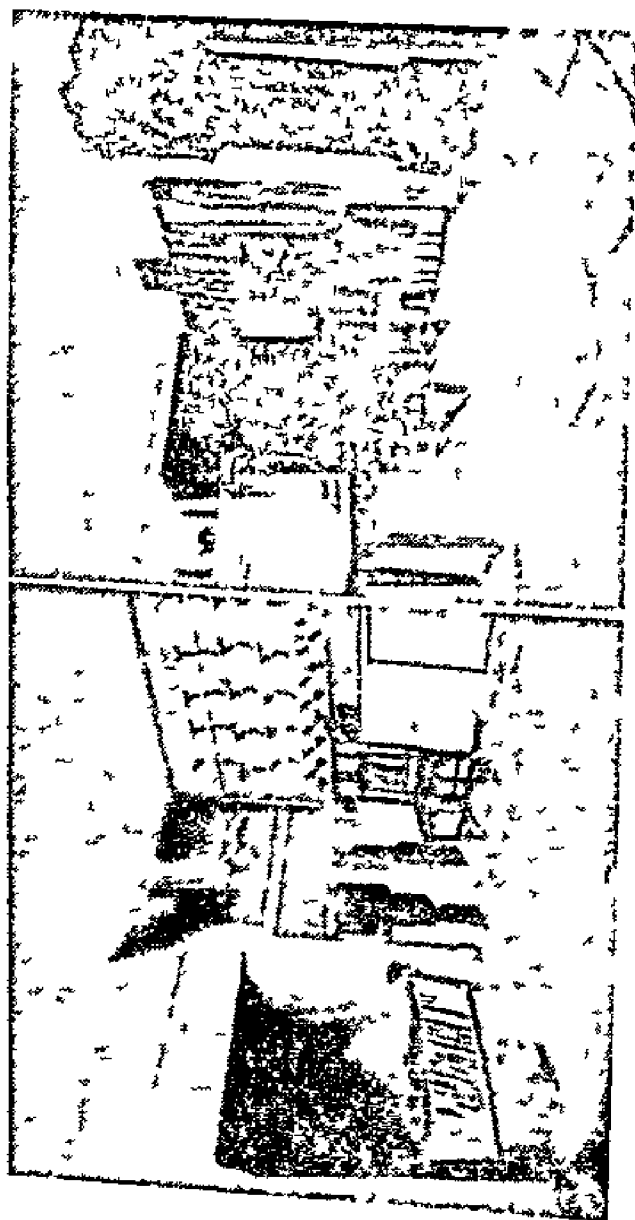
आयर नगर के समीप बर्न्स की जन्मभूमि
एलोव घाटी में स्थित बर्न्स की कुटिया, जो अब भी सुरक्षित है और कवि के प्रशंसक यात्री
नित्य ही उसके दर्शन करने आते हैं।

पद्धति को अपनाने के बावजूद भी हिन्दी कविता को नवीन चिंतन, नवीन प्रेरणा, और नवीन विचारों से अनुप्राणित किया है। उनकी रचनाओ में सांस्कृतिक एव सामयिक भावापन्नता विशेष है। देशकाल की प्रवृत्तियों एवं आदर्शों के अनुसार अपने काव्य का प्रसार कर उन्होने परिस्थितियो की बहुरूपता और प्राचीन गाथाओ का सौदर्योद्घाटन किया है।

गुप्तजी और बर्न्स दोनो ही समन्वयवादी है। मानव-जीवन की ओर दृष्टि-पात करते हुए दोनो के आनन्दग्राही हृदय ने जन-समुदाय की सामूहिक भावनाओ को अपनाया है। बर्न्स के मतानुसार मानव की अधिकृत आत्मा इस जग-जीवन का एक क्षुद्र, चेतन अश है। दलित, शोषित, अधिकार-वंचित मनुष्य भी हृदय रखते है और उनकी भावनाये दैन्य, अनुराग व मान-अपमान का विचित्र संयोग होती है। बर्न्स ने बाह्य जगत् के द्वन्द्वो का जितना सफल और विस्तृत वर्णन किया है, उतना अन्तर्जगत् के द्वन्द्वों का नही। वह सदैव समयाश्रित परिस्थितियो से अधिक प्रभावित रहा, जीवन के शाश्वत प्रश्नों को उसने बहुत हल्के हाथो से स्पर्श किया है। उसने अपनी कविताओ मे अपने व्यक्तिगत जीवन, प्रेम-प्रसंग, विवाह, मित्रता, और कतिपय छोटी-बडी घटनाओ का उल्लेख किया है। 'टॉम ऑ शांटर' (Tom O' Shanter), 'दि जॉली बेगर्स' (The Jolly Beggars), 'दि कॉटर्स सेटरडे नाइट' (The Cottar's Saturday Night) आदि उसकी कृतियों मे सरसता के साथ साथ हृदय को आनन्दित कर देनें वाली भावना है। उसकी अनेक कविताओ मे यौवनोचित आवेगों की तीव्रता भी है। कही कही उसकी प्रणय-भावना इतनी प्रबल हो उठी है कि वह चौक कर कह उठता है।

"यदि हमने इतना खुल कर प्रेम न किया होता।
यदि हमारा प्यार इतना अंधा न होता।
यदि हम कभी न मिलते अथवा कभी भी एक दूसरे से न बिछुड़ते
तो हमारे हृदय इस प्रकार टूक टूक न होते।"

गुप्तजी ने अपने काव्य मे उच्छृंखलता को कही भी स्थान नही दिया है, तो भी प्रसंगानुसार उनकी कृतियों में संकोचपूर्ण गरिमा के साथ प्रेम-व्यंजना अनेक स्थलो पर मिलती है। नीचे उद्धृत पंक्तियां कितनी संयत और सुकुमार व्यंजना से युक्त हैं।

"उन्हें स्वप्न में देख रात को प्रातःकाल चली मैं।
और खोजती हुई उन्हीं को घूमी गली गली में।

साहस करके चली गई मैं, किन्तु कहाँ तक जाती।
पर थक सूझा न पथ भी, धड़क उठी यह छाती।
थी बयार या ब्याली, मैं यों ही भटकी हूँ आली!
आँख मूँदकर चिल्लाई तब 'कहाँ छिपे हो, बोलो।'
कर-स्पर्शन सुना उसी क्षण, 'तुम आँखें भी खोलो।
ओ मेरी मतवाली।' मैं यों ही भटकी हूँ आली।"

गुप्तजी और बर्न्स के काव्य और उनकी प्रमुख मूल प्रवृत्तियों के इतने विश्लेषण से यही निष्कर्ष निकलता है कि ये दोनों सच्चे कलाकार हैं और अपने विचारों को बिना किसी अतिशयोक्ति के सरल भाषा में ज्यों का त्यों प्रकट कर देते हैं। बर्न्स की भाषा बेतरह मँजी हुई नहीं है, उसने नित्य व्यवहार के घरेलू मुहावरे और स्काटिश भाषा के व्यावहारिक ग्रामीण शब्दों का प्रयोग करके अंग्रेजी भाषा में अद्भुत रूप से स्वाभाविक प्रवाह और सजीवता भर दी है। भाषा की अकृत्रिमता और सजीवता ने उसके भावों को इतना सुस्पष्ट, मर्मस्पर्शी और हृदयग्राही बना दिया है कि उसकी कविताओं में कहीं कहीं कुछ पंक्तियाँ ऊबड़-खाबड़ और कुछ शब्द अव्यवहृत होने पर भी सौन्दर्य में कमी नहीं होने पाई है। बर्न्स की सबसे बड़ी विशेषता है कि उसकी अन्तर्वर्तिनी अनुभूति उमड़कर किसानों के दुःख सुख, हर्ष विषाद और वैभव अभावों में इतनी घुलमिल गई है कि पाठक कुछ क्षणों के लिए उसकी दुःखानुभूति के हाहाकार में स्वयं भी खो जाता है।

गुप्तजी की भाषा अति सुसंस्कृत, प्रौढ़ और साहित्यिक होते हुए भी सजीव और बोधगम्य है। उन्होंने प्रसंगानुकूल अलंकारों, छन्दों और रसों का भी प्रयोग किया है। जिस समय खड़ी बोली की कविता अपने शैशव काल में थी और भाषा का एक सुनिश्चित रूप स्थिर न हुआ था, उस समय उन्होंने प्राञ्जल और सुबोध भाषा का प्रयोग करके उसकी परिधि को व्यापक बनाया और आज की विकासोन्मुख काव्य-कला को विविध दिशाओं की ओर अग्रसर किया।

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि गुप्तजी और बर्न्स को समझने के लिए पाठक के हृदय में गहरी काव्यानुभूति अपेक्षित है। उनके काव्य में अन्तर की साधना और अन्तःकरण की सच्ची पुकार है। मानवीय रूपों का विश्लेषण करते हुए सार्वभौम चिरन्तन सत्य के आधार पर देश तथा काल की संकीर्ण सीमाओं से ऊपर उठकर उनके अन्तर्भाव विश्व-वाणी के स्वर में स्वर मिलाकर बज उठते हैं और भावना के साथ दिव्यता, सुन्दर और मांगल्य का अनिन्दित गायन-सन्देश सारे विश्व को दे जाते हैं।

रामचन्द्र शुक्ल और मैथ्यू आर्नल्ड

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

जन्म-विक्रम संवत् १९४१ (आश्विन पूर्णिमा)

मृत्यु-ईसवी सन २ फरवरी १९४१

मथ्यू आर्नल्ड

जन्म-ईसवी सन् १८२२ (क्रिसमस ईव)

मृत्यु-ईसवी सन् १८८८ (अप्रैल)

साहित्य के मूल्याकन की कसौटी क्या हो, समालोचक को किन किन रचना-तत्त्वो एव साहित्यिक-उपकरणो से अवगत होना चाहिए, युग-विशेष की अप्रतिहत प्रगति को हृदयंगम रखते हुए वह किस प्रकार साहित्य-समष्टि के व्यष्टि-रूप सौंदर्य-तत्त्व मे अपनी निरपेक्ष बुद्धि को केन्द्रित कर आलोच्य-सामग्री को परिपुष्ट एवं गरिमान्वित करे तथा वातावरण एव विशेष परिस्थितियो से घिरा होकर भी वह कैसे ऊपर उठकर अपनी रचनाओ मे उन तत्त्वो का संकलन करे, जो उसकी निगूढ मन स्थली से उद्भूत हुए हैं—आदि प्रश्न विचारकों को सदा से अपनी ओर आकृष्ट करते आये हैं। मिडल्टन मरे के शब्दो मे, "जिस प्रकार कला जीवन की चेतना है, उसी प्रकार समालोचना भी कला को अनुप्राणित करती है।" एक आदर्श समालोचक को दूसरे के प्रति ईमानदार रह कर साहित्यिक समस्याओं के समाधान मे अपना योग प्रदान करना चाहिए। संकीर्ण भावनाओं से सर्वथा मुक्त होकर उसे कलात्मक रचनाओ के विशेष गुणो को पहचानना और उनकी अन्विति करना अनिवार्य है। सत्साहित्य की वन्दना के लिये उसे अपने मन-मंदिर के द्वार पर ताला न लगा लेना चाहिए और विश्व-साहित्य की धड़कन सुनने के लिये उसे अपने कान मूंदकर कही अन्यत्र न भाग जाना चाहिए। वस्तुत. सच्चे समालोचक के लिये युग-सत्य एवं युग-युग के सत्य मे कोई विरोध नहीं। उसकी बुद्धि में वह प्रखरता, उसकी रुचि मे वह सौष्ठव और उसकी दृष्टि मे वह पर्यवेक्षण-शक्ति होती है, जो गहन से गहनतम स्तर को स्पर्श करती हुई वस्तु के मर्म मे पैठ झांकती है।

चसद ने एक बार चिढ़ कर लिखा था, "समालोचक तो घोड़े का वह मक्खी है जो उसे हल चलाने में रोकता है" और सिबेलियस का यह आक्षेप भी याद रक्खा समालोचक के लिये कभी किसी ने कोई स्मारक खड़ा नहीं किया" अब बहुत कुछ अंशों में अपना महत्त्व खो चुका है। आज का साहित्य समालोचकों की कृतियों से बहुत कुछ उपकृत है और कौन जाने आने वाला युग उनकी कितनी बड़ी कीमत आंकेगा।

प० रामचन्द्र शुक्ल और मथ्यू आर्नल्ड के पूर्व तत्कालीन आलोचना साहित्य जिन संकीर्ण नालियों से होकर गुजर रहा था और अन्यान्य हाथों में पड़ जिस लक्ष्यहीन मार्ग का अनुधावन कर रहा था—वह इन दोनों के द्वारा परिष्कृत और संवर्धित होकर एक दूसरी ही दिशा की ओर मुड़ चला। उन दिनों के समालोचकों में पक्षपात की प्रवृत्ति विशेष थी। वे आलोच्य-सामग्री की विशेषताओं पर ध्यान न देकर गुण ही गुण अथवा दोष ही दोष का दिग्दर्शन कराते थे जिससे साहित्यिक-समालोचना के आधारभूत तत्त्वों को समझना-समझाना और अच्छे बुरे की पहचान करना अत्यन्त कठिन हो जाता था। कहने की आवश्यकता नहीं कि इन दोनों मनीषियों ने समीक्षा साहित्य को एक नवीन दिशा की ओर उत्प्रेरित किया, उसमें एक नवीन चेतना भरी और अपनी सत्य-वृत्ति एवं उत्कट विवेचना शक्ति के द्वारा उसकी परिधि को व्यापक बनाया। स्थान-काल की परिस्थिति एवं जातीय विभेद होते हुए भी दोनों के दृष्टिकोणों में कुछ ऐसा साम्य है उनके स्वभाव रुचि-वैविध्य और विचारों में कुछ ऐसी स्पष्टता है तथा उनकी सूझ, गाम्भीर्य और मौलिक-उद्भावना में ऐसी अनन्त गहराई है जो स्वस्थ समालोचना के सामूहिक तत्त्वों के समन्वय में अपनी क्रियाशीलता का परिचय देता है। उनकी सबसे बड़ी विशेषता है कि वे समय के प्रवाह में हवा के रुख की तरह न बह कर स्थितप्रज्ञ निर्णायक की भांति समीक्षा के कलात्मक स्वरूप के विश्लेषण और मूल्य निर्धारण में लगे रहे और अपनी सम्पूर्ण कृतियों में अपना वंशगमस, एकनिष्ठ एवं सूक्ष्मदर्शी समालोचक का रूप कभी न भूले।

समालोचना की पट भूमि

समालोचक का कर्तव्य है कि वह सत्य को निरंतर टटोलता रहे और अपनी निष्पक्ष दृष्टि एवं सद्भावना से उसे उत्तरोत्तर निकट लाने की चेष्टा करे। यदि उसमें पक्षपात अथवा हीन भावना है तो उसकी समीक्षा उपर तक या सत्य तो

हो सकती है, किन्तु साहित्यिक-सत्य के रूप मे स्वीकार नही की जा सकती। सामयिकता को लाघ कर जो विषय की गहराई को नाप लेता है—उसकी कृति उतनी ही सत्य के अनुरूप होती चलती है और देश-काल की परिधियों का अतिक्रमण करती हुई वह उतनी ही स्थायी और सर्वव्यापी हो जाती है।

रामचन्द्र शुक्ल और मैथ्यू आर्नल्ड मे उक्त प्रकार की निरपेक्ष वुद्धि एवं प्रौढ़ जागरूकता का प्रस्फुटन पूर्णरूपेण न हुआ, तो भी उनकी आत्मा के संस्कार और व्यक्तिगत-रुचि एक विशेष सस्कृति के दायरे मे मर्यादावद्ध थी और उन्होंने जिसे सुन्दर एवं शिवरूप समझा उसी को—सत्य का पल्ला पकड़—वे लिखते रहे। उनकी अपनी कुछ निजी धारणाये ऐसी दृढ थी कि अपने प्रति सच्चे रह कर उन्होने निर्भीक और निश्चित् वुद्धि से अपनी उच्च काव्य भावना और समीक्षा सम्बन्धी पैमानों के अनुरूप दूसरे के प्रति अपने दायित्व को प्रकट किया। वे छोटी-मोटी वातों अथवा छिछली सहानुभूति के वशीभूत न होकर एक सजग तटस्थता के साथ अपने चारो ओर पारदर्शी अन्वीक्षक की नाईं देखते और लिखते रहे। कहना न होगा प० रामचन्द्र शुक्ल के कतिपय समालोचनात्मक निवंध और 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' उनकी अपनी अनुभूतियों का दर्पण है और मैथ्यू आर्नल्ड की 'एस्सेज़ इन क्रिटिसिज्म' (Essays in Criticism), 'कल्चर एण्ड एनार्की'(Culture and Anarchy), 'थियरी ऑफ् पॉइट्री' (Theory of Poetry) और अन्य छुटपुट रचनाओं में उसके व्यक्तित्त्व का वह संचित समग्र रूप प्रकट हुआ है, जो उसके व्यक्त-रूप के विविध जीवन-तत्त्वो को थामे हुए है। सन् १८६५ मे जव सर्वप्रथम मैथ्यू आर्नल्ड की पुस्तक 'एस्सेज़ इन क्रिटिसिज्म' प्रकाशित हुई तो साहित्यिक-क्षेत्र में अपनी विशिष्ट शैली, नवीन दृष्टिकोण, निरकुश विचारधारा और दिलचस्प विषयों की व्यापकता के कारण इसने तहलका मचा दिया। आजतक कोई ऐसी जोरदार समालोचनात्मक पुस्तक कम से कम इंगलैण्ड मे न निकली थी, जो एकसाथ देशीय एवं वहिर्देशीय कवियों पर इतनी मर्मगत, व्यापक और वृहद् विचारधारा का दिग्दर्शन कराती। इसके प्रथम दो निवन्धो मे ऐसे समस्त समकालीन समालोचको की भर्त्सना की गई थी, जो संकीर्ण एवं व्यक्तिवादी विचारो, पक्षपातपूर्ण धारणाओं और राग-द्वेष मे पड़ कर सच्चे साहित्य-शिल्पियों की अवज्ञा करते है और अहंकार, हीन-भावना व अपूर्ण ज्ञान के कारण दूसरों की विशेषताओं पर पानी फेर देते है। ऐसे व्यक्तियो के लिए उसने व्यग और आक्रोश मे 'फिलिस्टाइन' (Philistine) शब्द का प्रयोग किया, जो

हन (Heine) से उधार लिया गया था। यद्यपि लेखक ने तत्कालीन साहित्यिकों पर गहरी चोट की थी और उसकी शब्द-सम्पत्ति भी पर्याप्त सपाट एवं अच्छे-बुरे की निषेधात्मक सीमा रेखाएं थी तथापि अपनी समालोचना में उसने जिन जोरदार शब्दों, मुहावरों और वाक्यांशों का प्रयोग किया था, वह बहुत कुछ फ्रेंच गद्य की पद्धति पर था। मैथ्यू आर्नल्ड फ्रांस के समकालीन दो समालोचकों सेंट ब्यूवे (Sainte Beuve) और रेनान (Renan) से अत्यधिक प्रभावित था और उसने अपने गद्य निर्माण में उन्हीं की प्रणाली को अपनाया था।

अंग्रेजी समालोचना की जिस प्रारम्भिक अवस्था में मैथ्यू आर्नल्ड का आगमन हुआ था—वह साहित्य-समालोचकों के अनुरूप न होकर उन्हें दुर्दान्त परिस्थितियों में जकड़े हुए था और अनेक बाधाओं, व्यवधानों के कारण उनकी प्रतिभा मुरझा कर रह जाती थी। मैथ्यू आर्नल्ड ने परिस्थितियों को लांघ कर और पहले से आती हुई साहित्यिक-परम्पराओं से सर्वथा विमुख न होकर, किन्तु कुछ पृथक् हटकर समालोचना की नूतन पद्धतियां निकालीं जिससे तात्कालिक साहित्य पर गहरा प्रभाव पड़ा। उसने जिस स्पष्टता एवं पैनी निगाह से दूर की वस्तु को पास रख कर देखा और उसके मूल्य को ठीक ठीक आंकने की चेष्टा की—वह कटु सत्य होते हुए भी निर्णीत रूप में सबके समक्ष आया। उसके द्वारा समीक्षा-साहित्य ने एक नवीन चेतना और सजीवता ग्रहण की। कुछ छुटपुट रेखाओं जोरदार मुहावरों और सुगठित शब्दों द्वारा लेखक ने अपने चित्रों में निज प्राणों की इतनी श्रेष्ठ पूंजी, विविधता, रंग-वैषम्य अपने अभिमत, विधि निषेध और मत विश्वास भर दिये हैं कि उनका अध्ययन करते समय पाठक का ध्यान उनके औचित्य एवं अनौचित्य पर न जाकर उनकी विलक्षण नूतनता में खो जाता है। लेखक के व्यक्तिगत दृष्टिकोण और तर्कों का विश्लेषण इतना सबल है कि तर्क स्वयं सशरीर मेधा के समक्ष खड़े हो जाते हैं और लेखक का व्यक्तित्व पीछे छूट जाता है। एस्सेज इन क्रिटिसिज्म में मैथ्यू आर्नल्ड के निजी सिद्धांतों का विवेचन अधिक है और उसके शब्दों का चुनाव भाषा की चित्रोपमता वर्णन की सजीवता, बारीकी और सूक्ष्मदर्शिता दर्शनीय है।

शुक्लजी ने भी इसी प्रकार साहित्यिक-हृासावस्था और संकुचित परिस्थितियों का परख कर युगानुरूप साहित्य-सर्जन किया था और अपनी अनुभूत धारणाओं की दृढ़ नींव पर खड़े होकर विचित्र साहस और विद्रोहात्मक शक्ति का परिचय देते हुए स्वस्थ-समीक्षा से अपना मस्तिष्क सम्पर्क जोड़ा था। तत्कालीन लेखकों की

पक्षपातपूर्ण प्रवृत्ति और समुचित पथ-प्रदर्शन के बिना उन दिनो हमारा आलोचना-साहित्य सर्वथा एकांगी और उपेक्षित था। समालोचक अपने दायित्वों के प्रति जागरूक न था, वरन् यो कहे कि वह अपने कर्तव्य-ज्ञान से बिल्कुल अनभिज्ञ था और एकपक्षीय एवं दलगत भावनाओ मे पड कर उसकी दृष्टि इतनी परतन्त्र हो गई थी कि वह शाब्दिक कलाबाजियो के अतिरिक्त कोई मौलिक उद्भावना न कर सकता था। समालोचना के सम्बन्ध मे अपने विचार प्रकट करते हुए शुक्लजी लिखते है :-

"समालोचना के सम्बन्ध में हमे इतना ही कहना है कि इधर शुद्ध समालोचनाएं कम और भावात्मक समालोचनाएं बहुत अधिक देखने मे आती है, जिनमे कवियों की विशेषताएं हमारे सामने उतनी नही आती जितनी आलोचकों की अपनी भावनाओ की अलकृत छटा। पर किसी कवि की आलोचना कोई इसी लिये पढने बैठता है कि उस कवि के लक्ष्य को, उसके भाव को ठीक ठीक हृदयंगम करने मे सहारा मिले, इसलिये नही कि आलोचक की भावभंगी और पद-विन्यास द्वारा अपना मनोरंजन करे।"

शुक्लजी ने इन शतरजी चालो से पृथक् हटकर चतुर्दिक् वातावरण पर व्यापक दृष्टिपात करने के पश्चात् समीक्षा के मूलभूत तत्वों को पृथक् पृथक् स्पर्श किया और एक कुशल चित्रकार की भांति हल्की-गहरी सभी प्रकार की रेखाओं को अंकित करके उनमे अपनी सच्ची अनुभूतियों का रंग भरा। शुक्लजी के मैदान मे आते ही समालोचना-साहित्य बड़े वेग से आगे बढने लगा। कारण स्पष्ट है—वे उत्तेजक, काल्पनिक एवं क्षणिक प्रवृत्तियों में न पड़ कर हिन्दी-गद्य को परिपुष्ट करने में लगे रहे और तात्कालिक साहित्य की निर्जीव एवं भावशून्य आत्मा में अपनी जीवन्त-शक्ति, आत्मिक-सौंदर्य और दिव्य सात्विक-दीप्ति का आलोक भरने की सतत चेष्टा में संलग्न रहे। उन्हीं के शब्दो मे "हम योरप में हर एक उठी हुई बात की ओर लपकना छोड़ दे, समझ-बूझ कर उन्ही बातो को ग्रहण करें, जिनका कुछ स्थायी मूल्य हो, जो हमारी परिस्थिति के अनुकूल हो।" साहित्य-समीक्षा के लिये शुक्लजी ने सांस्कृतिक आदर्शो को अपनाया, किन्तु उस संकुचित अर्थ में नही, जो केवल जराजीर्ण रूढियो और पुराणपंथी मनोवृत्ति को उकसाने वाला था। कहीं से भी और किसी की भी उपयोगी बातो को ग्रहण करने में वे अपनी हेठी न समझते थे—हां, ऊपरी सतह पर मंडराने की अपेक्षा वे गहराई में पैठकर कुछ पा लेने के सदैव पक्षपाती रहे। एक स्थल पर वे लिखते है, "भारतवर्ष का सम्पर्क संसार के

और रोगों में यह स्पष्ट है, यदि हममें विश्व-बन्धुत्व रहेगा तो हम सारी ओर से उपयोगी और पोषक सामग्री लेकर और पचाकर अपने साहित्य को पुष्ट एवं दृढ़ करेंगे। यदि यह विश्व-बन्धुत्व न रहेगा तो जैसे अनेक प्रकार के रोगों ने आकर यहाँ अड्डा जमा लिया है—वैसे ही अनेक प्रकार की व्याधियाँ आकर हमारे साहित्य को ग्रस लेंगी और उसका स्वतन्त्र विकास रुक जायगा।

शुक्लजी ने भारतीय वातावरण के अनुरूप, किन्तु पाश्चात्य साहित्य-शैली का माध्यम बनाकर समीक्षा के ठोस उपादानों का एकत्र किया और निश्चित सीमा के भीतर उसकी बद्ध आत्मा को जीवन के व्यापक क्षेत्र में ला रखा। निःसन्देह रामचन्द्र शुक्ल और मध्य आनन्द ने अपने लेखों से यह प्रमाणित कर दिया कि साहित्यकार परिस्थितियों की देन नहीं वरन् उसका शक्तिशाली व्यक्तित्व साहित्य में नवीन चेतना उत्पन्न कर देने वाला और परिस्थितियों को अभीष्ट दिशा में उन्मुख कर देने वाला होता है, यद्यपि इसका ज्ञान उस समय बहुत कम लोगों को हो पाता है।

व्यक्तिगत रुचि

स्वतन्त्र चिन्तन, मान्यता एवं वैयक्तिक तथ्य-दर्शन में प्रायः ये दोनों ही महारथी सहज अविजेय हैं। उनका आत्म-विश्वास इतना गहरा है, उनकी राय इतनी निर्णीत और मुखर होती है, उनकी बुद्धि इतनी सतर्क एवं उद्बुद्ध है और वे अपनी व्यक्तिगत अभिरुचि को इतना प्राधान्य देते हैं कि उनके तर्कों की भयानक मौलिकता हमारे सहज विवेक को आच्छन्न कर लेती है। उनकी रचनाओं के मर्म में पैठ कर यदि हम उनके हृदय की गहराई में झाँकने का प्रयास करते हैं तो हमारी दृष्टि उनके उलझना भरे विश्लेषण के झुरमुट में जा अटकती है और हम बहुत कुछ अस्वाभाविक समझते हुए भी उसे अवश्यम्भावी समझ लेते हैं। यदि हमारे हृदय में उनकी धारणाओं के प्रति कुछ संशय की गुंजायश होती भी है तो वह उनके सबल विश्वास में आकर खो जाता है और हम उनकी भावनाओं, विचारों एवं भाषा की सहज गति के साथ इस प्रकार आगे बढ़ते चलते हैं कि हमें पीछे मुड़कर देखने का अवकाश ही नहीं मिलता।

रामचन्द्र शुक्ल और मध्य आनन्द की कृतियों में उनके व्यक्तित्व की स्पष्ट झलक है। चूँकि उन्हें *अनेक सामयिक समस्याओं* का सामना करना पड़ा था अतएव उन्होंने जो मार्ग एक बार चुन लिया—उसी पर वे अन्त तक चलते रहे। अपने आत्मा

एवं अनुभूत बातों के अनुरूप उन्होने जो रेखाये अंकित की है—वे अत्यन्त गहरी और अमिट है। तीव्र जिज्ञासा होते हुए भी उनके मन मे ऐसी कट्टरता अंतर्निहित है कि उनके हृदय की सत्यता की तस्वीर हमारे मस्तिष्क पर अंकित हो जाती है। वे निरन्तर कुछ टटोलते से रहते है, जिसका परिणाम यह होता है कि वे पूरी तरह मे अपने को अभिव्यक्त नही कर पाते। जिस किसी के प्रति उनका मन आकर्षित होता है—उसी से वुद्धि की लड़ाई ठन पडती है। अतीत के प्रति असतोष, भविष्य के प्रति उत्कठा और वर्त्तमान् की असगत बातो से उन्हे चिढ है। उनके मन मे उत्साह है, सत्साहित्य के प्रति अटल श्रद्धा है, वे बहुत कुछ समझने और समझाने की चेष्टा करते है। किन्तु दकियानूसी और उच्छृंखल बातो से उन्हे अत्यन्त घृणा है, अतएव कही कही वे दर्शक से प्रदर्शक हो गये है और कही इस प्रकार अधिकार-पूर्वक अपने विचारो को प्रकट करते है कि मानो जिसे वे उचित अथवा अनुचित समझते है—उसे दूसरे भी ठीक वैसा ही समझें।

किसी के प्रति तिरस्कार या वहिष्कार का भाव न रखते हुए भी उनके मन मे बहुत सी मर्यादाहीन बातों के लिये सदैव द्वन्द्व छिड़ा रहा। शुक्लजी ने शृंगारिक भावनाओं की अपेक्षा उन पुरातन कलादर्शो पर लिखी कविता को अधिक उत्तम माना "जो मनुष्य के हृदय को स्वार्थ सम्बन्धो के सकुचित मण्डल से ऊपर उठा कर लोक-सामान्य भाव-भूमि पर ले जाती है, जहां जाति के नाना रूपो और व्यापारो के साथ उसके प्रकृत सम्बन्ध का सौदर्य दिखाई पड़ता है और इस अनुभूतियोग के अभ्यास से हमारे मनोविकारो का परिष्कार तथा शेष सृष्टि के साथ हमारे रागात्मक सम्बन्ध की रक्षा और निर्वाह होता है।" शुक्लजी मानों आदर्शों के उत्तुग हिमाचल पर खडे होकर अपनी सहज गरिमा से नीचे दृष्टिपात तो करते रहे, किन्तु जीवन के वैभिन्न्य में श्रेय और हेय इन दो पक्षों की पृथक् सत्ता मानते हुए भी उनमें पूरी तरह समन्वय न कर पाए। उन्होने कविता को शाश्वत सत्य तो माना, किन्तु सास्कृतिक आदर्शो को वस्तुवादी दृष्टिकोण से न देखने के कारण उनके मन मे उलझाव पैदा हो गया, जिससे आदर्श एव यथार्थ विषयक भ्रान्ति को वे स्पष्ट न कर पाये। इसके विपरीत मैथ्यू आर्नल्ड ने "कविता को मूल मे जीवन की आलोचना" स्वीकार किया। शुक्लजी ने अपनी परिभाषा में भाव-पक्ष पर वल दिया, मैथ्यू आर्नल्ड ने बुद्धि-पक्ष पर। एक ने काव्य की रसात्मकता और व्यंजना का क्षेत्र संकुचित अर्थों मे प्रकट किया, दूसरे ने जीवन-अनुकृति को ही

थय की प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति माना किन्तु उनका मन ही वह अभिन्न आत्मा न हुई जो काव्य की अन्तरंग आत्मा को स्पर्श कर पाती।

शुक्लजी के विचार लोक भावना पर आधारित हैं। वे संकुचित व्यक्तिवाद से व्यापक लोकवाद को अधिक महत्त्व देते हैं और इसी पैमाने पर उन्होंने अपने काव्य-सम्बन्धी सिद्धान्त और धर्म का स्वरूप स्थिर किया है। काव्य अथवा साहित्य में वासनाजन्य अनियन्त्रित भावुकता और बाह्य प्रचारात्मक-वृत्ति उन्हें पसन्द न थी वरन् वे उन मानवीय संवेगात्मक अनुभूतियों का सम्मान करते थे जो लोक मंगल और जीवनोन्मुखी जागरूकता की संवाहक बन कर मरुभूमि में अपनी रसमयी धारा से सिंचन करती हुई जीवन की क्लान्ति को हर लेती हैं। सूर के कृष्ण की अपेक्षा तुलसी के लोक-सम्मान्य राम पर वे अधिक मुग्ध थे और उस पुनीत कर्म की वन्दना करते थे जो सद्विचारों को प्रेरक और मन प्राणों को स्पन्दित करने वाली होती है। मैथ्यू आर्नल्ड ने क्लेशों के निवारण वाले समस्त उपकरणों का संवरण करके जीवन के अन्तरंग अटूट पट पर उन तत्त्वों को भी सम्मिलित कर लिया जो आचार की उपेक्षा करते हुए भी सुन्दर और चित्ताकर्षक होते हैं। यद्यपि उनमें अन्तःकरण को आह्लादित करने वाले नैसर्गिक गुणों का अभाव था तो भी वे कुछ देर के लिए मन-बहलाव तो कर ही सकते थे।

हठधर्मी

शुक्लजी और मैथ्यू आर्नल्ड के मूलगत सिद्धान्तों की एक और विशेषता यह है कि वे जिसे स्वीकृत सत्य मानकर चलते हैं उस पर इस प्रकार अड़ जाते हैं कि जरा भी टस से मस नहीं होते। वे हठीले साहित्यकार हैं और अपने प्राणवान् व्यक्तित्व एवं उन्मुक्त भावनाओं के कारण अनजान में कई बार अव्यावहारिक हो जाते हैं। २७ सितम्बर सन् १८६४ में मैथ्यू आर्नल्ड ने अपने एक मित्र मिस्टर डाइक्स कैम्पबेल को पत्र लिखते हुए तात्कालीन कवि टेनीसन के सम्बन्ध में अपनी सम्मति इस प्रकार प्रकट की थी — मैं टेनीसन को किसी भी रूप में महान् और शक्तिशाली यथार्थ में नहीं समझता इस लिए कि आधुनिक चिन्तन-क्षेत्र में गहरा गंभीर मनन में वह संशय का और भावुकता में कायरता का समर्थक है। जब तक कोई विशेष रूप से इस युग का कवि उक्त ढंग का नहीं है तब तक मैं उसमें कोई दिलचस्पी नहीं रखता और मेरा दृढ़ विश्वास है कि ऐसा कवि कभी भी जीवन में स्थिरता पूर्वक अपने पैरों पर खड़ा नहीं रह सकता।

["I do not think Tennyson a great and powerful spirit in any line, as Goethe was in the line of modern thought, Wordsworth in that of contemplation, Byron even in that of passion, and unless a poet, especially a poet at this time of day, is that, my interest in him is only slight, and my conviction that he will not finally stand high is firm."]

'इन मेमोरियम' (In Memoriam) के अमर कवि टेनीसन के सम्बन्ध मे मैथ्यू आर्नल्ड की यह उक्ति हमे आश्चर्य मे डाल देती है और उसकी अपेक्षा बायरन को अधिक महत्व देना तो और भी विलक्षण बात है। किंतु किन्ही अज्ञात कारणो से वह अपने समकालीन अगरेज कवियो की कभी प्रशसा न करता था। इसका कारण कोई व्यक्तिगत द्वेष अथवा संकीर्ण वृत्ति न थी क्योंकि हीन-भावना अथवा मानापमान के छिछलेपन से वह ऊपर उठ चुका था, वरन् जैसा कि उसके मित्र लॉर्ड कॉलरिज ने कहा है, "वे उसकी उपस्थिति मे मुरझा जाते थे।" मैथ्यू आर्नल्ड का स्वभाव ही कुछ ऐसा था कि वह अपने वर्तमान् से सन्तुष्ट न होता था और उसके स्वजातीय समकालीन लेखको के व्यक्तित्त्व उसके अपने निजी व्यक्तित्त्व के ऊपर ठहर न पाते थे, जिससे सहज ही उसमें प्रतिस्पर्द्धा की भावना जाग्रत हो जाती थी। व्यक्तिगत पक्ष मे वह अपनी मन की प्रतीति पर इतना आ टिका था कि सूक्ष्म अनुभूति की उपेक्षा कर बैठा। शेली के संम्बन्ध में उसने लिखा है, "वह उस सुन्दर, विफल देवदूत की भाति है, जो व्यर्थ ही शून्य मे अपने चमकीले पख फड़फड़ाता है।"

["A beautiful and ineffectual angel beating in the void his luminous wings is vain."]

अपनी अत्यधिक तीव्र कल्पना के कारण शेली न जाने कितने विलक्षण सपने अपनी पलको मे नित्य संवारता रहा था और उसकी आकाशचारी प्रतिभा ने यथार्थ की कठोर भूमि को कभी स्पर्श न किया था, अतएव जहां तक उसमे कोरी कल्पना का प्राधान्य है, वहा तक मैथ्यू आर्नल्ड का यह कथन आंशिक रूप से सत्य कहा जा सकता है। शृंगारिक भावुकता और अधिक रसमग्नता के कारण वह कीट्स से भी मरते दम तक समझौता न कर सका था। वस्तुतः अपनी निजी धारणाओं पर वह इतना दृढ़ था कि दूसरे के विश्वास उसे आसानी से न पकड़ पाते थे।

आयरिश कवि वर्क (Burke) के सम्बन्ध मे मैथ्यू आर्नल्ड लिखता है, "इतने महान् व्यक्ति के विरुद्ध, जो राजनीति और साहित्य मे धुरन्धर, देश-

प्रेम में अग्रगण्य और विचारशक्ति में अद्वितीय है—मैं कुछ कहूँ इसके लिए ईश्वर क्षमा नहीं है। किन्तु वह अंग्रेज़ी-गद्य का सब से बड़ा लेखक है—इस मत से मैं विनम्रतापूर्वक असहमत हूँ। अंग्रेज़ी का सब से महान् गद्य-लेखक शेक्सपीयर है। मेरे विचार में बर्क ने तो गोल्डस्मिथ अथवा स्विफ्ट की भाँति भी कभी स्वच्छ अंग्रेज़ी न लिखी। वह अत्यन्त स्पष्ट और मुखर तो हो सकता था पर मेरी तुच्छ बुद्धि के अनुसार वह बेकन, मिल्टन, ड्राइडन अथवा सर टॉमस ब्राउन की ऊँचाई को नहीं छू सकता था।

[Heaven forbid that I sh uld say a wo d against that great man—great in politics great in literature, passionate in patriot ism fertile in ideas But to the preposition that he was the greatest writer of English prose I respectfully demur The greatest writer of English prose is Shakespeare I do not think that Burke wrote as pure English as his compatriot Goldsmith or even as Swift Eloquent, massively eloquent as he can be he does not in my judgement rise to the level of Bacon or Milton or Dryden, or Sir Thomas Brown]

वस्तु को अपनी पारिपार्श्विक परिस्थिति से तोड़ कर कभी कभी मैथ्यू आर्नल्ड विषय के प्रतिपादन में इतना विभोर हो जाता था कि उसे केवल तथ्य के उद्घाटन से ही सन्तोष न होता था वरन् अत्युक्तिपूर्ण शब्दों में चित्र विचित्र आभास खड़ा करके वह उसके महत्त्व की व्यंजना करता था। ऑक्सफ़ोर्ड की प्रशंसा में लिखे हुए उसके निम्नलिखित वाक्य विशेष उल्लेखनीय हैं।

'सुन्दर नगर! इतना सम्माननीय, इतना भव्य और हमारे युग के भीषण बौद्धिक वातावरण से सर्वथा पृथक् रह कर इतना गम्भीर। नासमझ निर्मम युवकों की नित्य क्रीड़ास्थली होते हुए भी वह अपने सहज गाम्भीर्य में डूबा हुआ और अपने विस्तृत उद्यानों को चन्द्र-ज्योत्स्ना को समर्पित करता हुआ तथा अपने उच्च शिखरों से मध्ययुग की अतीत-कथा सुनाता हुआ यह ऑक्सफ़ोर्ड* नित्य ही अपने अवर्णनीय आकर्षण से हम सब को (इससे भला कौन इन्कार कर सकता है) सच्चे लक्ष्य की ओर उन्मुख करता है—उस आदर्श, उस पूर्णता, उस सौन्दर्य, एक शब्द में—उस सत्य की ओर ले जाता है जहाँ ट्यूबिंगेन का समस्त विचार भी नहीं ले जाता

(" Beautiful City ! So venerable, so lovely, so unravaged by fierce intellectual life of our century, so serene ! There are our young barbarians, all at play ! And yet, steeped in sentiment as she lies, spreading her gardens to the moonlight, and whispering her towers the last enchantment of the Middle Ages, who will deny that Oxford, by her ineffable charm, keeps ever calling us nearer to the true goal of all of us, to the ideal, to perfection—to beauty, in a word, which is only truth seen from another side ? Nearer, perhaps, than all the science of Tubingen.")

सामयिक गति-विधि का निरूपण करते हुए मैथ्यू आर्नल्ड अपने व्यौरो की दृढ नींव पर अडिग रूप से स्थित था। वह किसी की महानता से आतंकित न होकर स्वयं ही उन्हे आक्रान्त कर लेता था। उसकी सबसे बड़ी खूबी थी कि वह बडी सूक्ष्म दृष्टि से वस्तु का मूल्याकन करता हुआ एक एक चित्र उठा कर इस प्रकार उनका विश्लेषण करता था कि रेखाओ की गहराई, रंगों की योजना एवं रूप-गठन का सतुलन सभी कुछ मानो दर्शक के नेत्रों के समक्ष सजीव रूप से समुपस्थित हो जाता था। वह अत्यन्त निर्भीक और निर्द्वन्द्व होकर प्रत्येक व्यक्ति की आलोचना करता था और उनके गुण-दोषो के प्रति वह इतना सजग, सचेष्ट था कि उनकी विशृंखलताओं अथवा सामर्थ्य के भ्रामक जाल मे न फंस कर उनकी गहराई का पर्दाफाश कर देता था। अनेक बार अपने अनुदार दृष्टिकोण एव विशिष्ट रुचि के कारण वह समकालीन साहित्यिको की पूर्ण प्रतिष्ठा न कर पाया, किन्तु उसकी दलीले इतनी सशक्त और ठोस होती थी कि पाठक उसकी बात से प्रभावित हुए बिना नही रह सकता था। इसमे संदेह नही कि उसकी अधिकाश समालोचना मे समझौते के तत्त्व बहुत कम विद्यमान् है, तथापि पढ़ते हुए पाठक को कही भी ऐसा भान नही होता कि जानबूझ कर जबर्दस्ती आलोच्य पर तीखे व्यंग कसे जा रहे है, हा, कही कही उत्तेजना मे उसके प्रहार अत्यन्त प्रखर हो गये है।

लगभग मैथ्यू आर्नल्ड की भाति शुक्लजी मे भी गभीर आत्माभिव्यक्ति और हल्के साहित्य एव साहित्यकारो के प्रति असहिष्णुता का भाव विद्यमान् था। पाश्चात्य साहित्य और सभ्यता के सम्पर्क मे आने के कारण जब हिन्दी-कविता अपने शैशव मे ही सास्कृतिक आदर्शों की अवहेलना कर उच्छृंखलता की ओर लपक रही थी—उस समय शुक्लजी ने आगे बढ कर उस पर नियंत्रण करना आवश्यक समझा। योरोपीय रोमांटिसिज्म के फलस्वरूप कविता मे बढ़ते हुए

मानसिक-व्यभिचार को देखकर वे चौंक पड़े और उन्होंने प्राचीन काव्य-रूप को लक्ष्य में रखते हुए अपनी धारणाओं के अनुरूप सीमा रेखाएं निर्धारित की।

शुक्ल जी साहित्य का जातीयता से अभिन्न सम्बन्ध मानते थे और व्यष्टि की अपेक्षा समष्टि को अधिक महत्व देते थे। 'हिंदी साहित्य के इतिहास' में वे लिखते हैं, जैसा सम्पूर्ण जीवन अर्थ, धर्म काम मोक्ष का साधन है, वैसे ही उसका एक अंग काव्य भी। 'अर्थ का स्थूल और संकुचित अर्थ द्रव्य प्राप्ति ही नहीं लेना चाहिये उसका व्यापक अर्थ लोक की सुख-समृद्धि लेना चाहिये। जीवन के और साधनों की अपेक्षा काव्यानुभाव में विशेषता यह होती है कि वह एक ऐसी रमणीयता के रूप में होता है, जिसमें व्यक्तित्व का लय हो जाता है। बाह्य-जीवन और अन्तर्जीवन की कितनी उच्च भूमियों पर इस रमणीयता का उद्घाटन हुआ है, किसी काव्य की उच्चता और उत्तमता के निर्णय में इसका विचार अवश्य होता आया है और होगा।'

शुक्लजी के अनुसार साहित्य जीवन और जगत् के नाना रूपों और व्यापारों से असम्बद्धत्व के आदर्श को मूर्त करने का प्रयास है। तुलसी जायसी और सूर आदि अमर कलाकारों की कृतियों में एक यही सब से बड़ा सत्य निहित है, जो सबको अपनी ओर आकर्षित कर लेता है। किन्तु इसके विपरीत हिंदी के आधुनिक छायावादी कवि स्थूल सौन्दर्य के अपचय और इस सत्य को भावों की दुरूहता एवं शब्दों की भूल भुलय्या में लपेट देने का प्रयत्न करते हैं अतः शुक्लजी ने ऐसे व्यक्तियों का खुल कर विरोध किया है। हिन्दी साहित्य के इतिहास' में नई धारा' के प्रकरण में वे लिखते हैं कि "कलावाद के प्रसंग में बार-बार आने वाले 'सौन्दर्य शब्द के कारण बहुत से कवि बेचारी स्वर्ग की अप्सराओं को पर लगा कर काहकाफ की परियों या विहिश्त के फरिश्तों की तरह उड़ाते हैं, सौन्दर्य चयन के लिए इन्द्र-धनुषी बादल, उषा, विकच कलिका पराग सौरभ, स्मित आनन अधर-पल्लव इत्यादि बहुत सी सुन्दर और मधुर सामग्री प्रत्येक कविता में जुटाना आवश्यक समझते हैं। स्त्री के नाना अंगों के आरोप के बिना वे प्रकृति के किसी दृश्य के सौन्दर्य की भावना ही नहीं कर सकते। 'कला-कला' की पुकार के कारण योरप में प्रगीत-मुक्तकों (Lyrics) का ही अधिक चलन देख कर यहां भी उसी का जमाना यह बताकर कहा जाने लगा कि अब ऐसी लम्बी कवितायें पढ़ने की किसी को फुरसत कहां, जिनमें कुछ इतिवृत्त भी मिला हुआ हो। अब तो विशुद्ध काव्य की सामग्री जुटाकर सामने रख देनी चाहिये, जो छोटे-छोटे प्रगीत-मुक्तकों

में ही संभव है। इस प्रकार काव्य में जीवन की अनेक परिस्थितियों की ओर ले जाने वाले प्रसगो या आख्यानों की उद्भावना बन्द-सी हो गई।"

प्रसाद, पंत, निराला, महादेवी, और अन्य कतिपय समकालीन कवियों की कविताओं में भाषा-वैचित्र्य, कोमल-पद विन्यास, भावावेश की कृत्रिम व्यंजना और मूर्त्त प्रत्यक्षीकरण से शुक्लजी सदैव असंतुष्ट रहे—हा, जब कभी उनकी काव्यानुभूतिया विस्तृत अर्थभूमि और जीवन के नित्य स्वरूप पर आ टिकी, तब तब उन्होंने उन्हे खूब सराहा और पीठ ठोकी। 'हिन्दी साहित्य के इतिहास' में उन्होने पंत के सम्बन्ध में लिखा, "श्री सुमित्रानंदन पंत ने 'गुंजन' में सौदर्य-चयन से आगे बढ़ जीवन के नित्य स्वरूप पर दृष्टि डाली है; सुख-दु:ख दोनों के साथ अपने हृदय का सामंजस्य किया है और 'जीवन की गति मे भी लय' का अनुभव किया है। बहुत अच्छा होता यदि पंतजी उसी प्रकार जीवन की अनेक परिस्थितियो को नित्यरूप में लेकर अपनी सुन्दर चित्रमयी प्रतिभा को अग्रसर करते, जिस प्रकार उन्होने 'गुंजन और 'युगांत' में किया है।"

मंगलमय आदर्शों को लक्ष्य मे रखते हुए शुक्लजी ने अपनी धारणाओ के अनुरूप प्रसाद की विशेषताओं पर भी दृष्टिपात किया है, यद्यपि उन्हें उनसे कई शिकायतें भी है "स्व० जयशंकर प्रसाद जी अधिकतर तो विरह-वेदना के नाना सजीले शब्द-पथ निकालते तथा लौकिक और आलौकिक प्रणय का मधुगान ही करते रहे, पर इधर 'लहर' मे कुछ ऐतिहासिक वृत्त लेकर छायावाद की चित्रमयी शैली को विस्तृत अर्थ-भूमि पर लेजाने का प्रयास भी उन्होने किया और जगत् के वर्त्तमान् दु:ख-द्वेषपूर्ण मानव-जीवन का अनुभव करके इस 'जले जगत् के वृन्दा-वन बन जाने' की आशा भी प्रकट की तथा 'जीवन के प्रभात' को भी जगाया।"

इसी प्रकार निराला के सम्बन्ध में भी अपने उद्गार व्यक्त करते हुए वे लिखते है, "निराला जी की रचना का क्षेत्र तो पहले से ही कुछ विस्तृत रहा। उन्होने जिस प्रकार 'तुम' और 'मैं' में उस रहस्यमय 'नाद-वेद आकार सार' का गान किया, 'जूही की कली' और 'शेफालिका' मे उन्मद प्रणय-चेष्टाओ के पुष्प-चित्र खड़े किये—उसी प्रकार 'जागरण-वीणा' बजाई; इस जगत् के बीच विधवा की विधुर और करुण-मूर्ति खड़ी की और इधर आकर 'इलाहाबाद के पथ पर' एक दीन स्त्री के माथे पर के श्रम-सीकर दिखाए।" महादेवी की काव्यानुभूतियो को लोकोत्तर स्वीकार करते हुए भी शुक्लजी ने इस बात पर अपना संशय प्रकट

दुरता के गर्भ में जो रूपता भरी है यही
माधुरी ही जीवन की कटुता मिटाती है।"

* * *

"उठल उमड और झूम भी रही है सृष्टि
गुम्फित हमारे साथ किसी गुप्त तार से
तोड़ा था न जिसे अभी खींच अपने को दूर।"

मैथ्यू आर्नल्ड की हृदय-वीणा के मूक-स्वर भी सर्वप्रथम कविता में ही झकृत हुए थे, किन्तु उसकी भावनाये शृंगारिक कवियो की भांति प्रेम के पागल उन्माद से विशृंखल अथवा दुरूह अस्पष्टता मे डूबी हुई नही है। यौवनोचित प्रणयावेगो की हड़बड़ाहट और अनुराग की अरुणिमा से ओत-प्रोत न होकर वे एक बुद्धिवादी विश्लेषक के हृदय की सबल, सशक्त अभिव्यक्ति है, जो जीवन के अंतर्हित सत्य को ढूंढने का मानो प्रयास करती है। कवि की दृष्टि सुषमासिक्त भूमि पर न टिक कर चिन्तनलोक मे भ्रमण करती है और वह मूक सौन्दर्य-स्रष्टा न होकर मानव-द्रष्टा है, जो चिरन्तन भाव-जगत् में पैठ कर अतृप्ति नही परितृप्ति की याचना करता है।

"एक पाठ, ओ प्रकृति! मुझे सीख लेने दे।
केवल एक पाठ, जो तेरी प्रत्येक हवा से ध्वनित होता है।
एकता के सूत्र में लिपटा हुआ दो कर्त्तव्यों का पाठ,
चाहे सारा विश्व ही शान्ति से अनविच्छिन्न इस परेशानी के प्रति
अपना आक्रोश क्यो न व्यक्त करे।"

(" One lesson, Nature, let me learn of thee,
One lesson that in every wind is blown,
One lesson of two duties served in one,
Though the loud world proclaim their enmity—
Of toil unsevered from tranquillity!")

जीवन की यथार्थता से टकरा कर उसे अपनी आत्मा की सत्ता पर पूर्ण आस्था हो गई है और संसार की रमज्ञता मे ऊब कर-वह अन्तर के क्रन्दन मे विलीन होना चाहता है।

शान्ति अच्छी होते हुए भी जीवन की परमोपलब्धि नहीं है। मनुष्य कदाचित उसकी आकांक्षा करता है, किन्तु हमारा यौवन उसमें परितोष नहीं पाता।"

(Calm is not life's crown, though calm is well
'Tis all perhaps that man requires,
But 'tis not what our youth desires.)

[illegible] की भाँति प्रकृति चित्रण भी मैथ्यू आर्नल्ड की कविता की सर्वोपरि विशेषता है। उसने जीवन की प्रतिदिन की चिरपरिचित वस्तुओं का यथातथ्य चित्रण करके उन्हें इस प्रकार सजीव एवं सप्राण बना दिया है कि जिससे उसकी सूक्ष्म दृष्टि एवं आत्मा की एकान्त प्रक्रिया का बोध होता है। 'थाइरसिस' (Thyrsis) में ग्रीष्मऋतु का निम्न चित्रण कितना सुन्दर और भव्य है।

जून के आरम्भ में जब कि वर्ष भर का वासन्तिक उन्माद समाप्त हो गया था और गुलाब के पुष्प विकसित न हुए थे तथा लम्बे-लम्बे दिन भी अभी शुरू न हुए थे, जब कि उद्यान की पगडंडियाँ और तमाम घास में बिछी पृथ्वी मई के लाल-सफेद झड़े पुष्पों और अखरोट के फूलों से आच्छन्न हो गई थी—तब एक आँधी-ग्रस्त प्रातःकाल को मैंने कोयल की विरहाकुल कूक सुनी, जो उद्यान के वृक्ष-समूह को चीरती हुई सनसनाती हवा और मूसलाधार वर्षा के साथ साथ गीले खेत को पार करके आ रही थी और जिसमें ध्वनित होता था—वासन्तिक सौन्दर्य-श्री तो खत्म हो गई अब मैं भी जाती हूँ।

(So, some tempestuous morn in early June,
When the year's primal burst of bloom is o'er,
Before the roses and the longest day—
When garden walks and all the grassy floor
With blossoms red and white of fallen May
And chestnut flowers are strewn—
So have I heard the cuckoo's parting cry,
From the wet field, through the vext garden trees,
Come with the volleying rain and tossing breeze:
The bloom is gone, and with the bloom go I!)

ओ शीघ्र निराश हो जानेवाली ! तू किसलिये जा रही है। अब तो शीघ्र ही मध्य ग्रीष्म की बहार शुरू हुआ चाहती है। शीघ्र ही मोहिनी मधु-कस्तूरी फूलेगी और

चढ़ी होगी। स्वर्ण की पंखुड़ियां-सी उसकी लाल पत्तिया बिखर-बिखर कर हमें मिलेगी। मधुर विलियम पुष्प अपनी प्रिय परिचित सुगन्ध के साथ कोमल वृन्तो की महक को हवा के साथ प्रसारित करेगा। उद्यान-पथ से दूर, जो गुलाब के पुष्प चमक रहे हैं और जालियों पर टंगी माधवी लतायें स्वप्न-विभोर बाग के वृक्षों के नीचे जमा हो जायेंगी। पूर्ण विकसित चन्द्र और श्वेत सान्ध्य-तारा भी अपना प्रकाश इतस्तत. विकीर्ण करेगा।"

(" Too quick despairer, wherefore wilt thou go !
Soon will the high Midsummer pomps come on.
Soon will the musk carnations break and swell,
Soon shall we have gold-dusted snapdragon,
Sweet William with its homely cottage-smell,
And stocks in fragrant blow;
Roses that down the alleys shine afar
And open, jasmine—muffled lattices
And groups under the dreaming garden-trees,
And the full moon, and the white evening-star.")

स्थूल दृष्टि से शुक्लजी और मैथ्यू आर्नल्ड के प्रकृति-चित्रण में साम्य होते हुए भी अन्तर यह है कि शुक्लजी की सहज चेतना केवल ऊपरी सतह को ही छूकर रह जाती है, मैथ्यू आर्नल्ड उसकी तह तक पहुच जाता है। शुक्लजी प्राकृतिक-उपादानो के आतुर प्रेक्षक है, मैथ्यू आर्नल्ड उसके अन्तर्भूत सौन्दर्य का सर्जक भी है। एक केवल प्रकृति से स्थूल सम्बन्ध जोड़ कर उसके मनोरम दृश्यों का अवलोकन कर संतुष्ट हो जाता है, दूसरा उसकी आतमा की असीमता मे अपने अस्तित्व को लय कर देना चाहता है। शुक्लजी का प्रकृति और उसकी प्रत्येक वस्तु से सहज साहचर्य्य-भाव है, वे सहज गरिमा से उनका सौन्दर्योद्‌घाटन करते हैं, किन्तु मैथ्यू आर्नल्ड अपने विषय की गहराई तक पहुंच कर भी प्रकृति की उन सुलभ, अकृत्रिम चेष्टाओ पर दृष्टिपात नही कर पाता, जो शुक्लजी के प्रकृति-चित्रण की विशेपता है।

मैथ्यू आर्नल्ड का काव्य-क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। वह जीवन पर्यन्त कविता लिखता रहा और अनेक समीक्षात्मक पुस्तकों के साथ-साथ 'दि स्ट्रेड रिवलर' ((The Strayed Reveller),"इम्पीडोक्लीज़ ऑन् एट्ना'(Empedocles on Etna,) 'सोहराव एण्ड रुस्तम' (Sohrab and Rustam),'दि स्कॉलर

जिप्सी (The Scholar Gipsy) और मिरोप (Merope) आदि उसके प्रमुख काव्य-ग्रन्थ भी प्रकाशित होते रहे। क्या कविता—क्या गद्य सभी में उसकी अन्तरंग साधना का भव्य समारोह है और वह सत्य टटोलता हुआ-सा कुछ पाना चाहता है। वह दुनिया का स्वार्थी होकर अथवा दूसरों की भावनाओं और मत विश्वासों पर सिर धर जाना नहीं चाहता बल्कि अपने पैरों पर खड़ा होकर कुछ करने का इच्छुक है। कविता में जब उसके अन्तर का औत्सुक्य प्रस्फुटित होकर बहा था—तब भी वह एक सूक्ष्मदर्शी आलोचक था और स्थूल जीवन से ऊपर उठ कर जब उसके विचार चिन्तन के भार से आक्रान्त हो ठोस होकर गद्य में व्यक्त हुए—तब भी वह विश्लेषक बन कर बहुत कुछ समझने-समझाने की चेष्टा करता रहा। कभी कभी संसार से खिन्न कर मैथ्यू आर्नल्ड अपने अन्तरतम विराग की अपनी दुनिया में प्रवेश करता हुआ गहरी सांस भर बैठता है किन्तु कभी भी अपने अहं को अखण्डित रख कर वह दूसरों की अश्रद्धा का पात्र नहीं बनता।

कहने की आवश्यकता नहीं कि शुक्लजी और मैथ्यू आर्नल्ड की विलक्षण प्रतिभा जीवन के चुभते सत्य की प्रखर ज्योति को उद्भासित करने की चेष्टा में सतत संलग्न रही। कला की आत्मा की भावच्छटा में रमते हुए वे दोनों ही साहित्य के सच्चे और सजग प्रहरी हैं और उनकी निर्भीक कर्मनिष्ठता एवं जिज्ञासु आकृति की छाप उनकी अमर कृतियों में इस प्रकार अंकित है कि परवर्ती समालोचकों को वे सतत ही नवीन दिशा की ओर उत्प्रेरित करती रहेंगी।

महादेवी वर्मा और क्रिस्टिना रोज़ेटी

श्री महादेवी वर्मा
जन्म-विक्रम सम्वत १९६४
जन्मस्थान-फर्रुखाबाद
(उत्तर प्रान्त)

क्रिश्टिना रोजेटी
जन्म-ईसवी सन्-
५ दिसम्बर १८३०
मृत्यु-ईसवी सन्-
२९ दिसम्बर १८९४
जन्मस्थान-
शारलाट स्ट्रीट लंदन

"ओरे दुयार खुले देरे—
वाजा शंख वाजा।
गम्भीर राते एसेछ आज
आंधार घरेर राजा।
वज्र डाके शून्य तले
विद्युतेरि झिलिक झले
छिन्न शयन टेने एने
आङिना तोर साजा।
झड़ेर साथे हठात् ऐलो
दुःख रातेर राजा।" (टैगोर)

"ओरे, द्वार खोल दे। शंख नाद कर। गम्भीर रात्रि मे आज अंधेरे घर का राजा आया है। शून्य तल में मेघ भीषण गर्जना कर रहे है। विद्युत् कौंध रही है। विछा दे अपनी टूटी खाट। आज अकस्मात् दु:ख की रात का राजा आंधी-पानी के साथ आ पहुंचा है।"

जिस अज्ञात प्रियतम की अहर्निश बाट जोहती हुई ये कवयित्रिया पलक पावडे विछाए—उन्मन और उदास—उसकी निदारुण विरह-व्यथा में तिल तिल कर जल रही थी—उससे दुर्दिन में हठात् भेट हो गई, किन्तु न जाने किस अपरिचित गन्तव्य को उद्देश्य वना वह निर्मोही प्रणय-बन्धन विच्छिन्न करके अपनी धुवली

की झलक दिखा चला गया और मिलन के प्रथम प्रहर में ही उससे सदैव के लिये विछोह हो गया। वे प्रिय को आँख भर देख भी तो न पाईं।

"इन ललचाई पलकों पर
पहरा जब था व्रीड़ा का,
साम्राज्य मुझे दे डाला
उस चितवन ने पीड़ा का।"

महादेवी और क्रिस्टिना रोज़ेटी की काव्य-साधना बाह्य एवं अन्तश्चेतना का एकीकरण है जिसमें उनकी वैयक्तिक आत्मानुभूति की छाप, कल्पना की कमनीयता और एकान्तिक आत्म-समर्पण की भावना है। उनकी काव्यगत-आत्मा रहस्यमय अन्धकार की निविड़ता में आत्म ज्ञान किन्तु अरूप सौंदर्य की प्रकाश रेखाओं को समेटे छिपाती हुई—उनकी मूक अन्तर्ध्वनि एवं विराट भावनाओं की स्वर-लिपि में अंकित-सी जान पड़ती है, जहाँ प्रणय के मधुर भार से आपन्न विरह आकुलता और हृदय की छटपटाहट आँसुओं की राह बाहर छहर छहर पड़ती है। जीवन की समस्त सुषुप्त स्मृतियाँ जाग्रत होकर मानो पार्थिव अवगुंठन से झाँक उस अपार्थिव सत्य को पा लेने को आकुल हैं जो बाहर भीतर ऊपर-नीचे सौन्दर्य-श्री से जगमगा रहा है किन्तु जिसमें आत्म-साधना और स्वानुभूतिमय की सात्विक-दीप्ति न होकर आत्मिक वेदना का समावेश होने से हृदय-पक्ष से भी अधिक मानसिक-पक्ष की प्रधानता है। महादेवी और क्रिस्टिना के काव्य में जो भावों की उत्कट तीव्रता, मर्मान्तक वेदना और अन्तर का हाहाकार व्यक्त हुआ है—वह अलौकिक अथवा आध्यात्मिक विरह-गर्भित न होकर लौकिक प्रणय की सहजानुभूति से उद्भूत हुआ है और काल्पनिक आवरण में लिपट कर उत्तरोत्तर रहस्यपूर्ण और अचिन्त्य होता गया है। इन दोनों कवयित्रियों के हृदय निरन्तर किसी अभाव का अनुभव करते हैं और उस खोई हुई वस्तु की खोज में भटक रहे हैं जिसके सामीप्य से उनके निस्तब्ध भाव संगीत के स्वर में मुखरित होकर आनन्द की सरस सृष्टि कर सकते हैं।

"जो तुम आ जाते एक बार !
कितनी करुणा कितने संदेश
पथ में बिछ जाते बन पराग,

गाता प्राणों का तार-तार
अनुराग-भरा उन्माद - राग;
आंसू लेते वे पद पखार।
हंस उठते पल में आर्द्र नयन,
घुल जाता ओठों से विषाद,
छा जाता जीवन में बसन्त--
लुट जाता चिर-संचित विराग;
आंखें देती सर्वस्व वार।"

जीवन-झांकी

महादेवी और क्रिस्टिना के जीवन पर दृष्टिपात करने से एक बात सहज ही द्रष्टव्य है कि उनका काव्य, वास्तव मे, उनके व्यक्तिगत जीवन मे घटित घटनाओं का प्रतिविम्ब है। माता-पिता की स्नेहच्छाया मे अबोध शैशव विता कर जीवन की कठोर वास्तविकता जब उनकी बुद्धि के सयानेपन से आ टकराई तो अनमिल भावनाओं के कारण दो भिन्न हृदय प्रेम-सूत्र में न बंध सके और तभी से उनके मानस में नीरवता, वेचैनी और धुंधलेपन की छाया परिव्याप्त हो गई। यौवन के तूफानी क्षणों में जब उनका अल्हड़ हृदय किसी प्रणयी के स्वागत को मचल रहा था और जीवन-गगन के रक्ताभ-पट पर स्नेह ज्योत्स्ना छिटकी पड़ रही थी तभी अकस्मात् विफल प्रेम की धूप खिलखिला पड़ी और पुलकते प्राणों की धूमिलता में अस्पष्ट रेखाये सी अंकित कर गई। आत्म-संयम का व्रत लिये हुए उन्होंने जिस लौकिक प्रेम को ठुकरा कर पीड़ा को गले लगाया-वह कालान्तर मे आन्तरिक शीतलता से स्नात होकर बहुत कुछ निखर तो गई, किन्तु उनके हठीले मन का उससे कभी लगाव न छूटा और वे उसे निरन्तर कलेजे से चिपटाये रखने की मानों हठ पकड़ बैठी।

"पर शेष नहीं होगी यह
मेरे प्राणों की क्रीड़ा,
तुमको पीड़ा में ढूंढा,
तुम में ढूंढूंगी पीड़ा।"

जिस प्रकार महादेवी की आत्म-साधना और गम्भीर-चिन्तन की एकरसता विवाह से भंग न हुई, उसी प्रकार क्रिस्टिना की जीवन-धारा भी

प्रतिकूल परिस्थितियों की चट्टानों से टकरा कर कभी निश्चित मर्यादा का उल्लंघन न करने पाई और उसकी अन्तर्मुखी प्रवृत्तियाँ अधिकाधिक व्यापक होकर अग्रसर होती रहीं। एकान्त चिन्तनरत घर के किसी कुंज-कक्ष में बैठ कर जब वह अपनी सुन्दर कोमल उंगलियों से कुछ बुनती होती और उसकी भोली निरीह दृष्टि दूर कुछ खोजती हुई सी क्षितिज के अन्तपट पर जा अटकती तो उसका रूप अत्यन्त आकर्षक हो जाता। इसी स्थिति में कौलिंसन ने सर्वप्रथम उसे देखा था और वह तत्क्षण ही उसकी आकर्षक भावभंगिमा पर मुग्ध हो उठा था। क्रिस्टिना उस समय अठारह वर्ष की थी और यद्यपि वह भी अपने बड़े भाई डी० जी० रासेटी के मित्र जेम्स कौलिंसन से प्रभावित हुए बिना न रही थी तथापि धार्मिक विचारों और आध्यात्मिक प्रवृत्ति की होने के कारण उसने इस स्वतन्त्र विचारों के नवयुवक से विवाह-सम्बन्ध अस्वीकार कर दिया था। इससे खिन्न होकर कौलिंसन ने अपना अधिकांश समय भगवद्-आराधना में व्यतीत करना प्रारम्भ कर दिया और फल स्वरूप क्रिस्टिना को बाध्य होकर विवाह के लिये उसे अपनी स्वीकृति देनी पड़ी।

उस समय क्रिस्टिना की लिखी हुई स्फुट कविताओं में जो भाव व्यक्त हुए हैं उनमें लौकिक प्रेम से परे किसी दूरस्थ वस्तु को पाने की अतृप्त कामना है, जो वह स्वयं बताने और समझने में असमर्थ है। कौलिंसन के मिलन से पूर्व एक और प्रणय घटना क्रिस्टिना के जीवन में घट चुकी थी जिसकी याद वह जीवन-पर्यन्त न भुला सकी और जो रह रह कर उसके हृदय में एक मधुर टीस सी जगा जाती थी। अपने अध्ययन काल में जब कि वह अत्यन्त छोटी थी और अपने भाई के साथ वृद्ध पिता के तत्वावधान में पढ़ती थी तो चार्ल्स केले नाम का एक गम्भीर प्रतिभा सम्पन्न युवक भी वहाँ पढ़ने के लिये प्रतिदिन आया करता था, जो अत्यन्त विनम्र और चिन्तनशील प्रवृत्ति का होने के कारण क्रिस्टिना का उपयुक्त जीवन सहचर हो सकता था। क्रिस्टिना से उसकी मित्रता बढ़ती गई और वृद्ध पिता की मृत्यु के पश्चात तो यह मित्रता प्रगाढ़ प्रेम में परिवर्तित हो गई, किन्तु धार्मिक विचारों में समानता न होने के कारण वह उसे पतिरूप में वरण न कर सकी।

कदाचित् अपने व्यथित मन को शान्त करने और हृदय के घाव को भरने के लिये ही क्रिस्टिना ने कौलिंसन से विवाह-सम्बन्ध स्वीकार किया था किन्तु जो प्राथमिक प्रेम की असफलता का करुण क्रन्दन उसके अन्तर में समा गया था वह कभी मिट न पाया और निराशा की गहनता में ज्वलित व्यथा की गाथा उस प्रेम की

शीतलता प्रदान न कर सकी। मृत्यु की-सी छाया उसके समस्त जीवन को आच्छन्न किये रही और कौलिसन से सम्बन्ध स्थापित होने के बावजूद भी जो उसने कवितायें लिखी—वे उसके लिये न होकर प्रथम प्रणयी को लक्ष्य मे रख कर ही लिखी गई।

"मेरी अकाक्षा है कि मै उस प्रथम दिन, प्रथम घडी और प्रथम क्षण को याद रख सकती जबकि तुम मुझे मिले थे। क्या ही अच्छा होता यदि मै बता सकती कि उस समय मौसम कैसा था—सुहावना या उदास और शीत पड़ रहा था अथवा गर्मी, किन्तु वह तो अनबूझे ही विस्मृति के गर्त मे समा गया। मैं तब वर्तमान् और भविष्य की ओर देखने मे कैसी अधी थी और अपने भाग्य-वृक्ष के प्रस्फुटन को लक्ष्य रखने मे कैसी मन्दबुद्धि, जो न जाने कितने ही मई-मासो मे भी पल्लवित न हो सकता था।"

("I wish I could remember that first day,
First hour, first moment, of your meeting me,
If bright or dim the season, it might be
Summer or Winter for aught that I can say;
So unrecorded did it slip away,
So blind was I to see and to foresee,
So dull to mark the budding of my tree
That would not blossom yet for many a May.")

कौलिसन से सम्बन्ध स्थापित होने के बाद दो-तीन महीने तक क्रिस्टिना का पत्र-व्यवहार उससे होता रहा और वह अपने मन को किसी प्रकार बहलाती रही। अगस्त मास में वह कौलिसन की माता और बहिन से मिलने के लिये प्लीज़ले-हिल गई, किन्तु वहां के उच्छृंखल वातावरण, आमोद-प्रमोद और छिछली हंसी-मजाक मे उसका चित्त न रमा। प्लीजले से अपने चचेरे भाई विलियम माइकेल को एक पत्र में उसने लिखा, "यहा का प्रवास बहुत बुरा नही है, तो भी पोस्टमैन का आना यहां के जीवन मे एक घटना है। कभी कभी शोर-गुल से ऊब कर मैं एकान्त मे कुर्सी बिछा कर बैठ जाती हूं और उन दिवा-स्वप्नो मे विभोर हो जाती हूं, जो नीरव भाषा मे चुपचाप मेरे कानो मे कुछ कह जाते है।" इग्लैंड लौट आने पर कौलिसन से क्रिस्टिना का पत्र-व्यवहार बिल्कुल बन्द हो गया और विलियम माइकेल को एक दिन बातो के सिलसिले मे उसने बताया कि धार्मिक मामले मे कौलिसन अपने विचारों को कभी नहीं बदल सकता, अतः उससे विवाह न करने का उसने निश्चय किया है।

बहुत सम्भव है ज्ञात अथवा अज्ञात रूप से कौलिन्सन ने क्रिस्टिना के मन को आकृष्ट किया हो और उससे विवाह करने की इच्छा के मूल में मा के टूटे सपनों को पुन साकार देखने की भावना उसके हृदय के किसी अज्ञात कोने में अन्तर्निहित हो, किन्तु इसमें किंचित भी सन्देह नहीं कि जो सांघातिक चोट उसे अपने प्रथम प्रणय के अवसर पर लग चुकी थी, उसकी पीड़ा कभी कम न हुई और जीवन के स्वर्णिम स्वप्न जो असमय में ही दुर्भाग्य के ववण्डर से मिट्टी के घरौंदा के समान धराशायी हो चुके थे वे उसे इतना बीरान और सूना बना गये कि वह उनकी मिथ्या कल्पना में भी विभोर न हो सकी।

११ सितम्बर सन् १८६६ को क्रिस्टिना ने चार्ल्स केले को लिखा था 'निसन्देह जो कुछ हुआ है-उसके लिये म स्वय पश्चात्ताप कर रही हू, किन्तु मुझे यह जान कर सन्तोष है कि जिस स्नेह के म सर्वथा अयोग्य हू—उसका प्रतिदान मुझे अनायास ही मिल रहा है।'

क्रिस्टिना के निवासस्थान अथवा विलियम माइकेल के यहा केले उससे मिलने के लिये प्राय आया करता था और कभी कभी अत्यन्त सभीत एव सहमा हुआ सा कोई प्रणय-उपहार अथवा उस पर लिखी हुई अपनी कोई कविता दे जाता था। क्रिस्टिना ने भी केले को सम्बोधित करके अनेक कवितायें लिखी हैं, जिनमें उसका प्रणयोन्माद उभर उभर कर व्यक्त हुआ है।

"म तुम्हें प्यार करती हूं और इस अपनी समस्त वेदना के बावजूद मुझे यह जान कर प्रसन्नता है कि तुम इस बात से कम से कम अवगत तो हो।

तुम इस बात को भली भांति जानते हो और इस पर कभी सदेह नहीं कर सकते।

प्रेम अपने आपका चिर साक्ष्य है।

— मेरी खाई हुई शपथ अथवा धर्म पिता का अभिनन्दन मेरे प्रेम को अधिक सुस्पष्ट या अविचल घोषित नहीं कर सकता।

ओ म्लान चन्द्र! जो क्रमश घटता और बढ़ता है, जीवन के क्षय का क्रम भी ता यही है और जब परिभ्रान्त आह्लाद की अवज्ञा कर प्रेम अपने पख फड़फड़ा कर ऊपर उड़ जाता है तो हम उसकी शांत धड़कन भी बहुत कम महसूस कर पाते हैं।

प्रिय मित्र ! हमें चिर शान्ति में सो जाना चाहिये, कुछ क्षण में ही आयु और क्लेश मिट जायेंगे और थोड़ी देर बाद ही प्रेम पुनर्जीवित होकर नष्ट हो जायेगा।

जीवन, क्षय और मृत्यु, पुन. सब कुछ प्रेम ही प्रेम तो है।"

(" I love you, and you know it—at least,
This comfort is mine own in all my pain ;
You know it, and can never doubt again ,
And Love's mere self is a continual feast.
No oath of mine or blessing word of priest
Could make my love more certain or more plain.
O weary moon, still rounding, still decreased !
Life wanes ; and when love folds his wings above
Tired joy and less we feel his conscious pulse,
Let us go fall asleep, dear friend, in peace ;
A little while, and age and sorrow cease,
A little while, and love reborn annuls
Life and decay and death, and all is love. ")

सन् १८८३ मे ५ दिसम्बर की रात्रि को, जिस दिन दुर्भाग्य से क्रिस्टिना का जन्मोत्सव था, अचानक केले की मृत्यु हो गई। क्रिस्टिना ने जब यह दु खद समाचार सुना तो वह तत्काल विलियम माइकेल को सूचित करने के लिये सोमरसेट हाउस गई। विलियम माइकेल ने लिखा है,"उसकी कातर दृष्टि और अन्तर के नीरव क्रन्दन से क्लान्त मुख का पीलापन कभी भुलाया नही जा सकता। उसके प्राण भीतर ही भीतर खिचे जा रहे थे, किन्तु बाहर आह तक न निकलती थी और यह वस्तुत: उसके गम्भीर स्वभाव के अनुरूप ही था।" इसके बाद वह केले के घर गई। अन्तिम बार उसने उसकी निश्चेष्ट मुखमुद्रा को सजल नेत्रों मे देखा, जिसके ओठों की मुस्कराहट क्रूर मृत्यु द्वारा अपहृत की गई थी और उसने अपने प्रणयी के उन निर्जीव हाथों पर श्वेत पुष्प रख दिये, जो उसके हाथों को पकड कर अब जीवन मे कभी अपना न बना सकते थे।

केले ने अपनी वसीयत मे, जो सात महीने पूर्व तैयार की गई थी, अपनी वृहद् लाइब्रेरी, लिखने का डेस्क और होमर, पेट्रार्क आदि के अनुवाद क्रिस्टिना को भेंट किये थे और उन सजीव स्मृति-चिन्हों को पाकर वह आनन्द-विह्वल हो उठी

थी। केरो की मृत्यु के पश्चात् वह ग्यारह वर्ष तक जीवित रहा और इसमें सन्देह नहीं कि वह उसकी याद को कभी भुला न सकी। मरते हुए विलियम माइकल से वह उसके सम्बन्ध में बहुत देर तक बातें करती रही और मृत्यु के शिथिल उदास क्षणों में अतीत स्मृतियों के उभरने के साथ-साथ अनुताप भरी आत्म प्रतारणा की भावना भी उसमें जगी कि क्यों पहले तो उसे को उसने प्रोत्साहित किया और फिर विवाह की स्वीकृति न देकर क्यों उसके जीवन का अन्त कर दिया। केरो की मृत्यु के पश्चात् क्रिस्टिना की लिखी हुई निम्न पंक्तियां उसके अन्तर्दाह को व्यक्त करती हैं।

"पुष्पों और काटों की बिना परवाह किये
एक क्लान्त-मन कृषक अपने संचित अनाज के मध्य विश्राम कर रहा है।
कदाचित प्रातःकाल तक मेरी भी यही स्थिति हो।
* * * *
दिसम्बर के ठिठुरते शीत की भांति शिथिल
गये और बीते दिनों की भांति विस्मृत,
जबकि यह केवल एक की स्मृति में बसा है।
और बाकी सब उसे भूल गये हैं।
केवल एक ही उसे अभी तक याद रखता है।'

(Unmindful of the roses,
Unmindful of the thorn
A reaper tired reposes
Among his gathered corn
So might I till the morn!
Cold as the cold Decembers
Past as the days that set
While only one remembers
And all the rest forget—
But one remembers yet)

आसक्ति और विरक्ति

कहने की आवश्यकता नहीं कि महादेवी और क्रिस्टिना के दिल के अरमान, जो परिस्थितियों के मरुस्थल में झुलस कर क्षारवत् हो गये थे—उनके हृदय में यन्त्रणा की ज्वाला धधका गये और जीवन की सुख शान्ति एवं सहज भाग्य को

अभावों की झोली मे भर न जाने कहां छिप गये। निराश आशा की अन्तिम दवा वैराग्यपूर्ण निर्वेद की घूट पीकर उनकी प्यार की मधुरिमा साधना की कठोरता में परिणत हो गई। एक ओर उनमें विरक्ति की अचिन्त्य भावना जगी और दूसरी ओर जीवन के बिखरे हुए मधुकणो को बटोर लेने की अतृप्त लालसा। उनके अन्तस्तल की अस्पष्ट स्वर-लहरी में अन्यमनस्कता व्याप्त हो गई और प्रिय-वियोग की दुस्सह व्यथा भीतर ही भीतर न समाकर बाहर भी श्वासो की राह सिहर सिहर पड़ी।

"कसक-कसक उठती सुधि किसकी
रुकती सी गति क्यों जीवन की
क्यो अभाव छाए लेता विस्मृति सरिता के कूल ?"

महादेवी की उपर्युक्त पंक्तियो मे अन्तर की पीडा मेघाच्छन्न सघनता सी अपने मे ही पुंजीभूत जान पडती है। जब भावों के आवेग हृदय के तारो को हिला जाते है तो भूले हुए स्नेह की स्मृतिया अस्पष्ट स्वरों मे झंकृत होकर असह्य वेदना और व्याकुलता की निश्छल कहानी-सी कह जाती है और जब हृदय का अभाव भाव से भर कर पूर्ण होना चाहता है तो आकाक्षा, विह्वलता और अपने आपको न्योछावर कर देने की उन्मत्त भावना उनके मन मे जग जाती है।

"मै पलकों में पाल रही हूं यह सपना सुकुमार किसी का।
जाने क्यों कहता है कोई,
मै तम की उलझन में खोई,
धूममयी वीथी वीथी में
लुक-छिप कर विद्युत्-सी रोई
मै कण कण में ढाल रही अलि आंसू के मिस प्यार किसी का!
पुतली ने आकाश चुराया,
उर ने विद्युत्-लोक छिपाया,
अंगराग सी है अंगों में
सीमाहीन उसी की छाया
अपने तन पर भाता है अलि जाने क्यों शृंगार किसी का!
मै कैसे उलझूं इति अथ में,
गति मेरी संसृति है पथ में,

बनता है इतिहास मिलन का,
प्यास भरे अभिसार अश्रु में
मेरे प्रति पग पर बसता जाता सूना संसार किसी का!"

मन में चिर अशान्ति और जीवन की अपूर्णता का कटु अनुभव लेकर महादेवी और क्रिस्टिना जीवन की व्यापक चेतनाओं के प्रति सजग हैं और उनकी बुद्धि अपनी भीतरी अभिव्यक्ति को संवारने में सतत सचेष्ट रहती है। क्रिस्टिना जिस प्रणयी के लिये इतनी पीड़ा सह रही है—वह स्वयं भी उसके प्रेम में छटपटा रहा है और ऐसे हठीले साजन की पीड़ा से सहज ही छुटकारा पाना सम्भव नहीं है। एक बार प्रेम की साधना स्वीकार करने पर भी वह प्रेमी के हठ की अवहेलना करती है और अपने जी को जलाने वाली नारी की निर्मम ममता में लपेट उसकी दयनीय स्थिति पर संवेदना प्रकट करती है।

"तब मैं उस पर जोर से चिल्लाई—
ठहरो मुझे शांति से रहने दो,
इस बात से न डरो कि मैं तुमसे कुछ चाहूंगी,
मुझे शान्ति से रहने दो और अधिक तंग न करो—
ऐसा न हो कि मैं भाग कर तुम्हारा पीछा करूं और तुम्हें दरवाजे से बाहर कर दूं।
क्या तुम कभी मेरी जान न छोड़ोगे, जो अभी तक मुझे परेशान करते हो?

* * * *

किन्तु सारी रात वह स्वर गिड़गिड़ाता रहा 'किवाड़ खोल दे।'
बार बार उसका स्वर मेरे कानों से आ टकराता था, 'उठ, मुझे अंदर आने दे।'
अश्रुसिक्त वाणी में वह मेरी अभ्यर्थना कर रहा था—
'मेरे लिये द्वार खोल दे, जिससे मैं तेरे पास आजाऊं।'
जबकि ओसकण बिखर गये थे और मध्य रात्रि की सघनता शीत का जामा पहने थी तब सुन पड़ा—
'मेरे परों से रक्त बह रहा है मेरा मुंह देख।
देख, मेरे हाथ, जो तुझे सुख पहुंचाना चाहते हैं खून से लथपथ हैं।

मेरा हृदय तेरे लिये खून के आंसू बहा रहा है,
द्वार खोल दे।'

* * * *

इसी प्रकार पौ फटने तक सुनाई पड़ता रहा;
फिर निस्तब्धता छा गई।
वह स्वर दुःखावेग से द्रवित हो मानों चुप हो गया,
तब उसके पदचाप की प्रतिध्वनि भी करुण उच्छ्वास-सी मेरे पास से गुज़री,
वे पदचाप ठहर ठहर कर पड़ते थे, जो उसकी मंद-गति के द्योतक थे।
प्रातःकाल होने पर
मैंने घास पर देखा कि प्रत्येक पैर का निशान खून से अंकित है।
और मेरे द्वार पर रक्त के चिन्ह अमिट रूप से चिन्हित हो गये हैं।"

(" Then I cried upon him ; Cease,
Leave me in peace ;
Fear not that I should crave
Aught thou mayst have.
Leave me in peace, yea trouble me no more
Lest I arise and chase thee from my door.
What, shall I not be-let
Alone, that thou dost vex me yet?

* * * *

But all night long that voice spake urgently :
'Open to me'.
Still harping in mine ears :
'Rise, let me in?'
Pleading with tears :
'Open to me, that I may come to thee.'
While the dew dropped, while the dark hours were cold :
'My feet bleed, see My Face,
See my hands bleed that bring thee grace,

My heart doth *bleed* for *thee*,
Open to me

*　　　*　　　*　　　*

So till the break
Then died away
That voice in silence as of sorrow
Then footsteps echoing like a sigh
Passed me by
Lingering footsteps slow to pass
On the morrow
I saw upon the grass
Each *footprint marked in* blood and on *my* door
The mark of blood for evermore)

अविराम साधना में लीन जीवन के दीप-पथ को अपने आंसुओं से अहर्निश धोती हुई वह आसक्त होकर भी अनासक्त है और अपने स्व को मिटा कर भी अपने कर्तव्य को भूली नहीं है।

'विगत रात्रि को मैंने एक स्वप्न देखा,
तब न अंधेरा था और न प्रकाश
शीतल ओसकणों ने मेरे सघन बालों को भिगो कर धूल धूसरित कर दिया था।
तुम मुझे वहां ढूंढने आये और तुमने कहा 'क्या तुम मेरा स्वप्न देख रही हो ?'
मेरा हृदय जो तुम्हें देख कर उछल पड़ता था, अब मिट्टी हो चुका था।
मैंने उनींदे स्वर में उत्तर दिया,
'मेरा तकिया गीला है, मेरी चादर बदरंग है और मेरा बिस्तर पत्थर सा सख्त है।
तुम किसी और कृपालु साथी की खोज करो, जो तुम्हारे सिर के लिये कोमल तकिया दे सके और मेरे से अधिक संवेदना मिश्रित प्रेम प्रदान कर सके।'
तुम हाथ मलते रहे, जबकि मैं कठोर धातु सी दलदली जमीन में धसती रही।

तुमने हाथों को बजाया, किन्तु खुशी में नहीं
तुम घिरनी की तरह घूमे, किन्तु तुम शराब के नशे में न थे।
मैं सारी रात तुम्हारा स्वप्न देखती रही;
मेरी आंखें खुल गईं और मैंने अनिच्छा पूर्वक प्रार्थना की,
जब पुनः नींद आई तो तुम्हें फिर स्वप्न में देखा—
अन्ततः मैं उठ बैठी और मैंने घुटनों के बल बैठकर भगवान् से प्रार्थना की।
जो शब्द मैंने उस समय कहे-वह मैं लिख नहीं सकती,
मेरे शब्द धीमे थे, मेरे अश्रु सूख गये थे,
किन्तु अन्धकार में मेरी नीरवता वज्र की तरह कड़क उठी।
जब प्रातःकाल हुआ तो मेरा मुंह लटक गया था,
मेरे बाल सफेद हो गये थे और द्वार के प्रस्तर-खंड पर खून जम गया था, जिसमें सनी हुई मैं लथपथ पड़ी थी।"

("I dreamed last night.
It was not dark, it was not light,
Cold dews had drenched my plenteous hair
Through clay; you came to seek me there,
And 'Do you dream of me?' you said.
My heart was dust that used to leap
To you; I answered half asleep;
'My pillow is damp, my sheets are red,
There's a leaden tester to my bed;
Find you a warmer playfellow,
A warmer pillow for your head,
A kinder love to love than mine.'
You wrung your hands; while I, like lead,
Crushed downwards through the sodden earth;
You smote your hands but not in mirth,
And reeled but were not drunk with wine.
For all night long I dreamed of you;
I woke and prayed against my will,
Then slept to dream of you again.
At length I rose and knelt and prayed.
I cannot write the words I said,

My words were slow, my tears were few
But through the dark my silence spoke
Like thunder. When this morning broke,
My face was pinched, my hair was grey
And frozen blood was on the sill
Where stifling in my struggle I lay!)

महादेवी और क्रिस्टिना की एकान्त साधना में आत्म-समर्पण और कर्तव्य का उच्च आदर्श होते हुए भी वैयक्तिक वासनाओं के दमन का भ्रम नहीं है, प्रत्युत पूर्वानुभूत सुखों की स्मृति और उद्दाम यौवन उनके धैर्य और संयम के बांध को तोड़ कर उन्हें अशान्त सा बना जाता है और प्रिय के सामीप्य के लिये उनका हृदय मचल-मचल पड़ता है।

"सजनि कौन तम में परिचित सा सुधि सा, छाया सा, आता ?
सूने में सस्मित चितवन से जीवन दीप जला जाता !
छू स्मृतियों के बाल जगाता,
मूक वेदनायें दुलराता,
हृत्तन्त्री में स्वर भर जाता,
बन्द दृगों में चूम सजल सपनों के चित्र बना जाता !"

जीवन का उन्मुक्त रूप अपना कर और प्रेमी के प्रति निर्मम बन कर भी क्रिस्टिना भावातिरेक में अत्यन्त दीन हो जाती है और अपनी सुध-बुध खोकर उसके दर्शन के लिये विकल हो उठती है।

'मेरे पास वापिस चले आओ, जो तुम्हारी प्रतीक्षा करती हुई
पथ में आँखें बिछाये हूँ।
अथवा न आओगे? क्योंकि सब कुछ समाप्त हो जायेगा,
तुम्हारे न आने की लम्बी अवधि में कुछ भी सुख न पा सकूँगी।
जब तक कि तुम नहीं आ रहे हो जो करना है सो करूँगी
यह सोचकर कि 'वह कब आवेगा ?' मेरे प्राण ! 'कब',
क्योंकि सब ध्वनियों में केवल एक ध्वनि ही मेरी दुनिया है--
इस विस्तृत भूखंड में ओ प्रिय ! केवल तुम्हीं से मेरा संसार
बसा है।

जैसे तैसे तुमसे मिल कर भी मेरे हृदय में हूक सी उठती है—
क्योंकि मिलते ही तुमसे शीघ्र बिछुड़ने की व्यथा मुझे सताने लगती है।
अपने परस्पर सम्मिलन के स्वर्गीय दिनों का स्मरण कर, मेरी आशा चन्द्रमा की भांति घटती और बढ़ती हुई असमंजस में अटकी है।
ओ मेरे! बताओ न? वे गीत अब कहां है, जो कि मै उन दिनों गाती थी जबकि जीवन मधुर था, क्योंकि तुम स्वयं भी उन्हें मधुर कहते थे।"

("Come back to me, who wait and watch for you:—
Or come not yet, for it is over then,
And long it is before you come again,
So far between my pleasures are and few.
While, when you come not, what I do I do
Thinking 'Now when he comes,' my sweetest 'when':
For one man is my world of all the men
This wide world holds; O love, my world is you.
Howbeit, to meet you grows almost a pang
Because the pang of parting comes so soon;
My hope hangs waning, waxing, like a moon
Between the heavenly days on which we meet:
Ah me, but where are now the songs I sang
When life was sweet because you called them sweet?")

भाव-जगत्

महादेवी और क्रिस्टिना के अन्तस्तल की गहराई से निस्सृत गीतों मे जो निर्व्यक्त भाव व्यक्त हुए है—वे छाया के सदृश धुधले और रहस्य के सदृश अदृष्ट जान पड़ते है। वस्तुत. उनका हृदय और जीवन स्वयं एक अबूझ पहेली है, जिससे वे अपने आपको ठीक-ठीक नही समझ पाती और न अपने भाव-सकेतों को दूसरों को सरलता से समझाने मे समर्थ ही हो पाती है। बाह्य-जीवन के घात-प्रतिघात से टकरा कर उनकी भाव-मदाकिनी शत-शत धाराओं मे उच्छल होकर दूसरों की मृदु-मधुर भावनाओ को थपकी दे दे कर गुदगुदा तो देती है, किन्तु उनके अन्तरतम प्रदेश मे उतर नही पाती। कहना न होगा—दोनो कवयित्रियो का जीवन स्वनिर्मित

विश्वासों और भावनाओं के व्यवधान में बन्दी है। एक ओर वैराग्य-मिश्रित हल्की प्रतिध्वनि उठती है, दूसरी ओर क्रूर नियति के प्रति विवशता का क्रन्दन। कहीं प्रेम-शृंखलाओं में जकड़े मनुष्य की सी बाध्यता है, कहीं दारुण दुःख और क्लेशों से विरत होकर अन्तश्चेतना की विश्वासमय निश्चय गति। उनके हृदय में व्यथा की घनाटोप सघनता है जिसे वे अपनी आत्मिक-शक्ति और उद्दीप्त आत्म-चेतना से विच्छिन्न करके अचिन्त्य आकार में भरना चाहती हैं। कभी दीन-हीन और खोई सी वेदना में डूब जाती हैं—कभी गर्वीले स्वाभिमान से सजग होकर वे लौकिक प्रेम की अवज्ञा करती हुई अलौकिक भाव जगत् में उठने का प्रयास करती हैं।

महादेवी की आन्तरिक अनुभूतियाँ सूक्ष्म और कोमल हैं। उनके अन्तर में दुःख नहीं मूक अन्तर्व्यथा है, तीक्ष्णता और आवेग नहीं, मधुर व्यञ्जना है। प्रारम्भ से ही चिन्तनशील प्रवृत्ति की होने के कारण उन्होंने हृदय की कोमल भावनाओं को हल्के हाथों से स्पर्श करके सहलाना सीखा है और उनकी कल्पना का वैभव आत्म-विश्वास एवं निर्विकार दृष्टि-निक्षेप उन्मिल-वृत्तियों को जगा कर उनकी अपरिमेय सूक्ष्म-दर्शिता का परिचय दे जाता है।

"दीप मेरे जल अकम्पित,
घुल अचंचल!
सिन्धु का उच्छ्वास घन है,
तड़ित्, तम का विकल मन है,
भीति क्या नभ है व्यथा का
आँसुओं से सिक्त अंचल!
स्वर प्रकम्पित कर दिशायें,
मीड़ सब भू की शिरायें
गा रहे आँधी-प्रलय
तेरे लिये ही आज मंगल!
मोह क्या निशि के वरों का,
शलभ के झुलसे परों का
साथ अक्षय ज्वाल का
तू ले चला अनमोल सम्बल!
पथ न भूले, एक पग भी,
घर न खोये लघु विहग भी

स्निग्ध लौ की तूलिका से
आंक सबकी छाँह उज्ज्वल !"

महादेवी की संवेदना इतनी तीव्र है कि जहा कोई भावना उनके अन्तर में जगी कि उन्होंने अपने कलामय पाश में आवद्ध कर लिया। वातायन के से सौरभश्लथ उच्छ्वास उमड़ उमड़ कर समस्त वातावरण मे मधुर सिहरन-सी जगा जाते हैं। कही कसक अधिक गहरी है, कही प्रणय-प्रकम्पित हृदय की धडकन; कही शिशु का सा सारल्य है और कही हठीली प्रेमिका का गर्वीला दम्भ। उनकी अन्तर्दृष्टि सूक्ष्मतम रहस्यो के अन्तर मे प्रवेश कर जाती है। इन्द्रधनुप के से विविध-रंग कुछ धूमिल से घूंघट-पट से झाकते हुए तुहिन-कणो की सी आभा विखेर जाते है और गीतों की छाँह से करुणा-विगलित भाव जलते हुए दीपक की मद लौ के सदृश मुस्कराते से प्रतीत होते हैं। किन्तु इसके विपरीत क्रिस्टिना के काव्य में जो अंधड़ की सी दुर्दमनीय प्रचण्डता है—वह उसकी कोमल-भावनाओ को दवा कर उसे भी अपने वेग मे मानों साथ उड़ाये ले जा रही है।

"प्राण-शक्ति और प्रकाश लुप्त होने से मेरे जीवन का मध्यान्ह
बीत गया।
आनन्द-वेला समाप्त हो गई, सदैव के लिये चली गई।
जब दिन अवशेष था तभी सूर्य छिप गया और मेरे लिये रात्रि
की चिर-सघतना छोड़ गया।
हे प्रभु ! कव तक, कितने दिनों तक इस निराश पीड़ा को
पालती रहू ?
क्या मैं रोती रहूं और प्रतीक्षा करती रहूं ?
क्या चिरकाल तक आंसू वहाती हुई इसी प्रकार मर मिटूं ?
क्या तेरी कृपा नष्ट हो गई ? क्या तेरा प्रेम मेरे लिये विनष्ट
हो गया ?
कितने दिनों तक मैं व्यर्थ ही इच्छा कर करके मरूं ?"

("My noon is ended, abolished from life and light,
My noon is ended, ended and done away,
My sun went down in the hours that still were day,
And my lingering day is night.

How long O Lord how long in my desperate pain
 Shall I weep and watch shall I weep and long for Thee?
Is Thy grace ended Thy love cut from me?
 How long shall I long in vain ( )

महादेवी अपनी अभिव्यक्तियों में उस सतह पर पहुँच गई हैं जहाँ सम्पाती केवल स्वर उन्हें प्रतिध्वनित नहीं कर पाते। उन्हें पीड़ा भी प्रिय है और विरहाग्नि भी जला कर शीतलता प्रदान करती है। प्रिय की दी हुई पीड़ा होने के कारण वे अपने सर मिटने के अधिकार को खोना नहीं चाहतीं।

"क्या अमरों का लोक मिलेगा
 तेरी करुणा का उपहार ?
रहने दो हे देव ! अरे
 यह मेरा मिटने का अधिकार !"

वे प्रणय के स्वप्निल संसार में विचरण करती हुई अतृप्ति को अधिक महत्त्व देती हैं।

"मेरे छोटे जीवन में
 देना न तृप्ति का कण भर,
रहने दो प्यासी आँखें
 भरती आँसू के सागर।"

किन्तु त्रिस्मिता के हृदय के संघात में जो करुणा-स्रोत चोटों से बिंध कर फूटे हैं—उनमें एकात्म भाव स्थापित करने के लिये उसकी अन्तरात्मा मानो संघर्ष सा करती है किन्तु उसकी छटपटाहट और पराजय का भाव उभर-उभर कर फफोला-सा फूल जाता है जिसमें जरा भी ठेस लगते ही रक्त-स्राव होने लगता है।

'मैंने एक एकाकिनी चिड़िया देखी, जो अपने घोंसले में सूनी बैठी थी।
क्योंकि उसका साथी मर गया था या उड़ गया था।
यद्यपि अभी वसन्त का आरम्भ ही था
और समीप ही पुष्प-कलिकायें प्रस्फुटित हो रही थीं।
अनाज का खेत भी अभी बोया ही गया था,

किन्तु वह, जो कभी खुशी के गीत गाती थी, अब बैठ कर रोने
के अतिरिक्त क्या करती ?
दुःख में मूर्छित सी अकेली बैठे रहना,
कितना कष्टदायक है, कितना भयावह !"

("I saw a bird alone,
In its nest it sat alone,
For its mate was dead or flown
Though it was early spring.
Hard by were buds half-blown,
With cornfields freshly sown ;
It could only perch and moan
That used to sing ;
Droop in sorrow left alone ;
A sad sad thing.")

महादेवी के काव्य में कल्पना की रंगीन बारीकिया मन को बरबस मुग्ध कर लेती है। उनकी रंगीन-कल्पना भावुकता के साथ ऐसी घुल-मिल गई है कि उनके स्वच्छ अन्तर-पट पर मनोज्ञ चित्र उतरते चलते है और वे अपनी सूक्ष्म-ग्राहिणी प्रतिभा द्वारा उनका ज्यों का त्यो चित्रण कर देती है। भाव मूर्त होते ही मानो रंग छलक पड़ते है और शब्दो मे न समाकर सजल चित्रों की स्निग्धता में फैल जाते हैं। उनकी कविता मे रहस्य-प्रवृत्ति का प्राधान्य है। अधिक चिन्तन शील होने के कारण उनकी भावनायें उड़ते बादलों की-सी सघनता से ओत-प्रोत हृदय के करुणतम उच्छ्वास और आंसुओं के तुहिन-कणो की धूमिलता में सहज अविज्ञेय बन गई है। अन्तर्मुखी अनुभूति, अशरीरी-भावना और रहस्य-चिन्तन के आवरण उनकी काव्य की आत्मा को इतना आच्छन्न कर लेते है कि उनके भावों में अस्पष्टता और क्लिष्ट कल्पना का अश अधिक आ जाता है, जिससे अभीप्सित माधुर्य को व्यंजना नही हो पाती। 'नीहार', 'रश्मि', 'नीरजा', 'सान्ध्यगीत', 'यामा' और 'दीपशिखा' आदि पुस्तकों मे सूक्ष्म-कल्पनाओ की सघनता और स्वनिर्मित अनेक-रूपता के साथ-साथ भावात्मक प्रवृत्तियो का संघर्ष है। कही कल्पना-बाहुल्य होने से उनके गीतो के पद भाराक्रान्त होकर लियड़ते-से है और कहीं शब्द उभर-उभर कर भावों की सहज गति में व्यवधान उत्पन्न करते है, किन्तु इसके विपरीत क्रिस्टिना का अन्तर्दाह सच्चा है और उसकी लगन स्वाभाविक है। उसके हृदय में जो

निर्झर की भांति भाव उमड़ते हैं—वे अनुकूल स्थल पाकर प्रकट हो जाते हैं और कहीं भी कृत्रिमता का आभास नहीं हो पाता।

"अकेली और पगली सी रोती रह
अपने हृदय को आंसुओं से भर ले।
क्योंकि तेरी व्यथा और आंसुओं का रहस्य कोई भी नहीं
जान सकता।
जब तक प्रातःकाल न हो और सुखद ओसकण दिखाई न पड़ें
तब तक रोती रह।"

अथवा

"यह निरर्थक धारणा कि मैं क्या से क्या बन सकती थी
जो मेरे मस्तिष्क पर रात दिन छाई रहती है यह जरा भी
चैन नहीं लेने देती।
उत्तर की शीतल वायु ने मेरी सारी हरियाली उजाड़ दी,
मेरा सूर्य पश्चिम में छिप गया।"

(Weep sick and lonely, –
Bow thy heart to tears
For none shall guess the secret
Of thy griefs and tears
Weep till the day dawn
Refreshing dew
Or
The fruitless thought of what I might have been
Haunting me ever will not let me rest
A cold north wind has withered all my green
My sun is in the west)

'रिमम्बर मी' (Remember Me), 'स्वीट डैथ' (Sweet Death) 'माई ड्रीम' (My Dream) 'साउण्ड स्लीप' (Sound Sleep) आदि कतिपय स्फुट गीतों में क्रिस्टिना के छटपटाते हृदय की निराशा और वेदना अन्तर्निहित है। सन् १८६२ में 'गोब्लिन मार्केट' और उसके तीन वर्ष पश्चात 'दि प्रिंस प्रोग्रेस' नाम की क्रिस्टिना की प्रमुख कृति सचित्र प्रकाशित हुई। 'गोब्लिन मार्केट' में दो ऐसी लड़कियों की कथा वर्णित है जो एक सुनसान जंगल में घूमती हुई अज्ञान

के समीप पिशाचो के झुंड से मिलती है और अपने सुनहरी वालों के एक लट के बदले में कुछ जादू के फल खरीद लेती है। उनमे से एक लड़की तो इन फलों को चखने का साहस नही करती, किन्तु दूसरी उन्हे खा लेती है और तत्क्षण ही जर्जरित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ती है। उसकी बहिन अत्यन्त भयभीत होते हुए भी पुनः उन पिशाचों से मिलती है और कोई ऐसी विषनाशक जड़ी उनसे लेने में समर्थ होती है, जो मृत लडकी को पुनर्जीवित कर देती है।

'दि प्रिंसेस् प्रोग्रेस' मे एक राजकुमार का आख्यान है, जो अकेला अपनी पत्नी से मिलने के लिये चल पडता है। उसकी पत्नी-राजकुमारी-बहुत दूर है और पति के विरह मे पागल-सी क्षण-प्रतिक्षण पथ में आंखे विछाये उसकी प्रतीक्षा करती रहती है। मार्ग में राजकुमार को अनेक कष्ट उठाने पडते हैं—प्रथम तो वह एक जादूगरनी द्वारा वन्दी वना लिया जाता है, पुन. वहा से किसी प्रकार छूटने पर वह एक वृद्ध द्वारा,जो एक गुफा मे आयुवर्द्धक रसायन पका रहा था, भट्टी में आग झपकने के लिये रोक लिया जाता है। वहा से विमुक्त होने के पश्चात् जव वह आगे वढ़ता है तो एक भयानक पर्वत-निर्झर मे डूबते-डूबते किसी प्रकार बच जाता है और अनेक विघ्नो को पार करके अत्यन्त कठिनाई से जव वह महल के समीप पहुंचता है तो उसे अपनी पत्नी का सामने से आता हुआ शव का जलूस दीख पडता है, जो उसके वियोग मे प्रतीक्षा करते-करते अन्त मे प्राण छोड़ देती है।

कहते हैं—'प्रिंसेस् प्रोग्रेस' का कथानक क्रिस्टिना के अपने व्यक्तिगत जीवन पर घटित होता है, जिसमे प्रिय-वियोग का हाहाकार और प्यार की पीर के दंश की छटपटाहट है। राजकुमारी मरते हुए जो करुण-गीत गाती है,—वह क्रिस्टिना के अन्तर मे निगूढ प्रणय की व्यथित अभिव्यक्ति है।

"मेरे प्रिय! जव मैं मर जाऊं तो मेरे लिये व्यथा भरे गीत न गाना
मेरे ऊपर गुलाव के पुष्प अथवा शोकवेल न लगाना,
वरन् ओस-कण और वर्षा की फुहार से भीगी घास मेरे ऊपर
उगने देना।
तुम चाहे तो मुझे याद रखना—चाहे भूल जाना।
अब मैं छाया के दर्शन न कर सकूंगी,
अब मैं वर्षा की अनुभूति से वंचित रहूंगी,
अब मैं बुलबुल का करुण गीत, जो वेदना में डूवा हुआ होता
है, न सुन सकूंगी।

एण्टन चेखव और यशपाल

(बाइ ओर से) चेखव और गोर्की
(याल्टा में) सन् १९०१
जन्म-ईसवी सन् १८६०
मृत्यु-ईसवी सन् १९०४
जन्मस्थान-टागन राग (मास्को)

(बाइ ओर से) एण्टन चखव और लिओ टालस्टाय
(क्रीमिया म सन् १९००)
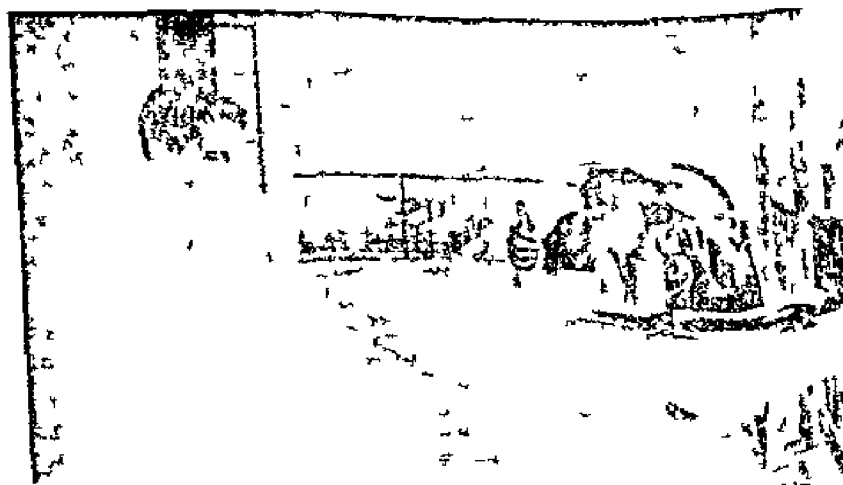
यशपाल
जन्म—३ दिसम्बर, १९०३,
जन्मस्थान—फिरोज़पुर (पंजाब)

श्रीमती प्रकाशवती पाल
यशपाल के संघर्षमय-जीवन की
प्रेरक—उन की पत्नी।

किसी भी साहित्य की परम्परा में भिन्न प्रवृत्तियों की शृंखलाएं जुड़ती आई हैं और जहाँ भी आत्म-संवेदन सजग कलाकार अपने सनातन हृदयावेगों और व्यापक अनुभूतियों को मानव-समूह की सांस्कृतिक चेतना के साथ समन्वित कर देता है, उनके दुःख-सुख, उत्थान-पतन और जीवन-मरण में अपने अस्तित्व तक को भूल जाता है—वहाँ साहित्य का यह ग्राह्य रूप पाठकों पर जादू का सा प्रभाव डालता है। उसकी आत्मा का इतिहास—स्वतःस्फूर्त और जाग्रत होने के कारण—जनवर्ग की आत्मा का इतिहास बन जाता है।

उन्नीसवीं शती में रूस की क्रान्तिकारी धरती पर जिस प्रकार चेखव ने युग-सापेक्ष आह्वान पाकर सामाजिक एकत्वबोध की रक्षा के लिए विराट् क्रान्ति के स्वप्न देखे थे और आगे बढ़कर अपनी शक्तिशाली, प्रखर लेखनी से संकट-कालीन संघर्षमय परिस्थितियों में मिटती मानवता का प्रतिनिधित्व किया था—उसी प्रकार भारत की इस नवीन सांस्कृतिक जागरण-वेला में सभ्यता के घात-प्रतिघात ने जन-मानस में जो उत्साह और नव-चेतना जगा दी है, उसके फलस्वरूप यशपाल जैसे कलाकारों के भी प्राण स्पन्दित हो उठे हैं। अनुभूति प्रवणता एवं कला की दृष्टि से यशपाल चेखव से कुछ निम्न-स्तर पर होते हुए भी उसी की भाँति नवीन-संस्कृति के स्वप्न द्रष्टा एवं वृहत्तर मानव क्रान्ति के संदेशवाहक हैं। दोनों के भावुक मस्तिष्कों में एक-सी विह्वलता, प्राणों में एक सी कचोट और चिंतन एवं विचारधाराओं के विकास क्रम में अद्भुत साम्य परिलक्षित होता है।

मानवता की पृष्ठभूमि

वर्तमान् विश्व-क्रान्ति का निर्दिष्ट लक्ष्य मनुष्य को अविचार और दासता के बंधन से मुक्त करना है, अविकल रूप से व्यक्ति के व्यक्तित्व का मूल्य आककर उसके सिद्धान्त और कर्म के मध्य जो गहरी रेखाएं खिच गई हैं—उसका समाधान एक ऐसे विश्वास मे खोजना है, जो उसके अतर मे कर्म की शक्ति और साहसपूर्ण जीवन-धारण करने की नूतन चेतना जगा सके। मानव की चरम-मुक्ति एक ऐसी मानसिक-अवस्था मे सुनिश्चित् हो सकती है, जो उसकी आत्मा की दृढता को भय के ऊपर, उसकी शालीनता को निषेधो के ऊपर और उसके व्यक्तित्व-मूलक मूल्यो को जीवन के तुच्छ उपकरणो के ऊपर विजयी बना सके। आज का मानव विषम परिस्थितियो, बहुरगी द्वैत, जटिल-समस्याओ, भेदभाव, अनैक्य एव दुख-क्लेशो के कारण अशात, उद्वेलित और असंतुष्ट हैं। वह भौतिक प्रसाधनो के प्रलोभन में पड़कर आत्मनिष्ठा खो बैठा है और उसका मस्तिष्क, उसके नियंत्रण एव अनुशासन से बाहर होकर, उसके अपने वक्ष पर ही निर्मम प्रहार करने को उद्यत है। एक ओर तो उसके अतर का क्रन्दन बाहर फूटकर उसके मनोवेगो को मथना चाहता है, दूसरी ओर समाज की समष्टिगत-चेतना उसे अज्ञात दिशा की ओर उत्प्रेरित करके उसकी क्रियाशीलता पर भीषण कुठाराघात करना चाहती है। गणतंत्र मे, जो इस समय एक प्रकार की अस्वस्थता मालूम हो रही है, उसका कारण है कि आज की पीड़ित और परेशान इन्सानियत विषाक्त और दमघोंटू व्यवस्था से बाहर आने को तड़प रही है। इस युग में प्रत्येक व्यक्ति एक शक्तिशाली विद्रोही है और राष्ट्र एव समाज की परिस्थितियो से विवश वह प्रतिक्षण अपनी बेबसी और दासता पर खून के आसू बहा रहा है।

चेखव ने प्रतिकूल परिस्थितियो मे जन्म लेकर भी मानवता के निर्माण का दायित्व अपने कंधों पर लिया और व्यक्तिवाद के ऊपर समष्टिवाद को प्रतिष्ठित करने की चेष्टा की। उसने अपने देश के प्रत्येक व्यक्ति की स्वतन्त्रता और गौरव को विश्व-हित के साथ एक करके देखा और सार्वभौम-शांति एवं मानव-भ्रातृत्व की भावना को व्यापक बनाने के लिये अपनी क्रियात्मक शक्ति को जागृति के साथ यथार्थ के रूपायन में तत्पर किया।

चेखव की कृतियों मे गहरी स्वातन्त्र्य-भावना है। वह बुझते मस्तिष्क की भाव-चेतना को कुरेदता है। उसकी रचनाओ के प्रत्येक पृष्ठ पर स्वेच्छाचारी

मस्तिष्क मे कौंध जाते कि अधिकार मांगने से नही मिलते, वे साहस और प्राण-दान से ही बलपूर्वक प्राप्त किए जा सकते है। उसने आगे बढकर अपना हृदय खोलकर दिखा दिया। उनकी सुप्त-चेतना में आत्म-विश्वास और नवाकांक्षा की भावना जगाई और बुझते मानस मे मुक्ति-कामना के ज्योतिर्मय स्फुलिंग-कणो को बिखेरा। कहने की आवश्यकता नही कि वह कटकाकीर्ण मार्ग पर साहस से आगे बढ़ा और लाखों नर-नारियों के साथ जन-कल्याण की साधना मे रत हो गया। अपनी लेखनी की चोट से उसने मानवात्मा को जकड़ने वाले फौलादी पीजरे की जड़े हिला दी और तीक्ष्ण विश्लेषणात्मक शैली से सोये राष्ट्र की मूर्च्छना को भंग कर दिया।

यशपाल भी चेखव की भाति जनवादी कलाकार है। भारत की दरिद्र, अभिशप्त जनता के हाहाकार और चीत्कार ने उनके प्राणों मे मर्मान्तिक टीस पैदा कर दी है, नित्यप्रति बढते हुए असंतोष और अक्षमता ने उन्हे बेचैन बना दिया है। पीडा से छटपटाते प्रत्येक मानव के प्रति उनके दिल मे दर्द की तडप है, मोहब्बत का जोश है। अपनी एक पुस्तक की भूमिका मे वे लिखते है, "हमारा जीवन कितना छिछला और सकीर्ण होता चला जा रहा है? स्वार्थ के बावलेपन की छीना-झपटी और मारोमार हमे बदहवास किए दे रही है। मनुष्य की उस मानवता, नैतिकता और स्थिरता को हम खो चुके है, जिसका विकास हमारे आत्मद्रष्टा ऋषियो ने सकीर्ण सासारिकता से मुक्त होकर किया था। स्वार्थ की पट्टी आंखो पर बांध हम भारत की आत्म-ज्ञान की संस्कृति के परम शाति के मार्ग को खो बैठे है। क्या पेट और रोटी ही सब कुछ है? इससे परे मनुष्य की मनुष्यता, सस्कृति और नैतिकता कुछ नही?"

यशपाल ने अपने देश की, समाज की उभरती हुई शक्तियों और आज की बदली हुई परिस्थितियो को पहचाना है। उन्होने समाज के किसी एक ही पहलू पर प्रहार नही किया है, वरन् अपनी छलछलाती, पैनी, व्यंगपूर्ण शैली मे उन अंतरंग उफनती हुई भावनाओ को बाधा है, जो दासता, सामाजिक एव आर्थिक असमानता और जीवन की असंगतियो को देखकर घृणा और जोश से तड़प उठती है। उनकी अदम्य प्रतिभा-शक्ति अधकार म टटोलती हुई राह की अवरोधक-शक्तियो पर भीषण प्रहार करती चलती है और पतनोन्मुख समाज एवं सडी-गली, जर्जर संस्कृति की विकृति का पर्दाफ़ाश कर देती है।

कहना न होगा—एक ईमानदार कलाकार अपने आतरिक विश्वासो के सत्य पर जीता है। उसकी चेतना औरो से अधिक जाग्रत होती है और अपनी

विचारधारा के विरोधी तत्वों का वह डटकर मुकाबला करता है। दासता के शासन में प्रतिकूल परिस्थितियों में प्रताड़ित और पीड़ित होकर भी मद द्वारा विवेक की जो भावना हममें जाग्रत रहती है—वही मनुष्यत्व का प्रतीक है। भिखारिणी होकर भी यदि वह जाग्रत रह सके तो आज अपना मनुष्यत्व खो रहे मनुष्य को यह कल 'मनुष्य' बना सकेगी।

लोकायतन की ओर

यशपाल और अश्क को श्रेय है कि वे जनता का नेतृत्व कर सकें—उनके मुमुर्षु मन में पुनः प्राणों का संचार, उनकी रुधिर विहीन नसों में नए रुधिर का प्रवेश, उनकी जीवन की झिलमिलाती लौ को फिर से प्रज्वलित करने के उपायों और अचूक प्रयोगों से कर सके हैं। उन्होंने सच्चे क्रान्तिकारी की भाँति ठोस नवीन, अकाट्य प्रमाणों एवं निष्पक्ष दृष्टिकोणों को कलापूर्ण ढंग से समुपस्थित करके न केवल पुरुषों को वरन् नारियों को भी आगे बढ़ने को प्रोत्साहित किया और आगे आगे चलकर पथ निर्दिष्ट करते हुए परम्परागत रूढ़ियों के संकीर्ण दायरे को तोड़ कर बाहर आने का उन्हें प्रशस्त मार्ग दिखाया। यद्यपि हमारे दृष्टिकोण से यशपाल की दुनिया में कहीं कहीं अति शृंगारिकता का प्रश्रय लेकर भारतीय वातावरण के प्रतिकूल नारी की विकृत वासनाओं को अत्युक्तिपूर्ण ढंग से उभाड़ा गया है तथापि इसमें सन्देह नहीं कि उन्होंने भारतीय नारी की सुप्त चेतना को जगाने में पर्याप्त योग दिया है। उनकी कहानियों एवं उपन्यासों में कई स्थलों पर नग्न रोमांस होते हुए भी शालीनता का आवरण पड़ा है, जो लेखक की दृढ़ आत्मधारणा, साहस और स्वतन्त्र संस्कारिता का परिचायक है। 'दादा कामरेड' 'देशद्रोही' 'दिव्या' और अभी हाल में ही प्रकाशित 'मनुष्य के रूप' में नारी के अन्तर्जीवन की कठोर झाँकी है, जिनमें साथ ही उनकी विविध मानसिक स्थितियों का अभूतपूर्व विश्लेषण हुआ है। समाज की विषमताओं और प्रवंचनाओं के प्रति उनकी मचलती भावनाओं में विस्फोटक विद्रोह है। अविराम संघर्ष और जीवन के विद्रूप सहते सहते उनमें जो एक आत्म निष्ठा उत्पन्न हो गई है—वह उन्हें कष्टकारीण, स्वावलम्बन-पथ पर अग्रसर होने की प्रेरणा देती है और उन्हें आशा एवं उज्ज्वल भविष्य का आश्वासन देकर उनके मनोबल को ऊँचा बनाए रखने का प्रयत्न करती है। 'दादा कामरेड' में शैलबाला के ये शब्द अपने अस्तित्व को अनुभव करने की तृप्ति अवरुद्ध भावना के लिए मार्ग — देना तुम चाहते हो केवल शासन में क्रान्ति, परन्तु समाज की व्यवस्था

के बन्धन में व्यक्ति के अवरुद्ध प्राण कैसे छटपटाते हैं।" उसके आंतरिक-विश्वास के सत्य को व्यक्त करते हैं। शैलबाला, चंदा, दिव्या और सोमा सभी में जीवन की तीखी कठिनाइयो से विशेषरूप से संघर्ष करने के कारण तीव्र भावनाए जग गई है, जो सब मर्यादाओ और लोक-लज्जा की मिथ्या प्राचीर को लाघ कर उन्हें बाहर कूद पड़ने को विवश करती है। उपन्यास के अन्त में दिव्या मारिश का आश्रय ग्रहण करके जीवन के चरम सत्य को अपनाती है और पुरुषत्व को नारीत्व की कर्मचपल, उद्बुद्ध चेतना अर्पित कर वह उससे उन अनुभूत सासारिक सुख-दु:खो और विचारो का आदान-प्रदान चाहती है, जो हल्के सद्भाव मे सभव नही और न जिसे सस्ती भावुकता का प्रदर्शन ही कहा जा सकता है। 'दादा कामरेड' की यशोदा, 'देशद्रोही' की चन्दा और 'मनुष्य के रूप' की सोमा गृहस्थी के महान् दायित्व को सभाले हुए विवाहित नारिया है; वे अपने आप मे सिमटी हुई अपने कर्तव्य-कर्म मे तत्पर है, किन्तु दारुण परिस्थितियां उन्हें महत्त्वाकाक्षा और स्वतन्त्र-चिंतन के अकूल सागर की तरंगो मे धकेल कर छोड़ जाती है। वे बाहर आने के लिये छटपटा उठती है और कुल-मर्यादा का उल्लघन करके अपने अभिभावको की इच्छा के विपरीत दूसरा मार्ग अपना लेती है। चेखव की 'दुलहिन' (The Bride) नामक कहानी की नायिका नाद्या भी साशा की प्रेरणा से विवश परिस्थितियों एवं बर्बरतापूर्ण संकुचित वातावरण से ऊबकर बाहर निकल पडती है और क्रातिकारी कार्यो मे अपना जीवन अर्पित कर देती है।

चेखव और यशपाल नारी के जीवन की त्रुटियों एवं उनकी चारित्रिक कमजोरियों को दिखाते हुए भी उनके प्रति उदार और संवेदनशील हैं। रूढि-जर्जर सस्कारो मे पली, समाज के अनुचित बन्धनो मे जकड़ी, शरीर और मनोबल से हीन नारी मे वे आत्म-चेतना जगाना चाहते हैं। 'देशद्रोही' मे खन्ना चंदा से कहता है, "कुल के सम्मान के लिये तुम गल रही हो अपने बलिदान से नारी-समाज के बन्धन दूर करने के लिये। एक घर से बढ़ कर देश और मनुष्यता का ध्यान तुम्हें होना चाहिए।" चेखव की 'दुलहिन' नामक कहानी मे भी ये ही भाव प्रतिध्वनित हो रहे है। साशा जीवन के कायाकल्प को ही श्रेयस्कर समझती है। 'माई लाइफ' (My Life) उपन्यास का एक पात्र कहता है, " हमे संघर्ष के उन तरीको को अपनाने की आवश्यकता है,जो अचूक, साहसपूर्ण और शीघ्र कामयाब होने वाले हों। यदि

तुम वस्तुतः लाभदायक होना चाहते हो तो साधारण कार्यों की सीमित परिधि को तोड़ कर बाहर निकलो और जनता को प्रभावित करने का प्रयत्न करो।'

(What we need here is other methods of struggle strong daring swift! If you really want to be useful then step beyond the narrow limits of commonplace activities and try to influence the masses at once!)

चेरी ऑर्चार्ड (Cherry Orchard) में भी जीवन में पुनर्निर्माण का संकेत मिलता है 'आगे बढ़ो! हम अनायास उस चमकीले तारे की ओर बढ़ रहे हैं जो हमारे सिर पर दूर चमक रहा है। सारा रूस हमारा उद्यान है।"

(Forward! We are irresistibly moving towards the bright star which glows ahead far away Forward!
The whole of Russia is our orchard.)

मानसिक-धरातल

यशपाल और चेखव केवल वर्तमान के ही साधक नहीं, प्रत्युत् अपने अतीत गौरव पर भी गर्व करते हैं। एक कुशल कलाकार की भाँति वे नवीन भावनाओं की सृष्टि के लिये उन्हीं कल्पना चित्रों का प्रयोग करते हैं जो जनता की चेतना का संस्कार बन चुकी है। युग के कटु एवं विषम संघर्षों से उद्भूत उनकी कृतियों में युग-युग की सौन्दर्य रेखायें भी उभर आई हैं। पुरातन आदर्शों और अपनी संस्कृति का गला उन्होंने कहीं नहीं दबाया है, हाँ—उस आदर्श के पाखण्ड का पर्दाफाश अवश्य किया है जो उनकी समस्त चेतना और प्राणों को अवरुद्ध किए है। सत्य एवं यथार्थ का अनावरण कर वे सत्य मानवीय-एकता के सुन्दर स्वप्न देखा करते हैं और जीवन संघर्ष, वेदनाओं और कन्धों पर रखा हुआ परतन्त्रता का असह्य भार उन्हें उज्ज्वल भविष्य का प्रिय संदेश दे जाता है। प्रचण्ड अन्धड़ के कोलाहल के भीतर उन्हें कुछ और ही छिपा नजर आता है—शान्तिमय जीवन की खुशहाली, कलात्मक एवं साहित्यिक उन्नति। उनकी प्रखर दृष्टि गहरी पैठकर जीवन का वास्तविक अर्थ खोज रही है और अतल गह्वरों में छिपे रहस्यों का उद्घाटन चाहती है। यशपाल की लड़खड़ाती दृष्टि कई बार अनजाने में तमसाच्छन्न गर्तों में जा टकराई है, कभी सुदूर के दुर्भेद्य धुंधलके में पर्दे झाँक लेता है जिसके फलस्वरूप यथार्थवाद की ओर सहज झुकाव

होते हुए भी 'दिव्या' उपन्यास और 'दास-धर्म' आदि कुछ कहानियो के कथानक, जो इतिहास पर आधारित है, अत्यधिक कल्पनापरक और भावच्छटा की निविड़ सघनता से ओतप्रोत हो गए है। गहरी निस्तब्धता मे कोई कल्पित, आकर्षक चित्र ही सहज स्फुरण से गति की अबाधता और घटना-क्रम सूचित कर जाता है। कब कब की स्मृतियो को ढके हुए विस्मरण का आवरण सामने से हटकर हृदय-पटल पर अतीत के रंगीन चित्र अंकित कर जाता है और सहसा भावनाए उमड़कर स्निग्धता और वातावरण की तरलता मे सिहर उठती है। 'दादा कामरेड' 'देशद्रोही' और 'मनुष्य के रूप' में लेखक भाषा की दुरूहता और भावो की उलझन मे नही उलझा है, तो भी उसकी ठोस लेखनी न जाने किन भावनाओं से टकरा कर मनोवैज्ञानिक तथ्य को कोमलता से,किन्तु तेजी से, छू कर निकल जाती है। जीवन की साधारण से साधारण बातो को वह गौर से कलम की नोक पर सही आंक देता है, कही कही तो सधे हुए दो चार खरोचो से ही चित्र सजीव हो उठता है।

"मध्यान्ह-सूर्य के प्रचण्ड ताप से भूमि की रज-धूसर ज्वालाओ के रूप मे आकाश की ओर उठी आ रही थी। हू-हू करती संतप्त वायु आश्रय की खोज मे वनो की ओर दौड़ी जा रही थी। उस विभीषिका मे दारा अपने शाकुल को हृदय से लगाए, तवे की भाति तपे पत्थर मढे पथ पर पुरोहित-गृह से निकल पड़ी। सूर्य के उत्तप्त बाणो से शाकुल की कोमल त्वचा बचाने के लिये दारा ने शिशु को अपने छिन्न,जीर्ण, मलिन उत्तरीय में लपेट लिया।" (दिव्या से)

"दीमा दासियों की पंक्ति मे बैठी थी। उसके मूल्यवान् वस्त्र कुचले जाकर विश्री हो गये थे। उसके नयनो की मादकता कातरता मे और मुख की त्वचा का इगुर भरा लावण्य भयार्त्त के उदासी पीलेपन में बदल गया था। दस्युओ ने उसके केशो की सुनहरी आभा दिखाने के लिये वेणी खोल लटो को कंधो पर डाल दिया। उसके वक्ष पर त्वचा की कमनीयता दिखाने के लिये उसकी कंचुकी का एक भाग फाड़ दिया गया।" · (दास-धर्म से)

यद्यपि सामाजिक संघर्षों की चोट ने यशपाल की भावनाओ को आलोडित किया है, जिसके कारण उनकी अभिव्यक्तियों मे कई स्थलो पर तीव्रता आगई है, तथापि मानस मे विस्फोटक विद्रोह होते हुए भी वे अपने सृजन के प्रति तन्मय है, क्रातमुख होते हुए भी निर्माणोन्मुख है और बुद्धिवादी होते हुए भी यथार्थ-युग

के प्रौढ़ कलाकार हैं। बहिर्मुख प्रवृत्ति के होते हुए भी उनमें उत्कट उद्वेगशीलता है और अपनी कृतियों में बहिर्जीवन की प्रतिच्छाया अंकित करने पर भी उन्होंने अन्तर्द्वन्द्वों को आरोपित किया है। यह सही है कि वे वर्तमान् सामाजिक-विकृतियों एवं पतनोन्मुख परम्पराओं का नग्न रूप ला उठे हैं किन्तु इसके साथ ही वे अपनी कोमल भावनाओं के प्रति भी सतर्क हैं और स्थूल-सौन्दर्य के साथ साथ सूक्ष्म-सौन्दर्य के भी द्रष्टा हैं। समस्त सृष्टि को अपना क्रीडास्थली बनाने वाली उनकी विलक्षण प्रतिभा देश-काल की सीमाओं से ही टकरा कर नहीं रह गई है वरन् भारत से दूर सोवियत रूस, अफगानिस्तान, गजनी, समरकन्द तथा अन्य देशों के स्त्री-पुरुष, रीति-रिवाज, वेष-भूषा, रहन-सहन आदि के चित्र भी बहुत ही मार्मिक ढंग से प्रस्तुत करती है। उनकी कृतियों का टेकनीक तथ्यान्वेषण का अनुयायी है, तथापि व्यापक समस्याओं और सामाजिक शोषण, उत्पीड़न से ही उनके चित्त में संवेदना संचरित होती है जिससे उनकी कल्पना प्रवणता संकुचित परिधियों को तोड़ कर विश्वान्तर अमरत्व की भूमिका में अवतीर्ण हो गई है।

वर्तमान समाज-व्यवस्था-जन्य अनुभूतियों पर आधारित यशपाल की छोटी छोटी कहानियाँ जीवन-सापेक्ष्य और समाज-सचेतन होने से कलाकार के अन्तर्द्वन्द्वों और उसके अशान्त मस्तिष्क की वेदना को लेकर स्थापित हुई हैं, जिनमें जीवन को बहुत पास से देखने की चेष्टा की गई है। विश्व अथवा अपने देश में फैले हुए अनाचार, ढोंग, स्वेच्छाचारी-शासन और दमन-नीति के विरुद्ध उनकी सहृदयता विद्रोह करती है जिससे कभी कभी संकुल भावनाएं विशृंखल होकर विचारों की तन्मयता में कुछ अव्यवस्थित और उखड़ी उखड़ी सी लगती है तथा युग की समस्याओं से परिचित होकर भी उनकी रूप रेखाओं को स्पष्ट नहीं कर पाती। 'पिंजड़े की उड़ान', 'ज्ञान-दान', 'वो दुनिया', 'अभिशप्त', 'तर्क का तूफान', 'भस्मावृत्त चिनगारी' और 'फूलों का कुर्ता' आदि कहानी-संग्रह में सामाजिक विद्रूप साहित्यिक-गरिमा के साथ प्रकट हुए हैं, जिनमें संसार चक्र के साथ साथ अनवरत घूमने वाले व्यक्तियों की विभिन्न मनःस्थितियों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण हुआ है। नव-संस्कृति के नवीन जीवन प्रयोगों को यशपाल ने प्रगतिशील मानववाद में विकसित कर दिया है।

यदि हम निर्माण-कौशल के अन्य पहलुओं पर भी विचार करें तो सम्भव यशपाल से श्रेष्ठ कलाकार सिद्ध होता है। उनमें एक कुशल कहानी लेखक के सभी गुण विद्यमान् हैं और अपनी अभिव्यक्तियों पर पूर्ण नियन्त्रण रख कर वह उन्हें

अभीष्ट रूप-रेखाएं देने मे समर्थ हुआ है। अपनी छोटी छोटी कहानियों में लेखक ने जीवन के विभिन्न पहलुओ का चित्र खीचा है और प्रत्येक चित्र इतना सुन्दर और कलापूर्ण वन पडा है कि अपना स्थायी प्रभाव पाठक पर छोड़ जाता है। चेखव की प्रतिभा ने अपने युग की भावनाओ का प्रतिनिधित्व करते हुए तत्कालीन कथा-साहित्य को नाटकीय-संघात से नवीन विक्षेप-शैली प्रदान की है और जनता की धमनियों मे क्राति का रक्त सचरित करके नवीन सामाजिक व्यूह-रचना मे अपनी समस्त शक्ति व्यय कर दी है। उसकी रचनाओ में कल्पना-तत्त्व कम और वस्तु-तत्त्व अधिक है। ज्यो ज्यो वाहरी चमक-दमक की चकाचौंध मिटती जाती है, उनका अधिकाधिक प्रकृत-रूप निखरता आता है और भावो की व्यजकता भीतरी गाभीर्य को प्रकट करती है।

जीवन के घात-प्रतिघातो ने चेखव के हृदय को स्तब्ध बना दिया है। व्यक्ति की ईकाई मे उसने त्रस्त मानवता की करुण-तस्वीर खीची है, जिसमे कभी न सास लेने देने वाली गरीवी मे डूबे और पूजीवाद की अध-शक्तियो के समक्ष सर्वथा असहाय रूसी मजदूरो, निर्धन स्त्री-पुरुषो, किसान एव श्रमजीवी-वर्ग का यथातथ्य चित्रण किया गया है। चेखव ने अपने जीवन-काल मे अनेको वार यह विश्वास प्रकट किया है कि अर्वाचीन राष्ट्र किसी एक व्यक्ति एव वर्ग-विशेष की नियामत नही है, प्रत्युत् प्रत्येक जाग्रत राष्ट्र मे जनता ही वह क्रांतिकारी शक्ति है, जो पूजीवादी-व्यवस्था की इमारत की ईट-ईट विखेर कर ध्वसावशेष पर शोषण-मुक्त, स्वस्थ समाज की नीव रखेगी। इस पूजीवादी-युग मे वर्ग-संघर्ष नग्न रूप मे प्रकट हो गया है और चेखव के दृष्टिकोण से मानव-समाज की रचना तभी सभव हो सकती है, जवकि व्यक्ति का सामाजिक एव नैतिक स्तर पर्याप्त उन्नत हो और वह अपने व्यक्तिगत हर्ष-विषाद को वर्गीकृत स्वार्थो के उन्मूलन मे आत्मसात् कर दे। गोर्की ने एक स्थल पर लिखा है, "अभीष्ट क्राति लाने के लिये साहित्य ही एक प्रमुख अस्त्र है। उत्तरदायी लेखको का कर्त्तव्य है कि वे उत्पीड़ित, शोषित-वर्ग को सावधान कर दे कि जिस गलाघोटू-व्यवस्था के अधीन वे पीसे जाते हैं—उससे वे सख्त नफ़रत करना सीखे।"

चेखव ने जीवन की जटिलताओं और तात्कालिक घटना-क्रम के क्रियाशील सम्पर्क को उद्घाटित किया और नित्य परिवर्तनशील राष्ट्र एवं समाज के स्वाभाविक-विकास के रूपान्तर को प्रकट करने की चेष्टा की। उसकी महान् शक्ति

(Ah if it would only come soon this new, clear life when it will be possible to look square and boldly in the face of your fate and feel that you are right feel cheerful free! And this life will dawn sooner or later!)

अञ्चल और यशपाल श्रमिक वर्ग की शक्तिशाली आवाज को बुलन्द करने वाले निर्भीक मनस्वी हैं और वे पीछे रहे नहीं, वरन् आगे आगे ललकारते हुए जनता में आत्म विश्वास और स्वस्थ सामाजिक विकास की भावना जगा रहे हैं। यद्यपि यशपाल में वय प्राप्त अनुभवी कलाकार अञ्चल की सी परिपक्वता अभी नहीं आई है तो भी वे कदम से कदम मिला कर उसी दिशा की ओर अग्रसर हो रहे हैं और सहृदयता का लक्ष्य कर जीवन के व्यावहारिक दृष्टिकोण को उत्तरोत्तर व्यापक बनाने का आदर्श स्थिर कर रहे हैं।

अज्ञेय और इलियट

सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन
'अज्ञेय'
जन्म—ईसवी सन्—मार्च, १९११
जन्मस्थान—कुसिया (गोरखपुर)

टी एस इलियट (टॉमस स्टर्न्स इलियट
जन्म—ईसवी सन २६ सितम्बर, १८८८
जन्मस्थान—सैंट लुई मिसौरी (अमरीका)
St. Louis Missouri

अज्ञेय और इलियट—इन दो एतद्देशीय एव वहिर्देशीय कलाकारो की साधना, किंचित् असमानता को लिए, मूल मे वहुत कुछ एक ही है। दोनो मे शिल्पी की स्वप्नमय दृष्टि है, जिनकी अमर कल्पना के रगीन स्वप्न उनकी अपनी रचनाओं मे यत्र-तत्र विखरे पड़े है—स्वप्न—कुछ पूरे, कुछ अधूरे, जो अन्तर्मानस में घुमड़-घुमड कर उनकी चेतना पर छा जाते है और सधे हुए विश्लेषण के साथ किन्तु कुछ अस्पष्टता के आवरण में लिपटे हुए, शब्दो मे गुंथकर उभर पडते है। दोनो की भावानुभूति अत्यन्त गहरी है, जिसमे अन्त.करण की स्वच्छता होते हुए भी वाह्य-अभिव्यक्ति की छलना है और कलात्मक-टेकनीक के साथ साथ आत्मस्थ प्रज्ञात्मकता के कारण अस्वाभाविकता की संयोजना हो गई है। दोनों की अमूर्त्त भावनाए आत्म-केन्द्री एवं जन-जीवन से घनिष्ठ संस्पर्श के अभाव के कारण साधारण पाठको के लिए सहज अविज्ञेय और गूढ़ वन गई हैं। उनकी सूक्ष्म, सृजनात्मक प्रतिभा लजीली नवोढ़ा सी विचारो के गुम्फन से किंचित् झाक तो जाती है, किन्तु पूरी अपनी झलक दिखाने मे मानो अवगुठन का सहारा ले लेती है।

व्यक्तित्त्व का द्वित्व

कहने की आवश्यकता नही कि अज्ञेय और इलियट के व्यक्तित्त्व का द्वित्व उनकी हार्दिक एवं वौद्धिक आत्म-चेतना मे निहित है, जहा उनके जीवन की

गतनवाही जलधारा के मूल में यदि प्रवाह के अक्षय्य स्रोत का पयवसान है। इनके व्यक्तित्व का एक पहलू भौतिक आवरण से लिपटा चिरन्तन बहिर्मुख आत्म स्वीकृति म आश्वस्त है और दूसरा जीवन की गम्भीरता मनन की शक्ति और उत्तरदायित्व की गहनता का सम्भार हुए है। सस्ते रोमान से पृथक हटकर उन्होंने अपनी निर्दिष्ट मान्यताओं को मनोविश्लेषणात्मक पद्धति से सचालित करने का प्रयास किया है और अन्त म यथार्थ की ओर उन्मुख होकर अपनी सघषरत आत्मा को वस्तु-सत्य को निकट से परखने एव जीवन की गुत्थियों को सुलझाने में उलझा लिया है। स्थूल स क्रमश सूक्ष्म की ओर तथा वस्तुवाद से आत्मवाद की ओर अनवरत झुकाव होते रहने के कारण उनकी दुनिया में अन्त र्बाह्य द्वन्द्व है और हृदय का आलोडन सत्य स्फूर्ति के साथ स्पन्दित हो रहा है। दोनों के काव्य जगत में पहुँचने पर इस क्रमिक दृष्टिकोण के समन्वय की पुष्टि हो जाती है। उनकी प्रारम्भ की अस्फुट प्रतिभा क्रमश गरिमा पाकर भाव प्रवण स तत्त्व चिन्तक हो गई है और निरन्तर गतिशील होने पर भी उसमें गति का आवेग नहीं प्रत्युत साधना की स्थिरता है। जीवन की परम्परागत व्याख्या को ग्रहण करके उनका लोकसंग्रही कलाकार अधिकाधिक आत्मदर्शी एव चिन्तनशील होता जा रहा है और मानव की परस्पर विरोधी अन्तर्वृत्तियों का उन्होंने जिस रूप में विश्ले षण किया है—वह अधिक सुस्पष्ट न होते हुए भी परीक्षित तथ्यों के आधार पर मान्य है।

आधुनिक युग में अज्ञेय की कलम से 'शेखर' का सृजन विश्व मानव की उन सघषमयी प्रवृत्तियों का द्योतक है (यद्यपि उसकी भी एक परिमिति है), जहाँ अवि च्छिन्न रूप से सयोजित व्यक्तित्व के कतिपय विरोधी पहलू एक दूसरे से चिपटे हुए जीवन के रहस्याच्छन्न अन्तराल में झाँकने का प्रयास करते हुए भी उसके वैचित्र्य में भ्रमित हैं। शेखर जितना ही अपने को टटोलने का प्रयास करता है उतना ही उलझता जाता है और विभिन्न परिस्थितियों के चक्कर में पड़कर अपने ही लिए एक गूढ़ पहेली बन जाता है। आज का अनियन्त्रित जीवन जैसे मर्यादा को तोड़ कर विशृंखल हो गया है और उसकी अखण्डित धारा टूटी हुई सी लगती है, ठीक ऐसा ही कुछ शेखर के जीवन का भी स्वरूप है। मानव जीवन की अखण्ड साधना को इतनी दिशाओं में उन्मुख कर पाना मन की पूर्णता को इतने वर्गों पर बिखेर सकना और अल्पायु में ही इतनी नाजुक मजिलें तय कर जाना शेखर की अभूतपूर्व सफलता का परिचायक है। वह बहिर्जीवन एव अन्तर्जीवन के समन्वित आदर्शों में बध कर सश्लिष्ट चिन्तन-धारा को समुपस्थित करने की चेष्टा करता है। चूँकि उसकी दृष्टि

अंतर्मुखी है और वह अपने ही जीवन के इर्दगिर्द चक्कर काटता रहा है, फलत: उसकी दृष्टि की पैठ अधिक व्यापक तो नही कही जा सकती—हां, फांसी पाने की सभावना में मृत्यु का कल्पना द्वारा साक्षात्कार कर उसकी बुद्धि और मस्तिष्क अपनी समस्त भ्रान्तियो को समेट सशक्त हो गये है और उसकी सृजन-प्रक्रिया प्रखर होकर जीवन के आर-पार झाकने का प्रयास करती है। 'मै जो सदा आगे ही देखता रहा, अपनी यात्रा के अन्तिम पड़ाव पर पहुचकर पीछे देख रहा हू। मै कहा से चल कर, किधर-किधर भूल-भटकर, कैसे कैसे विचित्र अनुभव प्राप्त करके यहा तक आया हूं और तब दीखता है कि मेरी भटकन मे भी एक प्रेरणा थी, जिसमे अन्तिम विजय का अकुर था, मेरे अनुभव-वैचित्र्य मे भी एक विशेष रस की उपभोगेच्छा थी, जो मेरा निर्देश कर रही थी।"

जीवन का प्रत्यालोकन करते हुए अभूतपूर्व, पारदर्शी क्षणो मे शेखर की समग्र-चेतना जीवन-भर के लक्ष्य को ढूढने का प्रयत्न करती है और अपनी प्रत्येक गति के आगे एक प्रश्न-चिन्ह लगा जाती है। लेखक के शब्दो मे "मेरी स्थिति मानो भावानुभावो के घेरे से बाहर निकल कर एक समस्या रूप मे मेरे सामने आई—अगर यही मेरे जीवन का अन्त है तो उस जीवन का मोल क्या है, अर्थ क्या है। सिद्धि क्या है—व्यक्ति के लिये, समाज के लिए, मानव के लिए . इस जिज्ञासा की अनासक्त निर्ममता के, और यातना की सर्वभेदी दृष्टि के आगे मेरा जीवन धीरे धीरे खुलने लगा, एक निजू और अप्रासगिक विसगति के रूप में, सामाजिक तथ्य के रूप में, और धीरे धीरे कार्य-कारण परम्परा के सूत्र सुलझ सुलझ कर हाथ में आने लगे .... ।"

कहना न होगा—'शेखर' का स्रष्टा अज्ञेय उपन्यास का नायक बनकर अपने जीवन मे इसी नियति के सूत्र को पकडने की चेष्टा करता है और कदाचित् पकड नही पाता। लगता है—जैसे उसका प्रत्येक कदम, प्रत्येक क्षण, प्रत्येक गति, प्रत्येक परिवर्तन उसके समूचे जीवन में लगे प्रश्न-चिन्हो का उत्तर बन गई है और वह निश्चित् दिशा खो बैठा है। उसके अन्तर मे जो हलचल है, जो घटाटोप विचारो का बवण्डर सा उठ रहा है—वह बरबस बाहर फूट पडना चाहता है, किन्तु जैसे वह स्वयं नहीं जानता कि वह क्या है और कौन उसकी सहज गति को अवरुद्ध कर लेता है। आप देखे कि इस मोड़ पर आकर अज्ञेय और इलियट की विचार-धारा में पर्याप्त साम्य हो गया है। कल्पना के जिन रंगीन स्वप्न-चित्रों के सहारे इन दोनो ने मानव-मन के प्रच्छन्न-वृत्तो का उद्घाटन किया है और जीवन को जिन

साधारण परिस्थिति एवं घटनाओं को रोचक तत्त्वों से पृथक् करके उन्हें बौद्धिक पृष्ठभूमि देता है—उससे उनकी कृतियों में मन को अभिभूत करने वाली रस की धारा मन्द सी पड़ गई है। जीवन के सरल सत्य से आलोकित होते हुए भी उनकी रचनाओं में परिस्थितिजन्य तनाव है जो पाठकों के मन को लिप्त कर लेने के बजाय अपनी शुष्क बौद्धिकता से जकड़ लेता है। अज्ञेय की भांति इलियट का विराट्, विकल्पक बुद्धि भी मानव-जीवन के विशृंखल अंगों के भीतर से सामंजस्य का एक सूत्र खोज लेना चाहती है। जीवन की निविड़ता में रम कर वह बुद्धि के माध्यम द्वारा जीवन के सारगर्भित अर्थ को पा लेने का इच्छुक है किन्तु उसका अत्यधिक आत्मपरक एवं वस्तुपरक दृष्टिकोण असम्बद्ध प्रतीकों एवं अव्यवस्थित जीवन खण्डों से टकरा कर ही रह जाता है। वह जितनी ही कुशलता से अपनी चेतना को उद्बुद्ध करता है कल्पना एवं अनुभूति के बल पर अपनी विशिष्ट भावनाओं को व्यक्त करता है उतनी ही उसकी अर्थ-व्यंजना उखड़ी उखड़ी सी लगती है और वह जैसे पाठकों के मन में पूरी तरह से उतर नहीं पाता। अति सूक्ष्मातिसूक्ष्म एवं अज्ञात भावों को व्यक्त करने के फेर में इन दोनों की व्यंजनाएं दुरूह हो गई हैं जिससे हृदय का पूर्ण सामंजस्य न होने के कारण प्राणों का स्वर बोलता हुआ सा प्रतीत नहीं होता।

एक स्थल पर इलियट लिखता है 'यह सब भला क्या है जिसका नाम जिन्दगी है"

("What is yet in this
That bears the name of life.")

और कभी वह जीवन की गुत्थियों को सुलझाने में अलक्ष्य अरूप को मूर्त रूप देने में स्वयं ही उलझ जाता है। वस्तुतः जीवन के प्रति इलियट और अज्ञेय का दृष्टिकोण अर्ध-चेतन है आत्म-सचेतन नहीं, उनकी भीतरी चेतना स्वप्नों की सृष्टि करती चलती है और बाह्य-चेतना अर्ध विमूढ़ सी कहीं खोई रहती है। इसका कारण कदाचित् यह है कि श्रेष्ठ कवि एवं कलाकार के व्यक्तित्व की दो धाराएँ होती हैं, जो उसे सामान्य धरातल से ऊपर उठा देती हैं। उसके व्यक्तित्व का अंतरंग पहलू तो चिरंतन-साहित्य के सृजन में तत्पर रहता है और दूसरा व्यक्तिगत हर्ष विषाद आशा-निराशा एवं जीवन-संघातों से ऊपर उठकर निरपेक्ष द्रष्टा की भांति पथ प्रदर्शन करता है जिसके फलस्वरूप कलाकार अमर सृजक के आसन पर आसीन होने की प्रेरणा पाता है।

सूल्यांकन

यह तो हम प्रारम्भ में ही लिख आए हैं कि अज्ञेय और इलियट ने प्राय: सूक्ष्म भावों की व्यजना की है। उनके हृदय की गहराई मे जो अनत तरगे उठ रही हैं—वे जितनी ही अस्पष्ट भाषा मे लिपट कर व्यक्त हुई है, उतनी ही गंभीरता की व्यजना करती है और उनके भीतर अवस्थित अनिर्दिष्ट, अलक्ष्य, गम्भीर भावनाओ को रेखाओ मे वांध शब्दो मे रूपायित कर देती है। उनकी कथन-शैली बौद्धिक जकड़बन्दी में कसी हुई कुछ कुठित सी है और उनके भीतर जो कुछ अवरुद्ध है, उसे वे सिकोड़ कर व्यक्त करना चाहते है, बिखेरना नही चाहते, जिसके फलस्वरूप कई स्थलो पर उनकी भाषा दुरूह और भाव जटिल हो गए हैं।

इलियट अपने सृजन में अधिक फैली हुई अतर्प्रेरणाओ के सयमन का कायल है और उसने मासल अनुभूतियो को छांह सी सूक्ष्म एवं धुधली बनाकर प्रकट किया है, जिससे कई बार उसका कथित मन्तव्य मनोगुम्फो की तहो में घुसकर ही पकडा जा सकता है। 'एश वेन्सडे' (Ash Wednesday) की तृतीय कविता में आत्मिक-सघर्ष की क्रमिक स्थितियो का उल्लेख करता हुआ वह लिखता है।

"द्वितीय सोपान के प्रथम मोड़ पर जाकर
मैं मुड़ा और मैंने नीचे झांक कर देखा—
ठीक वैसी ही आकृति पतले खम्भे पर लिपटी हुई
वाष्प-मिश्रित दुर्गन्धपूर्ण वायु के साथ साथ
सीढ़ियों रूपी दानव से संघर्ष कर रही थी,
जिसके मुख पर आशा-निराशा की प्रवंचना का नर्तन था।

* * * *

द्वितीय सोपान के दूसरे मोड़ पर
मैंने उन्हें बल खाते, नीचे मुड़ते हुए छोड़ दिया।
अब वहां विभिन्न मुखाकृतियां न थीं और सीढ़ियों में अन्धकार था,
एक वृद्ध व्यक्ति के लार बहते हुए मुंह की भांति गीला, टेढ़ा-मेढ़ा,
जिसमें कुछ संशोधन न हो सकता था
अथवा एक बड़ी सी बूढ़ी मछली के दांतों भरे मुंह की तंग नली सा वह
जान पड़ता था।

* * * *

तृतीय सोपान के प्रथम मोड़ पर
बड़े बड़े झरोखों वाली एक खिड़की थी, जो घटी सदृश अंजीर फल से मण्डित थी।
और दूर फागैदार हरे भरे वृक्षों की शोभा और चरागाह का दृश्य—
हरे-नीले वस्त्रों से आवृत्त एक सुडौल मानवाकृति,
जो पुरानी ढंग की बाँसुरी से मई-मास के वातावरण को मोहक बना रही थी—
उसकी बिखरी केश राशि बहुत सुन्दर थी और भूरे बाल मुख के ऊपर लहरा रहे थे।

सुगन्धित पुष्प एवं भूरे केशपाश
सर्वत्र उच्चाटन, बाँसुरी का संगीत-स्वर, तीसरी सीढ़ी पर मस्तिष्क के
थमते और रुकते कदम डूबे हुए से निरन्तर पड़ते जा रहे थे,
तीसरे सोपान को पार करने के लिए आशा निराशा से परे सामर्थ्य की अपेक्षा थी।

*   *   *   *

प्रभु ! मैं इसके योग्य नहीं हूँ,
स्वामिन् ! मुझमें इतनी पात्रता कहाँ है,
केवल मौखिक बातें बनाना ही जानता हूँ।"

(At the first turning of the second stair
I turned and saw below
The same shape twisted on the banister
Under the vapour in the fetid air
Struggling with the devil of the stairs who wears
The deceitful face of hope and despair

*   *   *   *   *

At the second turning of the second stair
I left them twisting turning below;
There were no more faces and the stair was dark
Damp jagged like an old man's mouth drivelling beyond repair
Or the toothed gullet of an aged shark

*   *   *   *   *

At the first turning of the third stair
Was a slotted window bellied like the fig's fruit
And beyond the hawthorn blossom and a pasture scene
The broadbacked figure drest in blue and green
Enchanted the maytime with an antique flute,
Blown hair is sweet, brown hair over the mouth blown,
Lilac and brown hair;
Distraction, music of the flute, stops and steps of the mind
over the third stair,
Fading, fading, strength beyond hope and despair
Climbing the third stair.

* * * * *

Lord, I am not worthy
Lord, I am not worthy
but speak the word only.")

उपर्युक्त उद्धरण मे कवि की असामान्य चेतना पार्थिव स्थूल के तमसाच्छन्न जड़त्व की अवहेला कर आत्मा की पूर्णता के साधन में प्रवृत्त होना चाहती है। वह ज्यो-ज्यो परम सत्य के समीप पहुंचने के लिए अग्रसर होती है, त्यो-त्यों जगत् के अनिवार्य आकर्षण उसे घेर लेते है और पार्थक्य, अहंकार, बहुविध-बंधन एवं अपूर्ण-चेतना के दानव अबूझ कालिमा मे अधिकाधिक सघन होकर और भी भयावह लगते है। खिडकी की गुप्त , गहरी दरारो के मध्य से हृदय को जड़ीभूत कर देने वाले भौतिक आकर्षण के संघात, साथ ही मन-बुद्धि को भ्रमित करने वाली अनंतविध संभावनाओ के स्वर उसके दिव्य-संकल्प को शिथिल बना देते है और वह आगे बढ़ने मे अपनी असमर्थता प्रकट करता है।

यहा साधन-सोपान का रूपक देकर आत्मिक-संघर्ष की जिस अवस्था का उल्लेख किया गया है—वह जीव की साधारण स्थिति और वृहत्तर साधना के पार्थक्य का द्योतक है। साधना की प्राथमिक अवस्था से दूरस्थ उच्च उपान्त तक पहुंचने मे पार्थिव अंधकार और पूर्ण ज्योति के मध्य-प्रदेश मे ये भयजनित भूत सदैव मिला ही करते है, जो साधक के शिथिल चरणों को लड़खड़ा देने वाले होते है। अंत - स्थित आत्मा के प्रयोग एवं वाह्य-जगत् के गुण-कर्म, जहां प्रमाद, स्खलन एव अज्ञान निम्नगा-प्रकृति के साथ क्रियाशील होकर सम्मिश्रित हो जाते है तथा पारबौद्धिक समष्टि-चैतन्य एवं कर्म-प्रवाह के बीच जो भेद है—उसे आंतरिक आत्मानुभव से लक्ष्य करके कवि ने अत्यंत सूक्ष्मदर्शिता के साथ निरूपित किया है।

प्रथम मार्ग के आरोहण के समय उसे जो नीचे झाँकने पर प्रेतात्मा दीख पड़ती है उसे 'उसी शक्ल का' (The same shape) लिखकर और भी भय की व्यंजना की गई है। क्या यह वही प्रेतात्मा तो नहीं है जिससे वह दूर भाग रहा है और जो सीढ़ियों में भी उसका पीछा नहीं छोड़ती? अथवा और भी वीभत्स बनकर उसकी तमसावृत्त चेतना पर—स्तब्ध वातावरण में—उसका अपना ही प्रतिबिम्ब तो नहीं कौंध जाता जो उसके अन्तर में विक्षोभ और उन्माद मचाने का उपक्रम करता है और उसकी आध्यात्मिक-शोभा के पट को सदा के लिए बन्द कर देना चाहता है। 'दि वेस्ट लैंड' (The Waste Land) में उसके हृदय की यह अन्धकारमयी जड़ता कचोटती और कसमसाती हुई शब्दों में प्रकट होकर पहले से भी अधिक भय उपजाती है।

"द्वार में ताली घुमाने की आवाज़ मैंने एक बार सुनी,
और वह तत्क्षण एक बार ही घूम गई।"

(heard the key
Turn in the door once and turn once only)

कवि की बुद्धि परम सत्य की खोज में इतस्ततः भटकती फिरती है किन्तु सम्पूर्ण क्षमता के साथ चरम की भावना करने पर भी उसका प्रयास निष्फल हो जाता है। उसकी सम्वेदनाएँ ज्यों-ज्यों प्रबुद्ध चैतन्य में समाविष्ट होने के लिए उद्बुद्ध होती है और अपनी आत्मस्थ सत्ता को जितना ही उस ओर उन्मुख करके वह स्थूल गुण-कर्मों की क्रीड़ा एवं भौतिक-आसक्तियों से अपने मन को पृथक् करने का प्रयत्न करता है, त्यों-त्यों उसकी कुत्सित और दुर्दान्त वासनाएँ साकार होकर उसके मार्ग को रोक लेती हैं। वह सांसारिक प्रलोभनों से दूर भागना चाहता है तथापि

"यद्यपि मैं इन वस्तुओं की इच्छा करना नहीं चाहता,
तो भी विशाल खिड़की से पथरीले समुद्री किनारे तक श्वेत वस्त्रों से
आवृत्त समुद्री जहाज़ों के पाल अभी भी समुद्र की ओर दौड़े जा रहे हैं।
अटूट पंखों को धारण किये वे उधर ही उड़े जा रहे हैं।

* * * * *

और मेरा खोया हृदय झड़े पुष्पों और डूबते हुए से सामुद्रिक स्वरों में
रम कर
कभी कुंठित होता और कभी हर्ष मनाता है।

मेरे दुर्बल प्राण झुके हुए स्वर्ण-दंड और विस्मृत समुद्री-सुगन्ध के लिए
कभी शीघ्रता से मचल उठते हैं—
और कभी लवा पक्षी एवं चक्कर काटती बुलबुल की चीख को सुनकर
सजग हो जाते हैं ।
मेरी अज्ञ दृष्टि हाथी-दांत मण्डित द्वारों के मध्य शून्य आकारों की
सृष्टि कर देती है ।
और मेरी ग्रहण-शक्ति रेतीली ज़मीन की लवणमय गन्ध को
पुनर्जीवित करके उकसा देती है ।"

("Though I do not wish to wish these things,
From the wide window towards the granite shore
The white sails still fly seaward, seaward flying
unbroken wings........
And the lost heart stiffens and rejoices
In the lost lilac and the lost sea voices
And the weak spirit quickens to rebel
For the bent golden-rod and the lost sea-smell
Quickens to recover
The cry of quail and the whirling plover
And the blind eye creates
The empty forms between the ivory gates
And smell renews the salt savor of the sandy earth.")

भगवत्सत्ता और तदन्तर्गत जीव की सद्बुद्धि आत्मोत्थान का एक छोर है और दूसरे छोर पर असद्-विवेक की प्रच्छन्न-शक्ति हमारी क्षमताओं को कुंठित कर देती है और हम विशुद्धतर अनुभूति मे पैठने से पूर्व ही तामसी वृत्तियों की-प्रेरणा से निम्न-स्तर पर खिंच आते है, जो हमे भौतिक आकर्षणो की मृग-मरीचिका मे उलझा लेती हैं ।

एक अन्य स्थल पर नदी के स्तब्ध, विषादमय वातावरण को वर्णित करने के लिए इलियट ने अपनी व्यजना को इतना सूक्ष्म-रूप दे दिया है कि पाठक को अपने मस्तिष्क में पूरा खाका खींचने के लिए पर्याप्त जोर लगाना पड़ता है ।

"नदी का वितान छिन्न-भिन्न हो गया है, अंतिम पत्तों की उंगलियां
गीले किनारे को जकड़े हुए उसके भीतर धंसी हुई हैं,
हवा अनसुनी ही भूरी ज़मीन में से गुज़र जाती है ।"

(The river's tent is broken the last fingers of leaf
Clutch and sink into the wet bank The wind
Crosses the brown land unheard')

उपर्युक्त पंक्तियों में नदी के तट पर छाये हुए भरे ग्रीष्म-कालीन वृक्षों के वितान पुनः पतझड़ में पत्रहीन नग्न ठूंठों का दृश्य जो शुष्क उंगलियों के सदृश पानी को जकड़े हुए सा प्रतीत होता है और तदनन्तर हवा की निस्तब्धता जो समस्त वातावरण को और भी मनहूस एवं उदास बना देती है—आदि कवि के मन्तव्य को कई बार पढ़ने पर ही जाना जा सकता है।

इलियट की भांति अज्ञेय की भाव-व्यंजना भी सांकेतिक है, उन्होंने अपने अन्तर्भावों को अधिकतर प्रतीकों एवं रूपकों द्वारा प्रकट किया है जिससे उनके गीतों की पंक्तियां कहीं कहीं अधिक चिंतन के कारण दुर्बोध हो गई हैं। 'भादों की उमस' शीर्षक कविता बोधगम्य होती हुई भी पूर्णतया समझ में आने के लिए किंचित् मानसिक-श्रम की अपेक्षा रखती है।

"सहम कर थम से गये हैं बोल बुलबुल के,
मुग्ध, अनझिप रह गये हैं नेत्र पाटल के,
उमस में बेकल अचल हैं, पात चलदल के,
नियति मानो बंध गई है व्यास में पल के।
* * * * *
लक्ष्य कर कौंधी तड़ित उर पार बादल के
वेदना के दो उपेक्षित वारि-कण ढलके
प्रश्न जागा निम्नतर स्तर बेध हृत्तल के—
छा गये कैसे अजाने सहपथिक कल के ?"

और निम्नलिखित कविता में हारिल पक्षी का रूपक देकर कवि ने उससे परे किसी और ही गूढ़ अर्थ की व्यंजना की है।

'उड़ चल, हारिल, लिए हाथ में
यही अकेला ओछा तिनका—
ऊषा जाग उठी प्राची में
कैसी बाट, भरोसा किनका !
शक्ति रहे तेरे हाथों में—
छूट न जाय यह चाह सृजन की !

शक्ति रहे तेरे हाथों में—
रुक न जाय यह गति जीवन की !

ऊपर ऊपर ऊपर ऊपर
बढ़ा चीरता चल दिङ्-मंडल
अनथक पंखों की चोटों से
नभ में एक मचा दे हलचल !

तिनका ? तेरे हाथो में है
अमर एक रचना का साधन—
तिनका ? तेरे पंजे में है
विधना के प्राणों का स्पन्दन !

कांप न, यद्यपि दशों दिशा में
तुझे शून्य नभ घेर रहा है,
रुक न, यद्यपि उपहास जगत् का
तुझको पथ से हेर रहा है ।"

कवि उपर्युक्त कविता मे पक्षी को सबोधन करके जीव की ऊर्ध्वगामी वृत्तियों की ओर निर्देश करता है । यद्यपि सब कुछ मिथ्या है, तो भी वह महत्वाकाक्षा को नहीं तजता और सिहरती इच्छाए संजोए अनन्त-पथ में उड़ता जाता है ।

"मिट्टी निश्चय है यथार्थ, पर
क्या जीवन केवल मिट्टी है ?
तू मिट्टी, पर मिट्टी से उठने
की इच्छा किसने दी है ?

आज उसी ऊर्ध्वंगज्वाल का
तू है दुर्निवार हरकारा
दृढ़ ध्वजदंड बना यह तिनका
सूने पथ का एक सहारा ।

मिट्टी से जो छीन लिया है
वह तज देना धर्म नहीं है
जीवन साधन की अवहेला
कर्मवीर का कर्म नहीं है !

तिनका पथ की धूल, स्वयं तू
है अनन्त की पावन धूली—
किन्तु आज सूने मरु-पथ में
क्षण में बद्ध अमरता छू ली।"

ऐसा लगता है कि अज्ञेय और इलियट इन दोनों कवियों के हृदय में जो भीतर घुमड़ रहा है और घुमड़ता रहा है—वह अटकता हुआ सा प्रकट होता है। वस्तुतः उनकी कविताएं जितना व्यंजित कर पाती हैं—उससे अधिक गहरे अर्थ से वे पूर्ण हैं और एकाग्र मन से चार बार पढ़ने पर ही समझी जा सकती हैं।

'उद्धारकों से' शीर्षक के अन्तर्गत अज्ञेय ने सांसारिक वितृष्णा एवं मिथ्या-प्रशंसा के उन दानवों का उल्लेख किया है, जिनकी चपेट में बड़े बड़े साधकों की साधनाएं भी छटपटाती रहती हैं।

उद्धारकों से

'तुम कहते हो कि यह राक्षस है ?
अपने अन्तस्तल में तुम सभी उस सुनहले परों वाले जादू के
घोड़े के आकांक्षी हो जो राक्षस के किले के भीतर बंधा हुआ है।
तब तुम्हारे यह चिल्लाने का क्या मूल्य है कि राक्षस लोलुप
और अनाचारी है ?"

अन्तःस्थित आत्मा के वे साधन जिनसे जीव का कल्याण होता है, भौतिक-आकर्षणों से सहज ही पराभूत हो जाते हैं जिससे इस जंजाल से निकलने का मार्ग दुर्गम और अनिश्चित हो जाता है। जीवन कितना क्षणभंगुर है और मानवीय आकांक्षाओं का दम्भ कितनी भयंकर विडम्बना !

"आज चल रे तू अकेला !
आज बैचुल-सा स्खलित हो असह माया का झमेला !
जगत की क्रीड़ा-स्थली में
सखियों के साथ खेल—
सघन कुंजों में पड़े
सूने स्त्रियों का प्यार झेला—

आज वह आया बुलाने
जो सदा निस्संग ही है—

कूच का सामान कर अब
आ गई प्रस्थान बेला ।

दुःख कैसा ? मोह क्यों ? क्या
सोचता अपना-पराया ?
बेधड़क हो साथ ले चल
जो कभी तू साथ लाया !"

जीवन की क्षणभंगुरता का उल्लेख करते हुए इलियट ने भी अपनी एक कविता में मनुष्य-जीवन को निर्जन प्रदेश मे पड़े हुए उस चट्टान की छाया बताया है, जिसकी प्रतीति मात्र तो होती है, किन्तु जो कुछ भी नही है और मरुस्थल में जल-विहीन सूखी नदी के सदृश है । जब मृत्यु आती है और मनुष्य अपने चिर-स्थायी घर के लिए प्रस्थान करता है तो सासारिक-ऐश्वर्य स्वप्नवत् हो जाते है और यह मिट्टी का शरीर अतत. मिट्टी में ही मिल जाता है ।

"केवल
वहां उस लाल चट्टान के नीचे छाया है,
(इस लाल चट्टान की छाया के भीतर आ जाओ)
और मैं तुम्हें दोनों से भिन्न कुछ और ही दिखाऊंगा
प्रातः तुम्हारी छाया तुम्हारे पीछे क़दम भरती हुई
अथवा संध्या समय तुम्हारी छाया तुमसे मिलने के लिए उठती हुई,
मुट्ठी भर धूल में किस प्रकार भय समाया हुआ है—यह मैं तुम्हें दिखाऊंगा ।"

("Only
There is shadow under this red rock,
(Come in under the shadow of this red rock),
And I will show you something different from either
Your shadow at morning striding behind you
Or your shadow at evening rising to meet you;
I will show you fear in a handful of dust.")

पलायनवाद और निर्व्यक्तिकरण

इलियट ने अपने प्रख्यात निबन्ध 'ट्रेडीशन एण्ड इनडिविजुअल टैलेंट' (Tradition and Individual Talent) में लिखा है "काव्य व्यक्तित्व की अभिव्यंजना नहीं वरन व्यक्तित्व से पलायन है।" इलियट की उपर्युक्त विचारधारा से प्रभावित होकर अज्ञेय ने भी अपने निबन्ध 'परिस्थिति और साहित्यकार' में इसी प्रकार के विचार प्रकट किए हैं। इसके अतिरिक्त ये दोनों ही कलाकार के व्यक्तित्व और उसकी कृति को दो भिन्न वस्तुएं मानते हैं। उनके मत में विशिष्ट प्रतिभाशाली व्यक्ति की चेतना सदैव ही उसके चतुर्दिक वातावरण से ऊपर उभरी रहती है और उसकी केन्द्रानुगामिनी शक्ति फैली हुई बहिर्मुखी वृत्तियों का अनवरत निरोध करती रहती है जिसके फलस्वरूप उसके मनोवेगों में चाहे कैसी ही प्रचण्ड आत्या क्यों न हो—एक प्रकार की सघन समता में दीप्त होते हैं। अज्ञेय के शब्दों में 'कलाकार निरन्तर अपने व्यक्तिगत मन को अपने तात्कालिक अधिक क्षणिक अस्तित्व को एक महानतर मन में और एक विशालतर अस्तित्व के ऊपर निछावर करता रहता है, अपने निजी व्यक्तित्व को एक वृहत्तर व्यक्तित्व के निर्माण के लिए मिटाता रहता है।' आगे उन्होंने इलियट के अव्यक्तिवादी सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हुए कलाकार की सृजन प्रक्रिया को उसकी व्यक्तिगत अनुभूतियों से पृथक् कर दिया है और कवि-मानस को उसकी अनुभूत उत्कट धारणाओं को अप्रत्याशित रीति से व्यक्त करने का माध्यम माना है। 'रूढ़ि और मौलिकता' में अज्ञेय लिखते हैं "कलाकार का निर्माण निरी निजी अनुभूतियों से नहीं होता—कलावस्तु बनती है उन अनुभूतियों से—उन अनुभूतियों और भावों के संगम से जिनमें कवि स्वयं अलग, तटस्थ है, जिनपर उसका मन काम कर रहा है।' इलियट ने कवि की इस मानस प्रक्रिया की तुलना प्लेटीनम के उस तन्तु से की है जो सल्फर डायोक्साइड और ऑक्सीजन गैसों को मिलाकर सल्फ्यूरस एसिड में परिवर्तित कर देता है किन्तु स्वयं में कुछ भी परिवर्तन नहीं होता और अज्ञेय ने मानो इसी बात को अधिक सुस्पष्ट करने के लिये कवि के मन की उपमा उस भट्टी से दी है जिसकी उष्णता से विभिन्न तत्वों से बनी हुई अनेक धातुएं मिलकर एकरस तो हो जाती हैं किन्तु भट्टी का भट्टी के मालिक अथवा धातुओं से कोई सम्बन्ध स्थापित नहीं होने पाता।

इसमें सन्देह नहीं कि श्रेष्ठ-रचना स्रष्टा की बौद्धिक शक्तियों से उद्भूत होकर उसके चिरपरिचित जगत् के लिये अपरिचित सी बन जाती है, तथापि मनोवैज्ञानिक पद्धति से विश्लेषण करने पर यह सर्वमान्य है कि प्रत्येक कला के

निर्माण में कुछ ऐसे तत्त्व सन्निहित रहते हैं, जो प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से कलाकार के चिर-सहचर मनोवेगों से सघटित होते हैं और जिनके फलस्वरूप किसी भी कला में उसके स्रष्टा के व्यक्तित्त्व एव अन्तर्नुभूतियों की रागात्मक अभिव्यक्ति अवश्यम्भावी है। कलाकार के मूल-भाव और उसकी अरूप सवेदनाएं अनजाने ही उसके रचना-तंतुओ मे आ रमती हैं और वह अपनी प्रतिभा से उन्हे ऐसे साचे में ढाल देता है कि उनमें पृथकत्व होते हुए भी अज्ञात रूप से उसके व्यक्तित्व का संस्पर्श तो बना ही रहता है।

अज्ञेय ने स्थान स्थान पर अपनी सृजन-प्रक्रिया मे तटस्थता और स्वात्म से सम्पूर्ण पलायन की घोषणा की है। उपन्यास के नायक शेखर के जीवन-दर्शन और विचारो को उन्होने अपने जीवन-दर्शन से भिन्न माना है। 'चिता' की भूमिका में वे लिखते है, "काव्य-रचना मूलत. अपने को अपनी अनुभूति से पृथक् करने का प्रयत्न है—अपने ही भावो के निर्व्यक्तीकरण (depersonalisation) की चेष्टा। बिना इसके काव्य निरा आत्म-निवेदन है और सच होकर भी इतना व्यक्तिगत है कि काव्य की अभिधा के योग्य नही है—सर्वजनीनता की कसौटी पर खरा नही उतरता।" इस प्रकार उन्होने 'विश्वप्रिया' और 'एकायन' मे पुरुष और स्त्री के चिरतन-संघर्ष और उन दोनो के दृष्टिकोण से मानवीय प्रेम के 'उद्भव, उत्थान, विकास, अन्तर्द्वन्द्व, ह्रास अतर्मन्थन, पुनरुत्थान और चरम संतुलन' की अन्विति का प्रयास बताकर अपनी निरपेक्ष तटस्थता की दुहाई दी है। किन्तु इसके विपरीत हमें तो लगता है कि अज्ञेय की कृतियो मे औरो से भी अधिक इच्छापूर्ति का अश विद्यमान् है और पलायनवाद एव निर्व्यक्तिकता की ओट मे उन्होने अपने आत्म-घटित एव स्वानुभूत-तथ्यों को ही व्यक्त किया है। क्या 'चिन्ता' की अस्पष्ट, अरूप भाव-व्यंजना मे लेखक के अपने व्यक्तिगत, लौकिक प्रेम की अभिव्यक्ति नही हुई है? क्या वह 'विश्व-प्रिया' और 'एकायन' में पुरुष एव नारी-जीवन के किसी गूढ़-सत्य अथवा अन्तर्मन्थन की अभिव्यजना कर पाया है? हमारे दृष्टिकोण से 'चिन्ता' मे स्वकीया की अपेक्षा परकीया-प्रेम की अधिक व्यंजना होने से ऐसा प्रतीत होता है कि लेखक का हृदय किसी के द्वारा बुरी तरह से झकझोरा गया है, जिसके कारण उसे पद-पद पर कभी आशा, कभी निराशा और कभी आसक्ति अथवा घोर विरक्ति होती है। परकीया से अपनत्त्व का भाव न होने के कारण वह उसकी मादक रूप-माधुरी के आस्वाद के लिए कभी तडप उठता है—

"तेरी आंखों में क्या मद है जिसको पीने आता हूं—
जिसको पीकर प्रणय-पाश में तेरे मे बंध जाता हूं।"

कभी वह उस सुन्दरी नवयौवना के चरणों में लोटकर (जिससे उसको कुछ न कुछ दूरी तो बनी ही रहती है और कदाचित् जिसकी यह दूरी ही उसके आकर्षण का कारण है) अपने अस्तित्व तक को उसमें मिटा देने की आकांक्षा रखता है।

'मैं जन्म जन्मान्तर की अपूर्ण तृष्णा हूं, तुम उसकी असम्भव पूर्ति। इस तृष्णा और तृप्ति का कहां मिलन होगा, कहां एक दूसरे में समाहित हो जाएंगी यह मैं नहीं जानता, न जानने की इच्छा ही रखता हूं। इस तृष्णा में ही इतना घना आनन्द भरा पड़ा है कि मुझे और किसी चाह के लिये स्थान नहीं रहता।'

और कभी वह अपना छोटा सा नीड़ बसा कर उसके हृदय में जीवन की मधुर पूर्ति चाहता है—

'तुम और मैं मिलकर एक छोटे से संसार के स्वामी हैं। तुम्हारी प्रेरणा में मैं ध्वनित हो उठता हूं और उस ध्वनि की प्रेरणा से हमारी चिरन्तन प्रणय कामनाएं पूर्णीकरण में लीन हो जाती हैं।

यही हमारे प्रेम का छोटा-सा किन्तु सर्वत्र सम्पूर्ण दरबार है।'

प्रेम के शिथिल क्षणों में अपनी कथित प्रेयसी के लिए लेखक के हृदय में कभी कभी परकीया भाव इतना उत्कट होकर जाग्रत होता है कि वह तीव्र घृणा से बोलता जाता है—

'तुम में यह क्या है जिससे मैं डरता हूं और घृणा करता हूं? यह सहज छाया क्या है जिसको भेद कर मेरी दृष्टि पार तक नहीं देख सकती?

क्या यह तुम्हारे गत जीवन की ही छाया है, केवल तुम्हारे जीवन का एक अंग, जिस पर मेरे जीवन की छाप नहीं पड़ी—एक अंग जिस पर दूसरों का अधिकार रहा है और जिसमें तुमने दूसरों का प्यार पाया है। क्या यह तुम्हारी स्वतन्त्र और विशिष्ट आत्मा के प्रति ईर्ष्या है, केवल ईर्ष्या?'

और यह ईर्ष्या कभी कभी इतनी प्रबल उठती है कि वह उससे पृथक् रहने और उसे दूर भगाने को उद्यत हो जाता है—

'मैं तुम्हें किसी भी वस्तु की असूया नहीं करता—किन्तु तुम सब कुछ लेकर चली जाओ, मेरे जीवन में से सदा के लिए लुप्त हो जाओ।

तुमने मुझे वेदना के अतिरिक्त कुछ भी नहीं दिया, मुझ में वही वेदना जमकर और वर्द्धमान होकर पुष्पित हो गई है।

तुम चाहो, तो उन पुष्पों को तोड़ ले जाओ—जो वस्तु मैंने अपने जीवन की आग में तपाकर और भस्म करके सिद्ध की है उसे अभिमानपूर्वक सदर्प ले

जाओ, जैसे कोई साम्राज्ञी किसी दास का तुच्छ उपहार ग्रहण करती है—किन्तु लेकर फिर तुम चली भर जाओ, मेरे जीवन के क्षितिज से परे, जहां तुम्हारे उत्ताप का आलोक भी मेरे दृष्टिगोचर न हो।"

किन्तु न जाने परकीया-प्रेम मे क्या जादू होता है, जो प्रेमी को दूर ढकेलता हुआ भी अपनी ओर बरबस खींचता है और यदि कभी मन मे विलगाव हो भी जाता है तो आकर्षण की क्रिया तत्क्षण प्रारम्भ हो जाती है। निम्नलिखित उद्धरण मे लेखक के प्रेम की मानो सम्पूर्ण कहानी अकित हो गई है।

"मै केवल एक सखा चाहता था।

मेरे हृदय मे अनेको के लिए पर्याप्त स्थान था। ससार मेरे मित्रो से भरा पडा था। किन्तु यही तो विडम्बना थी—मै असंख्य मित्र नही चाहता था, मै चाहता था केवल एक सखा।

नियति ने मुझे वंचित रखा। इसलिए नही कि मैने कामना नहीं की, या खोज मे यत्नशील नही हुआ। कितनी उग्र कामना की थी। और प्रयत्न? मैने इसी खोज मे विश्व छान डाला और आज यहा हू.....

नही, नियति को दोष क्यो दू? कारण कुछ और था।

मेरे ही हृदय मे कुछ ऐसा कठोर, ऐसा अस्पृश्य, ऐसा प्रतारणपूर्ण विकर्षण था—वह कठोर था, किन्तु सूक्ष्म, निराकार था, किन्तु अभेद्य.... मेरे समीप आकर भी कोई मुझ से अभिन्न नही हो सकता था। उस अज्ञेय तत्त्व पर किसी का कुछ प्रभाव नही पडता था.....

वह था क्या? अहकार?

नही, वह था अपने बल का अदम्य अभिमान.... कि मै केवल पुरुष नही, केवल मानव नही, एक स्वतन्त्र और सक्रिय शक्ति हू।

पता नही कैसे, तुम मेरे बहुत समीप आ पाई थी ... और उस अस्थायी अत्यन्त सान्निध्य मे मै काप गया था।"

'एकायन' मे जिस नारी-हृदय के आलोड़न को व्यक्त करने का प्रयास किया गया है—वह भी पुरुष के अह के शालीन आवरण मे लिपट कर खोगया है। स्त्री की समग्र इच्छाओ को उसने अपने अह मे समेट कर पुरुषत्त्व का दम्भ और नारी की करुणा तथा एक की गौरव-भावना मे दूसरे की आत्म-प्रणति का निदर्शन किया है, जिसमे नारी के आत्यन्तिक मनोभावो की उपेक्षा की गई है। आरम्भ से अन्त तक उस मे नारी का आत्मिक-संघर्ष नही, वरन् किसी निर्मम प्रणयी के विरह-व्यथा की छटपटाहट है और यह निर्मम प्रणयी बहुत कुछ लेखक से मिलता-जुलता है।

दया से आँख मूँद लो देव !
नहीं माँगूँगी मैं वरदान,
तुम्हें अनदेखे देकर भेंट—
तिमिर में हूँगी अन्तर्धान ।
ध्यान मत दो तुम मेरी ओर—
न पूछो क्या लाई हूँ साथ !
गान से भरा हुआ यह हृदय—
अर्घ्य का चिर-सम्भार में हाथ !
पुजारिन क्षमा हूँ मैं नाथ !"

इसके अतिरिक्त 'शेखर' उपन्यास और 'विपथगा' एवं 'परम्परा' की अधिकांश कहानियों में भी रचयिता के अपने जीवन की गहरी छाप है और समष्टि की धुरी पर खड़ा रहकर भी वह व्यष्टि के इर्द-गिर्द चक्कर काट रहा है। कहने की आवश्यकता नहीं कि इलियट अपनी कृतियों में अज्ञेय की अपेक्षा अधिक तटस्थ रह सका है। उसकी उद्भावना में समुचित आत्म निर्देश के साथ साथ निर्मल दृष्टि और निर्मम संवेदनशीलता है जो उसे परखने की अचूक प्रतिभा प्रदान करती है। उसकी कथन-भंगी ठोस और संयमित, व्यंजना अस्पष्ट और दुरूह, कथानक पहेली से गूढ़ और रहस्याच्छन्न जिसमें जोर लगाकर ही घुसा जा सकता है। उसके चरित्रों में द्वन्द्व एवं दशा तथा भावों में एक ऐसा तनाव और स्थिरता है जो उसके आन्तरिक विश्वासों और मनोवेगों के अनुरूप गम्भीरता लिए हुए है। अज्ञेय की कृतियों में आत्म विश्लेषण की प्रवृत्ति अधिक दृष्टिगत होती है और इलियट की रचनाओं में नैतिक प्रतिमानों के सम्बोधन का आग्रह। किन्तु इससे इन्कार नहीं किया जा सकता कि दोनों ने ही मानवीय भावनाओं को अपनी मार्मिकता में रमकर आँका और अंकित किया है।

कवि और आलोचक

अनवरत काव्य साधना के बावजूद अज्ञेय और इलियट की प्रतिभा की जागरूकता आलोचना में भी द्रष्टव्य है। कविता में जो उनके सूक्ष्म स्पन्दन अपने तक ही सीमित न रहकर दूसरों तक पहुँचने के लिए पथ में बिछ गए हैं—वे आलोचना में अधिक व्यावहारिक और घनात्मक बनकर गम्भीर रूप में प्रकट हुए हैं, जिससे उनकी सर्जक प्रक्रिया की परिपक्वता का आभास मिलता है। इलियट अपनी प्रारम्भिक कृति 'प्रूफ्रॉक एण्ड अदर आब्जर्वेशन्स' (Prufrock and Other Observations) में विश्व के नामसी-स्वरूप से भिज्ञ होकर जीवन के पुनरव

के लिए एक नवीन मार्ग का अनुसंधान करने को तत्पर होता है। मानव-जीवन को अत्यंत निकट मे देखने पर वह उन भ्रामक, मिथ्या स्वप्नों से जग जाता है, जो अब तक उसके विवेक को अधा किए थे। यथार्थ के विकृत रूप को देखकर वह सहसा काप उठता है और उसकी चेतना डूबने सी लगती है।

"हम देर तक जल-कक्षो में
लाल और भूरे रंग की समुद्री-घास की मालाओ से सुसज्जित जलकन्याओं
के साथ विचरते रहे—
जब तक कि हमें मानवीय-स्वरो ने सजग न कर दिया और हम डूबने लगे।"

("We have lingered in the chambers of the sea
By sea-girls wreathed with sea-weed red and brown
Till human voices wake us, and we drown.")

'जेरोन्शन' (Gerontion) और 'दि वेस्ट लैण्ड' (The Waste Land) मे जर्जर सस्कृति के खोखलेपन और विश्वासहीन जीवन की शून्यता का गम्भीर स्वर सुन पड़ता है, जो 'हॉलो मेन' (Hollow Men) और 'एश वेन्सडे' (Ash Wednesday) मे और भी भयानक हो गया है। लगता है—जैसे कवि भौतिक विरूपता से घबराकर मानव-जीवन के शाश्वत-सौन्दर्य मे रमना चाहता है और लौकिक विषमताओं का नैतिक समाधान ढूढ रहा है।

"भाग्यवान् बहिन, पवित्र मां, निर्झर एवं उद्यान की देवि !
हमें मिथ्यात्व की विडम्बना से क्षुब्ध न करो।
हमें चिन्ता करना और चिन्ता से विनिर्मुक्ति
तथा इन चट्टानों के मध्य चुपचाप बैठना सिखा दो।
इन चट्टानों के मध्य भी
हमारी शान्ति प्रभु की इच्छा में ही निहित है।
भगिनी, मां और नदी एवं समुद्र की देवि !
हमें प्रभु से पृथक् होने की व्यथा न सहनी पड़े,
और हमारे आर्त्त-स्वर को उस तक पहुंचा दो।"

("Blessed sister, holy mother, spirit of the fountain, spirit
of the garden,
Suffer us not to mock ourselves with falsehood
Teach us to care and not to care
Teach us to sit still
Even among these rocks,
Our peace in His will

जैनेन्द्र और मेरीडिथ

जैनेन्द्र कुमार

जन्म—ईसवी सन्—दिसम्बर, १९०५

जन्मस्थान—कौडियागंज (अलीगढ़)

जॉर्ज मेरीडिथ

जन्म—ईसवी सन्—१२ फरवरी १८२८

मृत्यु—ईसवी सन्—१८ मई १९०९

जन्मस्थान—पोर्ट्समाउथ (इंगलैण्ड)

जैनेन्द्र और मेरीडिथ की साहित्य-साधना और रचनाकाल मे लगभग अर्द्ध-शताब्दी का अन्तर है, तो भी दोनो अपने अपने युग मे एक नवीन जीवन-दिशा के अन्वेषी और तत्त्व-जिज्ञासु के रूप में अवतीर्ण हुए है। कथा-साहित्य की रूढ़िवादी शृंखलाओं को विच्छिन्न करके जीवन के निष्क्रिय-पक्ष मे झांकने वाले जैनेन्द्र एक नवीन प्रयोगी है और मेरीडिथ विक्टोरियन-युग की चिर-प्रयोग-शील साहित्यिक-मान्यताओं से ऊब कर अन्तर्वैयक्तिक तथ्य-जगत् का गम्भीर विश्लेषक, जहां नैत्यिक जीवन के अर्द्ध-व्यक्त अनुभव-खण्डो मे टकराकर वह आतरिक-कुण्ठाओ के सूक्ष्म नियोजन मे व्यस्त है और मानव-मन की पेचीदा गुत्थियो को यथावत् सुलझाने के प्रयास मे उसी अनुपात से उलझता गया है। यद्यपि मेरीडिथ की सी उदात्त कल्पना जैनेन्द्र मे नहीं है, तथापि दोनों की स्वभावज-विशेषताएं और शोधक-वृत्तिया उन्हे समानता के एक सूत्र मे बांधती है, प्रत्युत् यो कहे कि दोनों ही किसी एक स्कूल अथवा गुट्ट के न होकर नई मंजिल तय करने वाले राही है, जो जीवन के वस्तुगत-सत्य को आग्रहपूर्वक पकडने के चिर-आकाक्षी है और व्यष्टि के वृत्त से निकल कर समष्टि-चेतना के दायित्व को जागरूक-बुद्धि से स्वीकार करते है।

जैनेन्द्र की कृतियो मे उनकी मानसिक कुण्ठाए अत्यन्त अनुशासित होकर व्यक्त हुई है। लेखक प्रायः मानव-जीवन की विरूपता का क्षीण सूत्र हमारे हाथों में थमाकर मनोभावनाओं की सतह पर ऐसे धमकते कदमो से चलता है कि कभी

कारण वह अपने साध्य की अतिशयता का विधायक न होकर उसकी प्रभविष्णुता को क्षति पहुंचाता है। कहने की आवश्यकता नही कि तत्कालीन उपन्यासकारों मे मेरीडिथ अपनी उच्च-मनोभूमि के कारण सामान्य धरातल से ऊपर उठ गया है और मानव-जीवन के यथातथ्य ग्राह्य को इतने वर्गो पर बिखेर सका है कि उसके द्वारा अकित टेढ़ी मेढी लकीरे असीम का स्पर्श करने लगी है।

जैनेन्द्र मे वस्तु-अकन की प्रवृत्ति अधिक होने के कारण जीवन के सूक्ष्म और मार्मिक पहलुओ को दर्शाने की क्षमता कम है, मेरीडिथ की सूक्ष्म-दृष्टि निगूढ़ मनोगतियो एव मानसिक तथ्यवाद की टोह मे रहने के कारण उन प्रच्छन्न स्तरों को भी भेद सकी है, जहां मानव-स्वभाव की अनास्थाओ एव चारित्रिक त्रुटियों का निरापद अवस्थान है। जैनेन्द्र ने व्यक्ति की गुप्त, किन्तु दुर्दान्त वासनाओ के ऊपर औपचारिक आवरण चढाया है, मेरीडिथ ने सूक्ष्म-द्रष्टा की भाति परिस्थितियों से खिलवाड़ न करते हुए मानवीय-विकृतियो को निरावरण किया है। जैनेन्द्र के खण्ड-चित्रो में उद्‌बुद्ध-मन की विपुल प्रेरणा और आन्तरिक कर्म-निष्ठा की गहरी छाप है, उन्होने सधी रेखाओ से कल्पना को बलिष्ठ और गतिशील बनाया है, मूल्य आकने की पुरानी दृष्टि बदली है, तर्कमूलक पद्धति पर नवीन जीवन-तथ्यों का उद्‌घाटन किया है, किन्तु मेरीडिथ मे जो आत्म-प्रत्यय का ओज, व्यापक अंतर्नुभूति और कथा-शिल्पी की सप्राण चेष्टा है—वह जैनेन्द्र में नही। मेरीडिथ की कृतियो मे मानव-जीवन के केवल खण्ड-चित्र ही नही है, प्रत्युत् उसकी बृहत्तम पट-भूमि मे जीवन को एक विशेष दृष्टि से देखने की साध , उसके मार्मिक एवं विविध पहलुओ का पारिपार्श्विक चित्रण, मनोवैज्ञानिक बारीकियो से विश्लेषण-वृत्ति का अतिशय्य और प्रत्यक्ष अनुभव की स्फूर्ति के बावजूद आंतरिक विश्वास को मूर्त्त करने का प्रयास है। जैनेन्द्र अपने वैयक्तिक दृष्टिकोणो को तूल देकर कई बार कृत्रिम वातावरण की सृष्टि करते है। उनकी कल्पना का बारीक सूत्र बहुधा टूट गया है, वे कल्पना और तर्क के सहारे मानव-मस्तिष्क की उलझी हुई गुत्थियो को सुलझाने का प्रयत्न करते है, किन्तु उनका शब्दाकन कभी कभी इतना तर्ककर्कश और अस्वाभाविक हो जाता है कि घटनाओ और पात्रो के साथ ठीक सामजस्य नही हो पाता। जैनेन्द्र के कृतित्व मे दार्शनिकता का पुट भले ही हो, उनके भीतर का कलाकार जिन्दगी मे मुह चुरा कर आखें मूद लेना चाहता है, अतएव उनकी बुद्धिलब्ध स्थापनाओ मे दुरूह जटिलता तो मिल सकती है, किन्तु जीवन का वैचित्र्य नही, लगता है जैसे जीवन के कठोर तल पर टकराकर उनका बचा चितन बिखर जाता है और वे अपनी अपर्याप्तता से सन्त्रस्त हो बीच में ही घुटने टेक देते हैं।

करके इस तस्वीर मे कील देना होगा। यह हो जाएगा तब कहेगा,—ओ तू ! —वहीं रह ! और ओरे, नग्न प्रार्थी मनुष्य ! उस अंधेरे स्तूप को छोड़। वहा अंधेरा है, वहा उत्तर नही है। मुड़ आ कठोर पृथ्वी की ओर, उसे उर्वरा कर, उसे हरियाली कर, शस्यदा कर। उस अंधेरे गह्वर मे थाह नही है, तल नहीं है। अरे अभागे, मुड़ आ ! यहा कर्म के बीच तेरी प्रतीक्षा है। वहा क्यो भक्ष्य बनने को खडा है ? यहा आ और जयी बन, ऊर्जस्वी बन।"

जैनेन्द्र की कृतियो मे प्रेम के विविध भावो की व्यंजना नही है, किन्तु कचोटते प्रेम की व्याख्या है। वहा जीवन के अपूर्व चित्र बिखरे नही पड़े है, किन्तु जीवन की परिभाषा मिलती है। लेखक जीवन के रूप को देखना चाहता है, उसकी आत्मा को पकड़ने की चेष्टा करता है, किन्तु उसकी विस्तृत भूमिका मे जैसे पैठ नही पाता। उसके द्वारा अंकित रेखाए पैनी है, उनमे अनिवार्य तीखापन और वक्रता है, सीधी-तिरछी लकीरो और अधूरे वाक्यो मे उसने विषण्ण हृदय के आर्तनाद, भीतरी दशन और उलझी हुई सवेदनाओ को व्यक्त किया है। अकारण व्यथा सी जो मानव-मन मे कभी कभी जग जाती है, विचित्र स्वभाव वाले कुछ विशिष्ट व्यक्तियो मे जो उलझने होती है, उनके आहत मर्म मे जो टीस, संघर्षो से कुण्ठित मानस मे जो रिक्तता, अभुक्त वासनाओ और जाल सा बुनती हुई अपनी ही भ्रमशील, लयमान् इच्छा-आकाक्षाओ के भीतर जो मिथ्या गौरव-भावना, जीवन से विमुख होकर भी पूर्णतया सम्बन्ध न तोड सकने के कारण जो एक अलक्ष्य भाव, धूमिल असंतोष और दौर्हृद पैदा हो जाता है, उससे जैनेन्द्र के अधिकाश पात्र पीडित है। सुनीता, हरिप्रसन्न, मृणाल, कल्याणी आदि सभी तो विचित्र है, अस्वाभाविक, अस्वस्थ, जीवन की अतृप्ति से पीड़ित जिनकी बातों मे असगति है, विचारो मे उलझन, जैसे भीतर ही भीतर उनमे कुछ घुमड़ रहा हो, टीस रहा हो और जिनकी व्यथाए न जाने कितने काल से पकती पकती फोड़ा बन कर फूटने की राह तक रही हो। व्यक्तिगत जीवन की क्लेशमयी कठोर परिस्थितियो एवं मन के सुकोमल प्रेरणा-तन्तुओ के बीच जो उलझाव है—उसने जैनेन्द्र के नारी-पात्रो को क्षितिज के उस पार की भावमयी जिज्ञासा से भर दिया है। उनमे अनुभूति की तरलता एवं नारी-स्वभाव की कोमल करुणा के बावजूद अपने से जूझने की काक्षा है, आत्म-संघर्ष उनके जीवन का सत्य है, गहरी दुश्चिन्ताओ और अतृप्त काम की पीड़ा ने उन्हे उद्विग्न और उच्छृंखल बना दिया है। उनके भीतर की दुराग्रही वृत्ति कुछ ऐसी अचल-अटल है कि उनके सरल भाव को आत्मसात् किए है, वे भीतर से कुछ और है और बाहर से कुछ और, जिन्हे आसानी से समझा नही जा सकता, पाया नही जा सकता।

इस प्रकार पाठक को उन अंतस्तम प्रवृत्तियों एवं उच्च-स्तरो मे झाकने का अवकाश भी मिल जाता है, जो मानव-जीवन की शाश्वत अनुभूति के प्रतिरूप है।

मेरीडिथ मे नारी-जीवन का और भी सफल सूक्ष्मांकन हुआ है। यद्यपि उनमे जीवन का प्राण-पक्ष गौण है—तो भी उनमे स्वाभाविकता और सरलता, व्यापक अंतर्नुभूतियो की मार्मिक मीमासा और चरित्रो के द्वन्द्व-संघर्ष का ऐसा स्वस्थ विश्लेषण मिलता है कि लगता है जैसे मेरीडिथ एक कुशल स्रष्टा की भाति अपने भाव-सौन्दर्य की सृष्टि मे अद्‌भुत अनुभव-कणो को सजोकर नारी की नई नई भव्य-आकृतिया प्रस्तुत करता है। वह उनकी कोमल भावनाओ मे अपनी बौद्धिक-चेतना प्रक्षेपित कर उन्हे उस असामान्य धरातल पर प्रतिष्ठित कर देता है, जहा कि वे जीवन की स्थूलता से उठ कर मानस-जगत् मे पैठ जाती है और वहा पहुंचकर उत्तरोत्तर कठिन पडती हुई दार्शनिक-चिंतन के अप्रिय भार से दब जाती है।

"फिलॉसफी हमें यह बताती है कि हम गुलाबी पुष्प की भांति सुन्दरी नहीं है, न ही दुष्ट व्यभिचारिणी स्त्री की भाति उपेक्षणीय और उन निरर्थक पहलुओं पर अनवरत जाने की अपेक्षा हमारा दर्शन सुखद, सह्य, फलदायक, प्रत्युत् यों कहें कि हर्षप्रद है। मिथ्याडम्बर के स्थान पर आप पवित्र गरिमा की दिव्याभा की कल्पना कीजिये, प्रकृत रूप और उस आत्मा की, जो जन्मजात क्रियाशील, सासारिक थपेड़ों से ग्रस्त, किन्तु उत्कर्षशील हो। कथाकृति भी उनसे सम्मानित होगी और हमारे रक्त के साथ जीवन का सहाय्य, जीवन का सच्चा स्रोत गतिशील होगा।" ('डियना ऑफ् दि क्रॉसवेज्' Diana of the Crossways से)

("Philosophy bids us to see that we are not so pretty as rose-pink, not so repulsive as dirty drab; and that instead of everlastingly shifting those barren aspects, the sight of ourselves is wholesome, bearable, fructifying, finally a delight..........And imagine the celestial refreshment of having a pure decency in the place of sham; real flesh; a soul born active, wind-beaten, but ascending. Honourable will fiction then appear; honourable, a fount of life, an aid to life, quick with our blood")

मेरीडिथ नारी के हृत्तल को स्पर्श करता है, उसकी सच्ची मनःस्थिति, अंतर्द्वन्द्व एवं भाव-आवेगो के सघर्षो को पकड़ने की क्षमता रखता है। कभी कभी उसके चित्र इतने सजीव होते है कि उनकी विचित्रता, उनका रंग-वैषम्य हमें

आरम्भ करता है। और यद्यपि अविच्छिन्न भाव से बहता चला आता हुआ सारा जीवन की धारा का नाम और हमारी पकड़ में नहीं आ पाता, तो भी उसमें जिस करुणा मिश्रित स्नेह, गौरव और महत्त्व के साथ चित्रित किया जाता है—वह बरबस मन का आकर्षण करता हुआ हमारे बुद्धि और विश्वास की भावना जगाता है।

"उसकी मुखाकृति सुन्दर थी, जिसके कोनों पर मुस्कराहट नित्य बिखरी रहती या अथवा ऐसा पहले था जब तक कि मेटे ने उसे इसका परिज्ञान न कराया था कि वह उसका लक्ष्य है। अब वह अपने मुख को बन्द रखती है और नेत्रों को आधा झुकाये हुए। अपने पास से गुजरने के क्षण तक, जब कि लड़की ने उस पर दृष्टि उन्मुक्त की, मानों अपनी पलकों को उठाते हुए उसने निद्रा से जाग कर खिड़की में से झांका, एक स्वस्थ कटाक्ष, प्रकम्पवत्, जिसमें कुछ दुराव न था, कोई दुर्विनीतता अथवा दुस्साहस न था और नायिका का भी किंचित लेश न था। तुम ऐसा सोच सकते थे जैसे उसका हृदय चुपके से निकल कर बाहर आना चाहता हो।

उसकी दृष्टि प्रभातकालीन प्रकाश रश्मियों सी थी, जो वह हियों पर फैल जाता है। वह आधी मिनट तक टिकी रही और आधे घंटे तक उद्विग्न बना गई।" ('लॉर्ड आरमाण्ट एण्ड हिज अमिन्टा' Lord Ormont and his Aminta से)

(She had a nice mouth, ready to a smile at the corners or so it was before Matey let her see that she was his mark. Now she kept her mouth asleep and her eyes half down, up to the moment of her nearing, to pass when the girl opened on him, as it lifting her eyelids from sleep to the window a full side look like a throb and no disguise—no slyness or boldness either not a bit of languishing. You might think her heart came quietly out.

The look was like the fall of light on the hill from the first of morning. It lasted half a minute and left a ruffle for a good half hour.)

जैनेन्द्र के उपन्यास में सुनीता भी रेशमी साड़ी में आवृत्त अपनी सलोनी स्निग्ध गरिमा से हरिप्रसन्न के मन को अभिसिंचित कर जाती है।

"और वह तो कमरे से बाहर तैर गई। उस समय उसकी रेशमी साड़ी की धानी आभा ही कांपती हुई झलमल करती हरिप्रसन्न को आंखों में रह गई। और उसके कानों मे साड़ी की तरह पत्तों को छूकर जाती हुई समीर की सरसराहट भरने लगी। मानों कुछ हौले हौले बज रहा हो, कुछ भीना भीना बरस रहा हो और भीतर से उसे भिजो रहा हो ......"

मेरीडिथ के उपन्यास 'दि ऑरडियल ऑफ् रिचर्ड फेवरल' (The Ordeal of Richard Feverel) का निम्न प्रख्यात दृश्य भी हमारी सौन्दर्य-बोध-वृत्ति का आह्वान करता हुआ कल्पना मे मूर्त्त हो कर भावात्मक तरलता और लयात्मक संवेदनीयता छोड़ जाता है।

"लूसी मौसम और शिष्टता के अनुसार बहुत सादे वस्त्र धारण किये थी। उसका उभरता यौवनोच्छल व्यक्तित्व 'ड्यूबेरी' फलों का आस्वाद ले रहा था। वे पानी और किनारे के बीच मे उगे हुए थे। छोटा लवा पक्षी उसके सिर पर से गुज़र गया, संगीत से भरा, नीलिमा के साथ चिकने दक्षिणी मेघ की ओर—उसके हिलते हैट के ऊपर ओस से भीगी सघन झाड़ी से काली चिड़िया तीन बार कूकी—अपने संगीतात्मक स्वर से उसे पुकारती हुई। हरी जलबेंत में से रामचिरैया झांक कर मरकत-मणि की सी आभा बिखेर गई, एक झुके पंखों वाले बाज़ ने एकान्त स्थल खोजने के लिए बहुत ऊपर उड़ान भरी और, कश्चित् नौका एक स्वप्नशील युवक को लिए थिरकती हुई उसके समीप बढ़ती रही, किन्तु वह अभी भी फल तोड़ रही थी, खा रही थी, सोच रही थी—मानों कोई भी परी-देश का राजकुमार उसकी विचरण-भूमि में आक्रमण नही कर सकता था और मानों उसे किसी की चाहना भी न थी अथवा वह अपनी इच्छाओं को ही नहीं समझ पाती थी।....प्रकृति क्रमशः शान्त-प्रशान्त होती गई—जैसे दो विद्युत्मय मेघों के विलय पर हो जाती है।.. कल यह स्थान अमर स्मृति को सजोयेगा, यह नदी, यह चरागाह और यह श्वेत फैला नदी का बांध—उसका हृदय यहा मन्दिर का निर्माण करेगा, लवा-पक्षी प्रमुख पादरी होगा, बूढ़ी काली चिड़िया चमकता गाउन पहने गानेवाली सदस्या होगी और 'ड्यूबेरी' फल पावन आहार समझा जाएगा।"

("Lucy was simply dressed, befitting decency and the season. This blooming young person was regaling on dewberries. They grew between the bank and the water........The little skylark

went up above her all song, to the smooth southern cloud lying along the blue from a dewy copse standing dark over her nodding hat the blackbird fluted calling to her with thrice mellow note. The kingfisher flashed emerald out of green osiers a bow winged heron travelled aloft, seeking solitude, a boat slipped towards her, containing a dreamy youth and still she plucked the fruit and ate and mused as if no fairy prince were invading her territories and as if she wished not for one or knew not her wishes. Stiller and stiller grew nature as at the meeting of two electric clouds. Tomorrow this place will have a memory—the river and the meadow and the white falling weir his heart will build a temple here and the skylark will be its high priest and the old blackbird its glossy gowned chorister and there will be a sacred repast of dewberries)

मेरीडिथ कभी कभी भाव प्रवणता में नारी को उसके प्रकृत मानवीय-स्तर से उठाकर असाधारण रूप दे देता है और उसमें उन विचित्र सम्भावनाओं की संयोजना करता है जो उसे धरती के तल से ऊपर गगन प्रान्तर अथवा एक वृहत्तर अज्ञेय में खींच ले जाती है।

'वह स्थान के सौंदर्य से लबालब स्फटिक के मनोहर प्याले सी थी। जिस प्रकार क्षुद्र लहरियाँ प्रकाश को झकझोर देती हैं, उसी प्रकार उसकी भंगिमाओं में वे हल्की अस्वाभाविकताएं थीं, जो उसके सौंदर्य की असाधारणता की द्योतक थीं, मुख, नेत्र, भौं, नासिका रन्ध्र और विकसित कपोल परस्पर अठखेलियाँ करते हुए तरलता बिखेर जाते थे। उसके विचार उड़ते थे, जिह्वा अनुधावन करती थी और भावार्थ रात्रि में कौंधती विद्युत् की भांति कांपता हुआ उन पर अपनी झलमलाहट छोड़ जाता था।" ('ब्यूचैम्प्स करियर' Beauchamp's Career से)

(She was like a delicate cup of crystal brimming with the beauty of the place. Her features had the soft irregularities which run to rarities of beauty as the ripple rocks the light, mouth eyes brows nostrils, and blooming cheek played into one another liquidly thought flew tongue followed and the flash of meaning quivered over them like night lightening)

जैनेन्द्र के 'परख' की कट्टो और 'त्यागपत्र' की मृणाल का भी कुछ कुछ ऐसा ही विचित्र वर्णन मिलता है, किन्तु उनके अधिकांश पात्रों में संयम और शिल्प

होते हुए भी एकागीपन और चारित्र्य की अलौकिकता का पुट है, जिससे कही कही स्वभावगत वैचित्र्य आ गया है। मेरीडिथ के नारी-चित्र रोचक, व्यवस्थित और चरित्र-चित्रण की दृष्टि से संतुलित और पूर्ण है। डियना, नेस्टा, आमिण्टा, कारिन्थिया और लूसी उस अमर तूलिका से चित्रित की गई है कि एक बार झाकी पा लेने पर उन्हे कभी विस्मृत नहीं किया जा सकता।

जैनेन्द्र के पुरुष-पात्रो मे स्त्रैणता है, उनके अणु-अणु मे नारी व्याप्त है और वे सिर से पैर तक उसके नारीपन से अभिभूत है, जिससे कदाचित् अपनी अक्षमता के कारण वे उसके हृदय को पूर्णतया जीत नही पाते। इसके ठीक विपरीत मेरीडिथ के पुरुष-पात्र दुराग्रही, अहकारी और अदम्य पौरुष से पूर्ण है, जो अपनी निर्ममता के कारण नारी के भीतर रम नही पाते और इस प्रकार इन दोनो कलाकारो मे पुरुष और नारी मे पृथकत्व एव दूरी बनी ही रहती है।

'दि ऑरडियल ऑफ् रिचर्ड फेवरल' मे रिचर्ड आकर्षक नवयुवक है, किन्तु स्वार्थी और ज़िद्दी है, वह दूसरो के दु ख-सुख की पर्वाह नही करता, परिणामस्वरूप लूसी की आत्मा को गहरी ठेस लगती है, क्योकि विश्व मे अनेको ऐसी लूसी है, जिन्हे पुरुषत्व का दम्भ कुचल डालता है। मेरीडिथ के दूसरे प्रख्यात उपन्यास 'इगोइस्ट' (Egoist) का नायक सर विलोवी पेटर्न तो उससे भी भयकर अहवादी और उद्धत स्वभाव का है। उसमे आत्म-रति की प्रबल भावना है और उसके हृदय की विषमर्या ग्रन्थियां भीतर ही भीतर ज़हर उगलती है, जो बाहर दृष्टव्य नही। वह स्त्रियो पर अविश्वास करता है, उसे दु:ख है कि उसकी पत्नी क्लारा सासारिक-ज्ञान से अछूती क्यो नही है और क्यो वह सीधे स्वर्ग से उसके पास नही आई। क्लारा पति की ममत्व-भावना मे भी उसके दुर्द्धर्ष स्वभाव मे परिचित है और उसका हृदय कापता रहता है।

"मेरी प्रिय ! तुम निष्ठुर हो।"

"मै निष्ठुर नही हूं," क्लारा ने कहा—"मुझे ऐसा प्रतीत होता है जैसे मेरी कब्र पर कोई चल रहा हो।" उसके आलिगन को शून्यता एक बड़ी समुद्री लहर की भांति कहर उठी, सिकुड़ती तरंग को और भी समेटती हुई। जैसे ही वह 'बटर-कप' पुष्प की ओर झुकी, राक्षस उस पर झपट पड़ा।"

("You are cold, my love."

"I am not cold," said Clara. "Someone, I suppose, was walking over my grave." The gulf of a caress hove in view like an

इसका कारण है कि उनकी उद्‌बुद्ध-चेतना विरोधी-तत्वो को परास्त करने में लगी है। मेरीडिथ मे यह अंधकार-तत्व इतना अधिक है कि उसकी तमसावृत्त-चेतना जीवन से तद्‌गत हो अस्पृश्य तम का आह्‌वान करती है, केवल जब उसके प्रेरणा-तन्तुओ मे स्फुरण होता है तो वह सघनता को चीरकर बाहर झाकती है। कभी कभी तथ्य की खोज में अधकार-पथ का अनुधावन करता हुआ मेरीडिथ दूर तक भटक जाता है और जैसे कुछ शून्य हो, कुछ खो सा गया हो वह अपने मानस की प्रतिच्छाया को आरोपित करता हुआ एक कुशल मनोविश्लेषक की भाति मानव-मन की दारीक वारीक हलचलो को कथा के सूत्र मे वाध कर दर्शाता है। अपनी टेकनीक का मास्टर होता हुआ भी वह उसके प्रति अचैतन्य है और कही कही आवश्यकता से अधिक जटिल और दुरुह हो गया है। अपनी विश्लेषण-वृत्ति और विषयगत अस्पष्टता के कारण उसकी कृतिया अनेक स्थलो पर शुष्क और नीरस है।

जैनेन्द्र की कृतियो में भी मेरीडिथ की भाति उत्साह ठण्डा है, किन्तु उनकी अपने को व्यक्त करने की एक निराली शैली है, वे अपने ढंग के विरल कलाकार है, जो दो चार खरौंचो से ही घटना को सजीव और विषय को रगीन व जानदार वना देते है। उनकी खूबी है कि वे अपने विचारों के तारतम्य को एक खास शैली मे वाध कर अपने विषय की बहुरूपता को वर्णन की विभिन्न प्रणाली मे बदल देते है और कलात्मक ढग से उसमे उभार लाकर उद्देश्य की अभिव्यजना करते है।

चूकि जैनेन्द्र और मेरीडिथ की ग्रहण-शक्ति वडी तीव्र है—उन्होंने अपने युग की मूल-भावनाओ को सजग-बुद्धि से स्वीकार करके उनका मनोवैज्ञानिक विवेचन किया है। वे अपनी सहज-चेतना से जो जीवन मे पा सके है, समझ सके है, उसे अत्यन्त मार्मिकता के साथ वहिर्गत किया है और मानविक गहनतम अनुभूतियो मे पैठकर एक निरपेक्ष द्रष्टा की भाति उसके अनुभावित सत्य को व्यक्त किया है।

जीवन-दर्शन

कहने की आवश्यकता नही कि जैनेन्द्र और मेरीडिथ अपने अपने साहित्य मे एक नई प्रवृत्ति के पोषक है। जैनेन्द्र का दृष्टिकोण व्यावहारिक है, मेरीडिथ का आभ्यन्तरिक। एक का व्यक्तिगत-पक्ष दूसरे का आतरिक-पक्ष वन गया है। दार्शनिक चितन की प्रेरक-शक्ति ने जहा एक मे जिज्ञासा-वृत्ति जगाई है—दूसरे मे अतर्मुखता और दोनों ही जीवन की अंतस्सज्ञा को पकड़ने के लिये अधीर हो उठे है।

ऐतिहासिक उपन्यासकार

विक्टर ह्यूगो, एलेक्जेण्डर ड्यूमा, सर वाल्टर स्कॉट,

बंकिम चन्द्र, राखालदास बन्धोपाध्याय, हरिनारायण आप्टे,

चिलक मर्ति श्री लक्ष्मीनरसिंहम्, कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी, राहुलसांकृत्यायन,

वृन्दावनलाल वर्मा
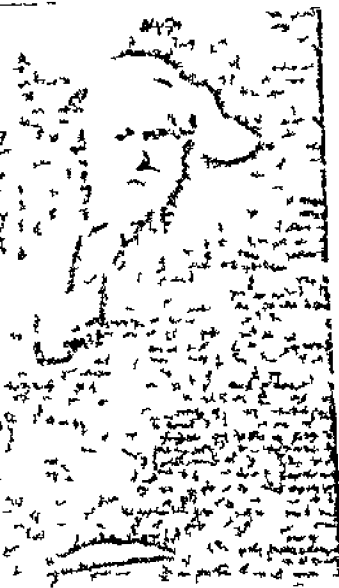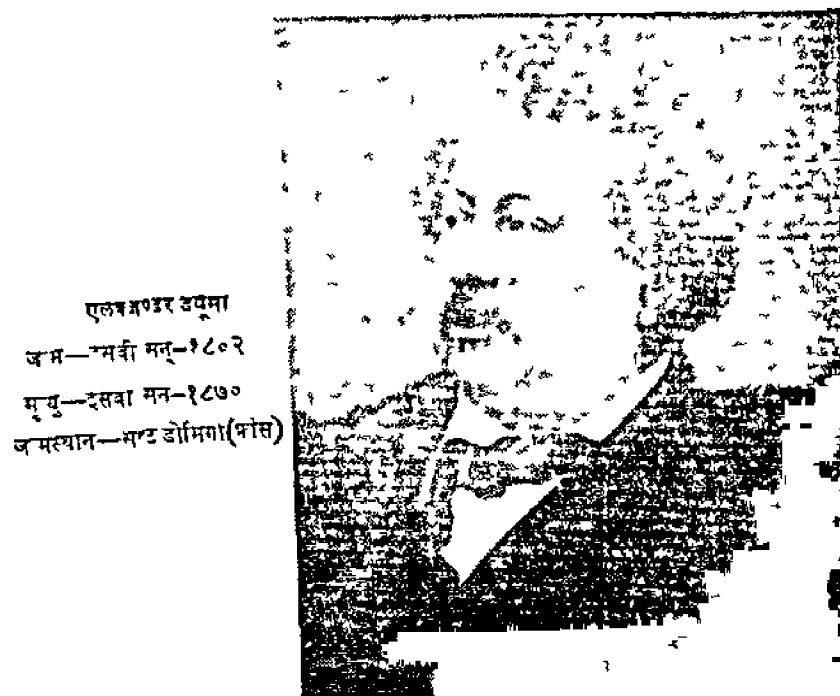
बंकिमचन्द्र
जन्म—ईसवी सन्–२६ जून, १८३८
मृत्यु—ईसवी सन्–१८९४
जन्मस्थान—कांटालपाड़ा ग्राम (बंगाल)
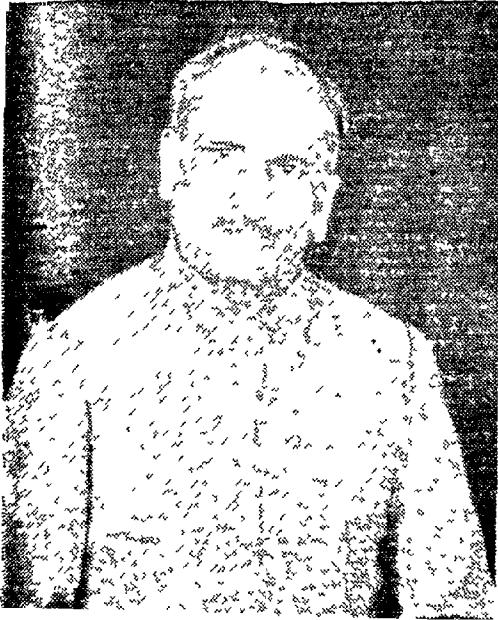
वृन्दावनलाल वर्मा
जन्म—ईसवी सन्–२४ दिसम्बर, १८८
जन्मस्थान—मऊरानीपुर (झांसी)

हरिनारायण आपटे
जन्म—ईसवी सन्–१८६४
मृत्यु—ईसवी सन्–१९१९
जन्मस्थान—वर्गोड (महाराष्ट्र)

राखालदास बन्द्योपाध्याय
जन्म—ईसवी सन्–१२ अप्रेल, १८८६
मृत्यु—ईसवी सन्–१९३०
जन्मस्थान—बरहामपुर, (मुर्शिदाबाद, बंगाल)

कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी
जन्म—ईसवी सन्—३० दिसम्बर, १८८७
जन्मस्थान—भड़ौंच कच्छ, (गुजरात)
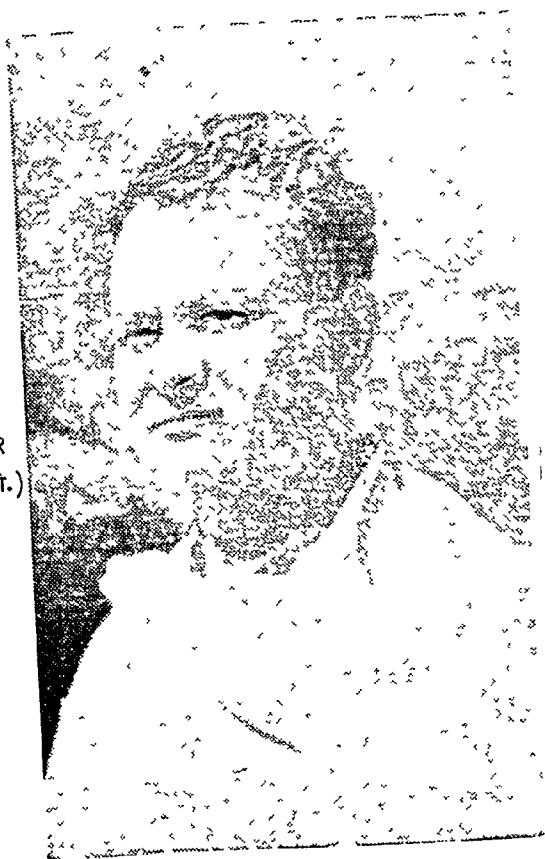
राहुल सांकृत्यायन
जन्म—ईसवी सन्—९ अप्रैल, १८९२
जन्मस्थान—जिला आजमगढ (यू पी.)

समय के दुर्गम द्वार से टकराकर जब साहित्यकार की भाव चेतना अतीत की कल्पना या स्मृति की सजीवता में परिणत कर देती है तो न जाने कितने युगों का इतिहास जीवन-स्पर्शों का उद्घाटित करता हुआ शाश्वत रूप में बोल उठता है। सुदूर अतीत के अगणित रूप-व्यापार उसकी कल्पना में मूर्त होकर नवीन परिस्थिति में नवीन स्वर छेड़ते हुए उस काल की गाथा हमें सुनाते हैं और उसकी सर्जनात्मक प्रतिभा जीवन के सत्यग्राही ज्ञान की अनेक धाराओं में उतरती हुई उस अन्तहीन जल में जा झांकती है जहां भूत वर्तमान् और भविष्य के सब प्रवाह का एक में पर्यवसान हो जाता है। गम्भीर-चिन्तन से उपलब्ध ऐतिहासिक-सामग्री की पर्यालोचना के साथ साथ मानव हृदय में उठनेवाली तरंगों का योग और उसकी विशेष परिधि के भीतर जीवनगत उपयोगों का प्रश्न तथा अतीत के गह्वर में छिपे हुए रहस्यमय कणों को बटोर कर रखने की सञ्चयशक्ति उसकी प्रखर चेतना को उद्बुद्ध और अनुभूति को अधिकाधिक तीव्र बना देता है। विस्मृति का धुंधला आवरण उसके नेत्रों के सामने से खिसकने लगता है और जीवन के तथ्य उभर उभर कर सजीव हो उठते हैं।

वस्तुतः इतिहास जीवन के चिरन्तन स्वरूप को प्रतिबिम्बित करने वाला दर्पण है। अतीत को वर्तमान् से पृथक् करने वाला कुहरा जब विच्छिन्न होता है तो समय के निस्सीम प्रवाह में डूबते-उतराते जीवन के अगणित बिम्ब दृष्टिगत होने लगते हैं और जगत् के व्यक्त सत्य उसके दृष्टिपथ के सम्मुख

खिंचकर अतीत के धुंधले दृश्यो, मानवीय-आकांक्षाओं के करुण अवशेषों, न जाने कितनी मचलती कामनाओं, उमड़ते अश्रुओं, दहकती आहों और उत्थान-पतन के हर्ष-विषाद तथा आनन्द-बेबसी और जीवन के आलोक-तिमिर की धूप-छाया खिलती-मुंदती नज़र आती है। पं० रामचन्द्र शुक्ल के शब्दो में, "जैसे अपने व्यक्तिगत अतीत जीवन की मधुर स्मृति मनुष्य मे होती है, वैसे ही समष्टि-रूप मे अतीत नर-जीवन की भी एक प्रकार की स्मृत्याभास कल्पना होती है, जो इतिहास के सकेत पर जगती है। इसकी मार्मिकता भी निज के अतीत-जीवन की स्मृति की मार्मिकता के समान ही होती है और नर-जीवन की चिरकाल से चली आती हुई अखंड परम्परा के साथ तादात्म्य की यह भावना आत्मा के शुद्ध स्वरूप की नित्यता और असीमता का आभास देती है।"

कहने की आवश्यकता नही कि इतिहास की आत्मा और अनुभूति के सम्बन्धो की अनेकरूपता का आभास हमें विश्व की विभिन्न चिताधाराओ से प्राप्त होता है। जिन्होने इतिहास के अंतर्जीवन का प्रतिपादन किया है, वे ही उसके रूप-वैचित्र्य को उपलब्ध करने में समर्थ हुए है और अपनी कला के द्वारा समय का व्यवधान मिटाकर सीम मे निस्सीम को तथा एक विशिष्ट काल की परिमिति के भीतर अनंत सत्य का साक्षात्कार करा सके है। फ्रास का विलक्षण प्रतिभा-संपन्न कवि, नाट्यकार और उपन्यास-रचयिता विक्टर ह्यूगो मानव-जीवन के जागृति-काल की इसी महान् परम्परा को स्पर्श करता है। उसकी सर्वतोमुखी चेतना ने ऐतिहासिक-थाती से जो कुछ ग्रहण किया, वह अपनी रचनाओ मे स्थायी, सर्वकालीन और अमर बना दिया। 'नॉत्रे दाम द पेरी' (Notre Dame de Paris), 'लॉ मिज़रेबुल' (Les Miserables), 'लाहोम क्वि रित' (L' Homme Qui Rit) और 'त्रैवेलियर द ला मेर' (Travailleurs de la Mer) आदि उसके प्रख्यात उपन्यासों का एक विशेष ऐतिहासिक पृष्ठाधार है, जिनमें मध्ययुग की अचेतन जनता के राग-तंतु झंकृत हो उठे है। उसकी पारदर्शी दृष्टि ने जीवन के नैतिक पहलुओ का नवीन मूल्यांकन किया है और विश्व की सत्ता को अखण्ड रूप मे ग्रहण करके मानव-चरित्र की सापेक्षता मे अंतस्तत्त्वो को दर्शाते हुए आर्ष आत्मा की चेतना को जगाया है। अकेला 'लॉ मिज़रेबुल' ही स्रष्टा के अद्भुत कला-कौशल का असंदिग्ध प्रमाण है, जिसके समकक्ष विश्व के बहुत कम उपन्यास रक्खे जा सकते है और जिसने उसे फ्रास से दूर अन्य सभी देश-विदेशों में सार्वभौम लेखक के रूप मे ख्यात कर दिया है। इस उपन्यास की कथावस्तु का विश्लेषण करने से द्रष्टव्य है कि इसमे आत्म-तत्त्व की प्रमुखता है और लेखक अपनी उत्कृष्ट कल्पना-

... अन्तर्भेदी प्रवणता के कारण मानव हृदय की गम्भीर से गम्भीर गहराइयों ... जगत् की विराट् से विराट् शक्तियों का अवगाहन कर सका है। ... के सूक्ष्म से सूक्ष्म सीमा-रेखाओं को छेद कर उसने सारी जटिल पैनी दृष्टि और मानव मनोवृत्तियों के अगणित कारोबार सूत्र को पकड़कर उसके मूल स्रोतों को सामान्य रूप में स्थिर करने वाला उसका सूक्ष्मदर्शी विश्लेषण है। यथार्थों का रंग और मनोरागों की अविच्छिन्न क्रान्ति ने ह्यूगो की दृष्टि को वह स्थिरता प्रदान की है जिससे उसने जीवन के चरम-सत्य को अत्यन्त दृढ़ता से पकड़ लिया है।

यहाँ यह लिखना अप्रासंगिक न होगा कि ह्यूगो ने तत्कालीन फ्रांस की राजनीति में बहुत लिप्त तक भाग लिया था और उसके फलस्वरूप नेपोलियन तृतीय का घोर विरोध करने के कारण उसे अट्ठाईस वर्ष तक अपनी प्रिय जन्मभूमि से निर्वासित होकर दूर एक द्वीप में रहना पड़ा था। 'ले मिज़रेबुल' इसी स्थिति की रचना होने के कारण उसके मानसिक-संघर्ष और नैराश्य को व्यक्त करता है। राजनीतिक और आर्थिक पराभव तथा दुर्दान्त परिस्थितियों के भीषण झटकों ने उसे खोखला कर दिया था और उसका अन्तिम राग स्वात्म चिंतन में परिणत होकर इसमें प्रस्फुटित हुआ। 'ले मिज़रेबुल' उपन्यास के नायक जान वल्जियन (Jean Valjean) में जीव की उन दो मूल सद् एवं असद् वृत्तियों का समाहार दिखाया गया है जो उसे उत्थान एवं पतन की ओर उन्मुख करती हैं। मनुष्य के अधःपतन की पराकाष्ठा जो जीवन की निम्नतम अवस्था की द्योतक है, सत्य की पूर्ण स्थिति को अपना कर सर्वथा ग्राह्य हो जाती है। ह्यूगो का विश्वास है कि कोई मनुष्य कितना ही पतित क्यों न हो उसमें अच्छाइयों के बीज वर्तमान रहते हैं, जो कालान्तर में उभर कर उसके जीवन की काया पलट कर सकते हैं। मनुष्य अपनी क्षमता का उपयोग करके जब सत्य के विशुद्ध रूप से अवगत होता है तो उसकी आत्मा घृणित संस्कारों से मुक्त होकर अपनी ही नियामक और अपना ही परिणाम बन जाती है। निकृष्ट से निकृष्ट जीवन के मूल में भी एक ज्ञानमय तत्त्व विद्यमान रहते हैं जो अपनी अदृष्ट शक्ति द्वारा प्रतिकूल से प्रतिकूल परिस्थितियों पर भी सफलता से विजय प्राप्त कर सकते हैं। जान वेल्जियन की पतित आत्मा अनुताप और आत्मार्पण द्वारा उत्तरोत्तर विकास को प्राप्त होती है और उसे मनुष्य से देवता की कोटि में अधिष्ठित कर देती है।

ह्यूगो का दूसरा प्रख्यात उपन्यास 'नात्रे दाम द पेरी' 'ले मिज़रेबुल' से लगभग तीस वर्ष पूर्व लिखा गया। इसमें मध्ययुगीन घटनाओं के आधार पर कुछ

काल्पनिक प्रसंगो की अवतारणा करके उस समय की धर्म-निष्ठा और प्रमुख रूप से चर्च के महत्त्व का दिग्दर्शन कराया गया, जबकि चर्च नगर की आत्मा और फ्रांस की उच्च आत्मा का प्रतीक समझी जाती थी। इसमें 'लॉ मिज़रेबुल' की अपेक्षा औपन्यासिक-कला की न्यूनता होते हुए भी मध्ययुग की वस्तुस्थिति का सर्वांगीण चित्रण है और उपन्यासकार को लेखनी मे तत्कालीन धुंधले और अस्पष्ट चित्र पुनः सजीव हो उठे है। उपन्यास का नायक क्वासीमोडो (Quasimodo) एक कुबड़ा व्यक्ति है, जिसका शरीर विकृत, किन्तु मन स्वस्थ है। उसकी भावनाओ में फ्रास की जनता का चर्च के प्रति गहरा अनुराग व्यंजित किया गया है।

ह्यूगो का तीसरा उपन्यास 'त्रैवेलियर द ला मेर' भी निर्वासन काल में ही लिखा गया। इसमें मानवात्मा और प्राकृतिक शक्तियों का द्वंद्व है और लेखक स्वयं कथा की आत्मा मे प्रविष्ट होकर उसके सूखे कंकाल में नव-जीवन का संचार, नाटकीय परिस्थियों की सृष्टि और चारित्रिक-द्वंद्वो की उद्भावना करता है। यद्यपि ह्यूगो के उपन्यासो मे ऐतिहासिक-सत्य विकृत है, तथापि उसने मानव-जीवन की समष्टि को एक गतिशील सौदर्य-तत्त्व मे केन्द्रित करके ऐतिहासिक-वातावरण का सरक्षण और कथा-साहित्य की रमणीयता की अभिवृद्धि की है। अपनी विकसित चेतना की शक्तिमत्ता से अर्द्धजाग्रत स्वप्नो मे विभोर वह दूरस्थ अतीत की मनोरम झाकी प्रस्तुत करता है और उपन्यासों मे कथा-बाहुल्य होते हुए भी उन्हे एक सूत्र में पिरोकर उनका उत्थान, विकास और परिसमाप्ति कला-त्मक पद्धति से निभाता है तथा आचार सबंधी सौदर्य का उद्भावन करता हुआ उस उत्कृष्ट शिल्प-निर्माण की ओर अग्रसर होता है, जहां कला का रुचिरतम रूप निखर कर तत्क्षण पाठको के सम्मुख आजाता है।

इसके विपरीत फ्रास का दूसरा ऐतिहासिक उपन्यासकार **एलेक्जेण्डर ड्यूमा** अपनी कलाकृतियों द्वारा एक दूसरे प्रकार के सौदर्य की सृष्टि करता है। ह्यूगो ने अपने उपन्यासों द्वारा यदि अंतर्जगत् का विशद विश्लेपण किया है तो पेट के लिये आठो पहर परिश्रम करने वाले अनाथ ड्यूमा ने कला-स्वातंत्र्य और व्यक्ति के प्रति उन्मुक्त प्रेम की अभिव्यजना की है, जिसमे मध्यवित्त वर्ग के अन्तर्वाह्य का मर्मस्पर्शी चित्रण है।

ड्यूमा अपने युग का सबसे अलमस्त और जागरूक कलाकार है। उसकी एक दृष्टि लौकिक है, जो साधारण जीवन से सम्बन्ध विच्छिन्न नही कर पाती और दूसरी दृष्टि, जो असामान्य है, उसमे आजीवन कला-चेतना जगाती रही है।

एडमंड डा गोनकोट ने वृद्ध ड्यूमा का एक बहुत ही सजीव चित्र खींचा है, जिसमें इस कलाकार के जीवन का अन्तर्हित सत्य और निश्छल भाव व्यक्त हो उठे हैं —

'विशाल डीलडौल, जिसके कारण वह विशालकाय दानव सा ज्ञात होता है सिर के घने मोटे के बाल से छल्ले, जो अब वृद्धावस्था में श्वेत फुंगियों से हो गये हैं, दरियाई घोड़े की सी छोटी-छोटी आंखें, जो दीप्त और पैनी हैं और बन्द सी लगने पर भी तीक्ष्ण निरीक्षण करती हैं तथा उसकी लम्बी-चौड़ी मुखा कृति, जिसकी उभरी हुई नसें व्यंग चित्रकारों द्वारा चित्रित चन्द्रमा के अर्द्धाकार की अस्पष्ट रेखायें सी प्रतीत होती हैं—न नहीं कह सकता कि वह कैसा 'दि थाउजैण्ड एण्ड वन नाइट्स' (The Thousand and One Nights) का विचित्र यात्री सा लगता है। वह बोलता बहुत अधिक है, किन्तु उसकी बातों में कोई चमत्कार, कोई प्रतिभा कोई विशिष्ट गुण द्रष्टव्य नहीं। अपनी स्मृतियों के अक्षय भंडार से भड़भड़ाते स्वर में वह कोरे तथ्यों को रोचक, लोक विरुद्ध और दिल बहला देने वाले तथ्यों को व्यक्त करता है और प्राय अपने ही विषय में वह कहता रहता है, अधिकतर अपने—अपने ही सबंध में, जिसमें ऐसी बालकों की सी सरलता होती है कि मन में कोई उलझन अथवा खिजलाहट नहीं हो पाती । वह न शराब पीता है, न काफी, न सिगरेट आदि पीने का ही अभ्यस्त है, वह निरंतर लेखों और अखबारों से ही जूझता लड़ता रहता है।"

ड्यूमा स्कॉट से भी अधिक परिश्रमी था। उसने कठोर आत्म-विश्वास का लेकर सदैव विरुद्ध परिस्थितियों से संघर्ष किया। कभी कभी अपने भीतरी कार्ठिन्य की सीमा पर टकराकर वह इतना दीन हीन हो जाता था कि साधारण से साधारण व्यक्ति भी उसे चकमा दे जाता था। उसके मकान का दरवाजा सदैव खुला पड़ा रहता था और प्रतिदिन उसके यहां इतने लोग खाना खाते थे जिनके नामों से भी वह परिचित न होता था।

ड्यूमा ने १२०० पुस्तकें लिखने का दावा किया है। उनकी अधिकांश कहानियां सहयोगियों के साथ मिलकर लिखी गई। आगस्ट मेक्ट उसका प्रमुख सहयोगी था। उसके जीवन-काल में कई बार यह प्रश्न उठा कि पुस्तकों में उसका लिखा हुआ कितना है और उसके सहयोगी का कितना, किन्तु उसने यह सब बतलाने का कभी प्रयत्न नहीं किया। मूर्ख से मूर्ख व्यक्ति भी उसकी आड़ में एक प्रतिभाशाली लेखक के रूप में ख्यात हो गया।

ड्यूमा को साहित्यिक-चोरी का अपराधी भी करार किया गया, किन्तु इसके विषय में भी वह तटस्थ बना रहा और उसने इसके विरुद्ध अपनी सफाई देने का कभी कष्ट न किया। दूसरों की बद्धमूल धारणाओं पर आघात करके उनकी खिजलाहट और औत्सुक्य को कम करने की बात उसे पसन्द न थी। अपने बचाव के प्रयत्न को वह निरी कायरता समझता था। प्रारब्ध के थपेड़ों से क्लांत, मन में खिन्न, समाज द्वारा त्याज्य एवं उपेक्षित उसे जीवन की पीडा सताती रही, अभाव बेचैन करते रहे, अतृप्ति सालती रही, किन्तु न वह कभी दुनिया की गति के साथ समझौता करने के लिये रुका और न कभी त्रस्त हुआ। उसका स्वभावगत सारल्य उसके जीवन की रिक्तता को एक अजीब मस्ती से सतत भरता रहा।

ड्यूमा के अधिकांश उपन्यासो के कथानक उखडे-पुखड़े और सामन्जस्य-हीन है, किन्तु उसने युग-चेतना को ग्रहण कर कला के शाश्वत तत्त्वो को निरतर प्रज्जवलित रक्खा है। उसके पात्रो का सहज चित्रण, कथावस्तु की पृष्ठभूमि के वर्णन मे प्रदर्शित औचित्य और सजीव कथोपकथन उसकी चिन्तनशक्ति की उर्वरता और कल्पना की ऊंची उड़ान व्यक्त करते है। नाटकीय परिस्थितियो के निर्वाह, वातावरण और विविध प्रसगों की सृष्टि करने मे वह अद्वितीय है और उसकी औपन्यासिक कृतियो का निर्माण कुछ ऐसे असाधारण उपकरणो से हुआ है जो पाठक के मनस्तत्त्व पर एक नूतन प्रक्रिया जगाते है।

ड्यूमा का 'दि त्री मस्केतियर्स' (The Three Musketeers), 'त्वंती इयर्स आफ्तर' (Twenty Years After) और 'दि विकाम्ते द ब्रेलां' (The Vicomte de Bragelonne) उपन्यास-त्रिक् विशेष प्रसिद्ध है, जिसमे डार्टग्नन (D'Artagnan) की रोचक यात्राओ का वर्णन है और फ्रास के लुई तेरहवे और लुई चौदहवे के समय का यथातथ्य चित्रण हुआ है। डार्टग्नन को चित्रित करने वाली रेखायें कुछ ऐसी उभरी हुई, स्पष्ट और सजीवता लिये है कि उसका व्यक्तित्त्व सर्वथा पृथक् और महान् सिद्ध होता है। अग्रेजी समीक्षक स्टीवेन्सन ने डार्टग्नन की प्रशसा मे लिखा है—

"यहां अथवा अन्यत्र कहीं भी यदि मैं अपने और अपने मित्रों के लिये कुछ सद्गुणों को एकत्र करना चाहूं तो मुझे निःसंकोच डार्टग्नन के गुण चुन लेने पड़ेंगे। मै यह नही कहता कि शेक्सपीयर के यहां ऐसा कोई पात्र नहीं है, मेरा यह दावा भी नही कि किसी अन्य पात्र को मै महत्त्व ही नहीं देता। अनेकों अनुपस्थित और मृत व्यक्तियों की महान् आत्मायें अपनी रहस्यमयी, सूक्ष्म दृष्टि से हमारे कार्यो का

नित्य अवलोकन करता रहता है जिससे कि हम एकान्त-स्थल में भी सचेत रहते हैं और इन अदृश्य सम्मान्य निर्णायकों और निरीक्षकों को असंतुष्ट न करने का सदा ध्यान रखते हैं। यदि आप इस मेरा छिछोरापन न समझें तो मैं कहूँगा कि एसा हो एक महान निरीक्षक डार्टेग्नन भी है, इतिहास का डार्टेग्नन नहीं, जिसे धकरे ने प्रसन्नता दी थी और जिसके लिये मैं स्वच्छन्दतापूर्वक कह सकता हूँ कि वह उसकी अपनी व्यक्तिगत सम्पत्ति थी, न ही मैं उस डार्टेग्नन के विषय में कह रहा हूँ, जो सच मुच हाड-मास का कभी हुआ होगा, वरन् मैं स्याही और कागज पर अंकित डार्टेग्नन का, प्रकृति द्वारा निर्मित नहीं वरन् ड्यूमा द्वारा चित्रित डार्टेग्नन को स्नेह करता हूँ। यह इस कलाकार की असाधारण विजय है कि उसने इस पात्र को सच्चा नहीं प्रत्युत सजीव और हमारे स्नेह का भाजन बनाया है। वह इतना विश्वस्त नहीं है किन्तु आकर्षक है।"

इसके अतिरिक्त क्वीन मारगाट (Queen Margot) 'दि दाम द मानसारया (The Dame de Montsorean), दि फॉर्टी फाइव' (The Forty Five) उपन्यास-त्रिक और मान्टे क्रिस्टो' (Monte Cristo) भी ड्यूमा की विलक्षण कृतियाँ हैं जो तत्कालीन परिस्थितियों को स्पष्टतया हमारे नेत्रों के समक्ष रख देती हैं।

निःसन्देह ड्यूमा अपने समय का सबसे विचित्र कलाकार है। यद्यपि उसके उपन्यासों के कथानक और पात्र बहुत कुछ दूसरों के अनुकरण पर हैं तथापि उसकी चित्रण-पद्धति और कलात्मक-टेकनीक निजी और मौलिक है। उसके लिखने का कुछ ऐसा अनोखा ढंग है, जो साधारण से साधारण बात को चन्द उभरी हुई रेखाओं में बड़ी ही सजीव अभिव्यक्ति दे देता है।

ठीक इसी प्रकार अंग्रेजी-साहित्य के ऐतिहासिक उपन्यासकारों की परम्परा में सर वाल्टर स्काट भी वह अमर सर्जक है जो युगों के व्यवधान के बाद साहित्यिक-कल्पना की लौह-कारा तोड़कर अपनी निराली प्रतिभा के उन्मुक्त स्रोतों में आगे बढ़ा और अतीत-वैभव से भाव एवं भावना ग्रहण कर उसमें निज कवित्व एवं कल्पना का रंग भर लिया। अपनी जन्मभूमि के क्षेत्र की परिधि में घिरी हुई स्कॉटिश भूमि से उसे इतना गहरा अनुराग और आकर्षण था कि वह अपनी सर्जन सामर्थ्य को साहित्यिक साँचे में ढालने के लिये इतिहास से सामग्री सजाने लगा। जब वह तीन वर्ष का था तभी ट्वीड घाटी में अपने दादा के घर उसे स्वास्थ्य सुधारने के लिये भेज दिया गया था। यहाँ प्रकृति की रम्य क्रोड में बालक स्कॉट की

आत्मा चतुर्दिक् फैली हरियाली , मैदान, खेत, विस्तृत आकाश और पृथ्वी, साथ ही प्राचीन गीतो और कथाओ में अभिभूत होकर अनुप्राणित हुई। घास पर लेट कर वह अत्यन्त उत्सुकता मे गडरियों द्वारा अतीत जीवन से सम्बन्धित कहानियां सुनता और अपनी दादी से सुनी गीतो की कड़ियों और कहानियो को पूर्णतया हृदय मे उतारता जाता ।

अध्ययन के लिये एडिनवरा आने पर उसने अवकाश के क्षणो में टैसो (Tasso) के उपन्यास, पर्सी (Percy) के 'प्राचीन-अवशेष' और स्पेन्सर (Spenser) की 'फेरीक्वीन' पढ़ डाली। कोई भी पुराना लोक-गीत यदि उसकी दृष्टि से गुजरता तो वह सिह की तरह उस पर झपट्टा मारकर हथिया लेता और कंठस्थ कर डालता। वह अत्यन्त बाल्यावस्था से ही कहानी सुनने और सुनाने का इतना शौकीन था कि किसी प्रकार साथियो का पीछा न छोडता और उन्हे थका डालता।

अन्तत. उसके भीतर का बोझ मुखर होता गया और अतीत-सौंदर्य के साथ साथ आंतरिक-रंग भी घनीभूत होकर कलात्मक-भावों की निर्बंध धारा मे बह उठा। स्कॉट की औपन्यासिक-कृतियो मे गभीर-अनुभूति के साथ साथ सक्रिय चितन और उदात्त कल्पना है, मस्तिष्क की जागरूकता के साथ साथ भावो की सूक्ष्मता और भापा का जीवन्त रूप मूर्त्त हो उठा है तथा कला की असाधारण परिपक्वता के साथ साथ अतीत का सजीव चित्रण, नया सयम और शिल्प भी है।

स्कॉट के लिये अतीत साधन भी है और साध्य भी। अतीत के रंगीन चित्रों ने ही उसके कृतित्व को शाश्वत रूप प्रदान किया है। अतीत के मोह ने ही उसे उपन्यासकार बनने की प्रेरणा दी है और अतीत-निधि से ही उसने अपने कथा-साहित्य के उपकरण एकत्रित किये हैं। उसने लिखा है, "मुझे किसी प्राचीन गढ़ अथवा रणभूमि को दिखा दो, बस मेरी समस्त श्रांति और उद्विग्नता मिट जायगी। स्कॉट ने किसी भी ऐतिहासिक स्तूप अथवा बहती नदी को शिथिल बुद्धि से नहीं आका , वरन् उनके साथ आत्म-चेतना का अनुभव करके अपनी आन्तरिक भावनाओ को समन्वित किया। प्रत्येक छोटी से छोटी झाड़ी भी उसे रोमास की चिनगारियो से भुलगती नजर आती थी। उसने किसी एक विशिष्ट शताब्दी अथवा सामाजिक जीवन की चलती घटनाओं का ही इतिवृत्त लिख कर संतोष नहीं किया, वरन् अतीत उसके लिये मानों एक मोहक भुलावा बन गया। अतीत के खुले पृष्ठों

[illegible] मातृभाषा का [illegible] और उसमें [illegible] किन्तु आपका विशे- [illegible] सफलता प्राप्त की।

स्काट द्वारा लिखित उसके सभी बत्तीस उपन्यासों में स्कॉटलैंड के अतीत काल चित्र सजीव हो उठे हैं। उसका प्रथम 'वेवर्ली' (Waverley) उपन्यास सन् १७४५ के जैकोबाइट आन्दोलन से सम्बन्धित है, जो स्कॉटिश जनता पर अपनी अमिट छाप छोड़ गया था और जिससे स्काट भी विशेष रूप से प्रभावित हुआ था। 'दि फारच्यून्ज ऑफ नाइजल' (The Fortunes of Nigel) 'क्वेण्टिन डरवार्ड' (Quentin Durward) और 'दि टेलिसमन' (The Talisman) में स्कॉटिश योद्धाओं का रोचक वर्णन है। 'गाइ मैनरिंग' (Guy Mannering), 'दि एण्टीक्वेरी' (The Antiquary) 'रॉब रॉय' (Rob Roy), 'दि हार्ट ऑफ मिडलोथियन' (The Heart of Midlothian) और 'रेड गाण्टलेट' (Red Gauntlet) में अठारहवीं शताब्दी के चित्र 'ओल्ड मार्टे-लिटी' (Old Mortality), 'ए लीजेण्ड ऑफ माण्ट्रोज' (A Legend of Montrose) 'दि पाइरेट' (The Pirate) 'वुडस्टॉक' (Woodstock), 'दि ब्राइड ऑफ लेमरमूर' (The Bride of Lammermoor) और 'पीवरिल ऑफ दि पीक' (Peveril of the Peak) में सत्रहवीं शताब्दी, 'दि मॉनेस्ट्री' (The Monastery) 'दि एबट' (The Abbot) और 'केनिल-वर्थ' (Kenilworth) में सोलहवीं शताब्दी, 'दि फेयर मेड ऑफ पर्थ' (The Fair Maid of Perth) और 'कैसिल डेंजरस' में पन्द्रहवीं शताब्दी, 'कैसल डेंजरस' (Castle Dangerous) में चौदहवीं शताब्दी 'आइवन हो' (Ivanhoe) 'दि टेलिसमन' (The Talisman) और 'दि बिट्रायड' (The Betrothed) में बारहवीं शताब्दी तथा 'काउन्ट रॉबर्ट ऑफ पेरिस' (Count Robert of Paris) में ग्यारहवीं शताब्दी इस प्रकार स्कॉट के उपन्यासों में आठ शताब्दियों का चित्रण हुआ है। स्कॉटलैण्ड के अतीत इतिहास के सम्पूर्ण [illegible] तत्त्व उसमें सन्निहित हैं और घटनायें विभिन्न स्रोतों से संकलित की गई हैं। टामस कार्लाइल ने उपन्यासों की समीक्षा करते हुए लिखा है—

"इन ऐतिहासिक उपन्यासों ने समस्त मानवता को वास्तविक स्थिति से अवगत कराया है, जो नितान्त सत्य सा प्रतिभासित होता है और जिससे अभी तक इतिहासवेत्ता और अन्य व्यक्ति अपरिचित थे कि विश्व की बीती शताब्दियाँ केवल रियासती कागजों, लड़ाई-झगड़ों और कोरे नामों से ही भरी हुई न थीं,

वरन् उनमें चलते-फिरते जीवित मनुष्य भी रहते थे। स्कॉट ने ऐसा करके एक महान् कार्य संपन्न किया, जो परिणाम में उर्वर है। उसने एक बहुत बड़े सत्य का उद्घाटन करके दिखाया है।"

स्कॉट की उपन्यास-कला विभिन्न युगों की मूल भावनाओ को व्यक्त करने का अथक प्रयास है। यद्यपि उसने समय की विषमताओं और जीवन-जटिलताओं से विवश होकर इसे अपनाया था, तथापि बाद मे वह उससे एकरूप हो गया था और उसके प्रिय देश स्कॉटलैंड का गरिमामय इतिहास उसके प्राणों का अंग बन गया था। पुरातन सभ्यता की पार्श्वभूमि पर चरित्रो की उद्भावना, ऐतिहासिक-वृत्तो का उपयुक्त चयन और अत्यन्त सूक्ष्म एव गहरी रेखाओ से पात्रो का चित्रांकन उसके उपन्यासो की अनोखी विशेषताये है, किन्तु ऐतिहासिक दृष्टि से उसकी कृतिया सदोष है और अनेक स्थलो पर अप्रामाणिक हो गई है। 'केनिलवर्थ' मे वह अपने उन पात्रो के मुख से शेक्सपीयर के उद्बोधन-वाक्य कहलाता है, जो उससे पूर्व के है। उपन्यास की नायिका एमी रोब्रजार्ट को वह केनिलवर्थ ले जाता है, जहा कि वह कभी नही गई थी और क्युरोडेन के पश्चात् वह यंग प्रिटेण्डर को स्कॉटलैंड पहुंचा देता है। अनावश्यक लम्बे वर्णनो, घटना-बाहुल्य और परिस्थितियो को चरित्रो के अनुकूल दर्शाने मे तथा अपने वृहत्तर प्रयत्न को सुघर रूप देने मे उसे कथावस्तु की ऐतिहासिकता मे यत्र-तत्र उलट-फेर करने पड़े है। वह अपने उद्देश्य की सतह पर इतना उभर आता है कि ऐतिहासिक-तथ्य गौण हो जाते है।

विक्टर ह्यूगो, ड्यूमा, स्कॉट तीनों ही इतिहास-प्रेमी है और अतीत-वैभव की चित्र-विचित्र वीथियो मे विचरते है। ह्यूगो के उपन्यासों मे महाकाव्य की सी गरिमा है और उनके विस्तृत प्लान में अचिन्त्य जीवन-दर्शन द्रष्टव्य है। ड्यूमा उतनी गहराई मे तो न जा सका, किन्तु उसकी अन्तर्मुखीन चेतना, मौलिक-सत्य और मस्तिष्कीय-सजगता अक्षुण्ण है, जो उसकी अद्भुत चित्रण-शक्ति और स्वतंत्र-कलाभिव्यक्ति की परिचायक है। इन दोनो से पृथक् स्कॉट ऐतिहासिकता में इतना ओतप्रोत है कि उसका संपूर्ण कृतित्व अतीत की भव्य कल्पना बन गया है। उसके उपन्यासो मे पुरातन-काल के सामूहिक-जीवन के ऐसे अभूतपूर्व चित्र मिलते है, जो कभी भुलाये नही जा सकते। इतिहास को सत्यता को उसकी रगीन कल्पना आसानी से ग्रहण नही कर पाई, तो भी वस्तु-चयन, औपन्यासिक घटना-विधान और चारित्रिक द्वंद्वो की उद्भावना करने मे उसने असाधारण

रुचि का परिचय दिया है। एक स्थल पर उन्होंने लिखा है "बिना अधिक परिश्रम और शीघ्रता में गुम्फित मेरे उपन्यासों के अंश यदि शरीर के किसी भी अवयव की पीड़ा का अपहरण कर सकें, मस्तिष्क की चिंता कम कर सकें, प्रतिदिन के कार्य भार से पड़ी माथे की सिकुड़न मिटा सकें, गन्दे और अस्वस्थ विचारों के बदले कोई नया सुझाव पेश कर सकें अथवा किसी आलसी को अपने देश के इतिहास का अध्ययन करने की प्रेरणा दे सकें या इतना ही कि उसके मन को हानिरहित आमोद प्रमोद प्रदान कर सकें तो मैं अपना प्रयत्न काफी सफल मानूंगा।"

कहना न होगा कि पश्चिम के औपन्यासिक जगत् में जैसे ये उपर्युक्त तीनों कलाविद् एक नया पथ बना कर चले उसी प्रकार भारतवर्ष के बंगाल प्रान्त में बंकिम बाबू ने सर्वप्रथम ऐतिहासिक उपन्यासों का मार्ग प्रशस्त किया। इनके पूर्व भूदेव मुखोपाध्याय ने 'अंगुरीय विनिमय' ऐतिहासिक उपन्यास की रचना की थी। इसके अतिरिक्त भवानी चरण वन्द्योपाध्याय का 'नव बाबू विलास', टेकचांद ठाकुर का 'आलालेर घरेर दुलाल' और कालीप्रसन्न सिंह का 'हुताम प्याचार नक्शा' भी कथा-साहित्य के विकास में सहायक सिद्ध हुए, किंतु उनमें स्थूल घटनाओं पर आश्रित उच्छृंखल प्रेम की अभिव्यंजना थी और आकर्षक विधान होते हुए भी व्यंजना की प्रगल्भता और जीवन की धूप-छांह के दर्शन न हुए थे। बंकिम बाबू ने साहित्य क्षेत्र में सहसा अवतीर्ण होकर अपनी मंगलमयी परम्परा के अनुकूल मौलिक उपन्यासों की सृष्टि की और तत्कालीन कथा-साहित्य को सस्ते प्रेम की स्थूल प्रक्रिया से ऊपर उठा दिया। जीवन के उन्मुक्त स्वरूप का हृदयंगम कर लेने के पश्चात् उन्होंने अपरिपक्व गद्य-शैली को निजी मौलिकता प्रदान की और मध्ययुग की अवरुद्ध सांस्कृतिक चेतना को उन्बुद्ध किया।

बंकिम बाबू के 'दुर्गेशनन्दिनी', 'कपाल कुण्डला', 'मृणालिनी', 'राजसिंह', 'देवी चौधुरानी' और 'आनन्दमठ' आदि उपन्यासों में युग-मानव की कोमल भावनाएं, आशा निराशा, प्रेम-घृणा और विश्वास भरे आदर्शों के मोहक चित्र हैं। 'राजसिंह' में विशुद्ध ऐतिहासिक ढांचा है और अन्य उपन्यासों में इतिहास एवं कल्पना के मिश्रण से कथावस्तु की उद्भावना हुई है। ऐतिहासिक चरित्रों के साथ साथ कुछ कल्पित पात्र भी इस प्रकार गुम्फित कर दिये गये हैं जो लेखक की असाधारण दक्षता और अद्वितीय सृजन शक्ति के परिचायक हैं।

जिन दिनों बंकिम बाबू ने उपन्यास लिखना आरम्भ किया था उन दिनों बंगाल की उपन्यास कला अत्यन्त संकीर्ण परिधि में पनप रही थी। प्रायः विस्मया

द्वोधक एवं अनुरजक कथानको को लेकर बिना किसी अनुभव अथवा बहुज्ञता के तत्कालीन लेखक मन-गढ़त किस्सा-कहानिया लिखा करते थे। वास्तविक जीवन मे उनका कोई लगाव न था और कथा-पद्धति भी घटना-वैचित्र्य, प्रवाह, नाटकीयता, चरित्र-चित्रण एवं मनोवैज्ञानिक विश्लेषण से रहित थी। बकिमबाबू एक नूतन अभिव्यक्ति का तकाजा लेकर आए और बंगला-कथा-साहित्य को उनके व्यक्तित्व से अभूतपूर्व प्रेरणा मिली। उनके उपन्यास अग्रेजी रोमास से पोषित और ह्यूगो, ड्यूमा, स्कॉट आदि पाश्चात्य कलाकारो से प्रभावित होते हुए भी पूर्णतया मौलिक है और बगला वाङ्मय के विविधांगीय विकास-विस्तार के साथ अन्तर्भावों की लोल लहरो और कल्पना के रंगीन स्वप्न-चित्रो के स्वत: अनुभूत सत्य को व्यक्त करते है।

बंकिमचन्द्र ने अपने युग की अर्थपूर्ण प्रवृत्तियो एव मनोभावो को सही आक कर अतीत जीवन की प्रक्रियाओ को नूतन सामाजिक-चेतना प्रदान की है और पुरातन-सभ्यता, जातीय-जीवन और मानव-विकास के इतिहास की अन्तर्भुक्त धारा को अपने अपन्यासो मे अक्षुण्ण रक्खा है। चेतना की सतह पर रोमाटिक और कला मे प्रवर्तक होते हुए भी उनके उपन्यासों मे जीवन का कुतूहल, औत्सुक्य और हृदय को अभिभूत करने वाली निरीहता है, अभिव्यक्ति मे ओज, स्वकेन्द्रित सजग चेतना और विश्वास की अदम्य शक्ति है तथा उनकी भाषा मे एक विशिष्ट नाटकीय आवेश, प्रवाह और भावानुकूल उतार-चढाव का लचीलापन है। यद्यपि उनके उपन्यासों मे ऐतिहासिक दृष्टि से अधिक प्रामाणिक सामग्री नही है, तथापि उन्होने बगाल के जातीय एव सास्कृतिक-जीवन की जो प्रथम रूप-रेखा प्रस्तुत की, वह कम महत्त्वपूर्ण नही। इसके अतिरिक्त बंकिमबाबू का जीवन-दर्शन और आतरिक-समाधान आदर्शवाद का पोषक है। तीव्र अतर्द्वन्द्व एव मानव-मन की गहराइयो मे वे अधिक नहीं उतरे, हा अत:प्रकाश के सात्त्विक संबल पर टिक कर उन्होने देश की राजनीतिक, सामाजिक एव सास्कृतिक समस्याओ को छुआ और उनका समाधान भी बताया।

इतिहास की अब तक की बाह्य एव अत:प्रगतियो के समाश्रित बकिमबाबू की औपन्यासिक-कला मे जो न्यूनता रह गई थी, उसकी पूर्ति बंगाल के दूसरे ऐतिहासिक उपन्यासकार राखालदास बन्द्योपाध्याय ने की। ऐतिहासिक गरिमा, युग की भावनाओ और सास्कृतिक-परम्परा का विचित्र समन्वय तथा देश के अतीत-गौरव की प्रेरणामूलक झाकी इनके उपन्यासों मे द्रष्टव्य है। थोड़े आयोजन से

सजीव चित्रण और सूक्ष्म रेखाओं को उभार उभार कर दर्शाया गया है। 'शशांक', 'धर्मपाल', 'करुणा', 'मयूख', 'असीम', 'श्री चन्द्रगुप्त' और 'लुत्फुल्ला' आदि उनके अधिकांश ऐतिहासिक उपन्यासों में गुप्त काल और मुगल युग की भावधाराएँ मिलती हैं और पाठक को ऐसा भान होता है मानो वह उसी युग के रहन-सहन, रीति रिवाज और अच्छी बुरी प्रथाओं में श्वास ले रहा हो। ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर चरित्रों की उद्भावना करके तथा बीसवीं शताब्दी की पाश्चात्य सभ्यता के घात प्रतिघात में भी वे भारतीय-संस्कृति को जीवित रख सके हैं और उन्होंने वस्तुस्थिति को लक्ष्य में रखकर ऐतिहासिक प्रसंगों और अतीत जीवन के कितने ही कोमल और मनोहारी चित्र अंकित किए हैं।

राखालदास समसामयिक इतिहास की अन्तःस्थितियों के अंकन में भी बड़े दक्ष हैं। आधुनिक संस्कारों से प्रभावित और पुरातन परम्पराओं की विशेषताओं से चिर-परिचित उन्होंने अपने वस्तुनिष्ठ जीवन में जो देखा या अनुभव किया, वह उदात्त बंगाली संस्कृति की वास्तविकता के प्रतीक रूप में अपने चित्रों में उतार दिया। मुख्य चरित्रों का उत्कर्ष ही लेखक का ध्येय है और उसके पात्र न केवल इतिहास की सङ्कुचित परिधि में पोषित मानव हैं वरन् वे वर्तमान में उपस्थित होकर अतीत की आधुनिकता में अभिरुचि कराने में भी योगदान करते हैं। वे अपने युग के प्रतिनिधि मात्र ही नहीं हैं प्रत्युत् उनके व्यक्तित्व में उनका वाञ्छित युग सजीव हो उठा है। अच्छे और बुरे चरित्रों की उद्भावना विविध घटनाओं का चुनाव और उनका यथास्थान विभाजन वर्णन में रोचकता और वेग साथ ही इस कलाकार की चित्रण-शैली इतनी सरल और स्वाभाविक है कि पाठक उसकी कल्पना के साथ बह सकता है। उसका दृश्य-वर्णन भी इतना सजीव और स्पष्ट होता है जो वर्णित दृश्य अथवा घटना को नेत्रों के समक्ष समुपस्थित कर देता है। किन्तु राखालदास के पात्रों में उनकी आन्तरिक अथवा सूक्ष्म-मनोवृत्तियों का चित्रित करने का प्रयास कहीं भी नहीं है। देश और जाति के व्यावहारिक आदर्शों को संस्कृति के अनुकूल ढालने में भी उनकी औपन्यासिक-साधना अधिक व्यापक नहीं होने पाई। वे मूलतः इतिहासकार हैं और अपने साध्य-पथ का अनुसरण करने में ही उन्होंने अपनी कला की साधना को विशेष रूप से परिमार्जित समझा है।

महाराष्ट्र प्रान्त में इसी ऐतिहासिक-आदर्श का प्रवर्तन हरिनारायण आप्टे ने किया। यों तो आधुनिक-मराठी-साहित्य में गुंजीकर ने अपना सबसे पहला ऐतिहासिक उपन्यास 'मोचनगड' स्कॉट के अनुकरण पर शिवाजीकालीन घटनाओं

के आधार पर लिखा था, तथापि आर्य्य-संस्कृति के महान् एवं स्थायी उपकरण आप्टे की कृतियों में ही सर्वप्रथम द्रष्टव्य हुए, जिन्होंने अपनी सृजनशील कला के द्वारा देश को पुनरुत्थान-पथ पर अग्रसर किया। उसकी अपनी एक विशेष औपन्यासिक टेकनीक है, जिसमे निष्प्राण रूढ़ परम्परा को एक भीषण झटके के साथ तीक्ष्ण अभिव्यक्ति प्रदान की गई है। लेखक की अनुभूति एवं जागरूक प्रतिभा अतीत संस्कारो मे पोषित मानव-प्रकृति के वास्तविक स्वरूप से परिचित है, अतः वह इतिहास का प्रतिनिधित्व करता हुआ विभिन्न परिस्थितियों को लेकर आगे बढ़ता है और उसमे जीवन के आदर्शो का भी उचित समन्वय करता जाता है। उसकी प्रत्येक कृति मे इतिहास की आत्मा बोलती है और प्राचीन युग की ऊर्ध्व-मुखी वृत्तियों एवं तत्कालीन मानव-समाज की अन्तर्बाह्य परिस्थितियो का गत्यात्मक चित्रण है।

आप्टे के उपन्यासो मे भारत के अतीत का वृहत्तर स्वरूप, सस्कृति के विविध अंगो और जीवन सम्बंधी दृष्टिकोणों का उत्तरोत्तर विकास तथा अपनी महान् परम्परा के अनुसार अनेक प्रसगो की अवतारणा और उनका उचित संतुलन, इसके अतिरिक्त ऐतिहासिक-गरिमा के साथ साथ निर्बाध चित्रण और कलात्मक गाभीर्य भी समाविष्ट है। जिस प्रकार अंग्रेजी-साहित्य मे सर वाल्टर स्कॉट और बंगला मे बंकिमचन्द्र को अतीतकालीन सामग्री प्रस्तुत करने मे अभूतपूर्व सफलता प्राप्त हुई है, उसी प्रकार मराठी-साहित्य मे हरिनारायण आप्टे द्वारा किए गए अथक प्रयत्न भी वहा की ऐतिहासिक संस्कृति के लिये महान् देन है। उनके उपन्यासों को पढ़ते हुए पाठक को वस्तुत. यह अनुभूति होती है मानो वह अतीतकालीन वातावरण में विचरण कर रहा हो।

आप्टे जिस समय उपन्यास-क्षेत्र मे अवतीर्ण हुए, उस समय लोगो की यह धारणा थी कि उपन्यास पढ़ने से समाज पथभ्रष्ट हो जाता है और उसका नैतिक मानदड गिर जाता है। आप्टे ने मराठी-कथा-साहित्य मे अपने उपन्यासों द्वारा एक नूतन परिवर्तन, एक क्राति की सूचना दी और यह प्रमाणित कर दिया कि उपन्यासो से जीवन की काया पलट हो सकती है तथा निश्चेष्ट मानव-मन मे राष्ट्रीय-चेतना एव अतीत गौरव-भावना भरी जा सकती है। उन्होने भाषा का संस्कार किया, उपन्यास को एक महान् दायित्व मानकर भाव-प्रेषणीयता और आत्माभिव्यजना का साधन बनाया, जीवन के विभिन्न अगो को अधिक सजीवता के साथ स्पर्श किया और कल्पना-शक्ति को जाग्रत करते हुए सास्कृतिक-अतरंगता

का दिग्दर्शन कराया। आप्टे ने अपना सर्वप्रथम ऐतिहासिक उपन्यास 'उष:काल' मराठी साहित्य को भेंट किया जिसमें शिवाजीकालीन घटनाओं का चित्रण किया गया था। इसके पश्चात् उन्होंने दस वर्षों के भीतर 'सूर्योदय', 'गड आलापण सिंह गेला', 'सूर्यग्रहण', 'स्वराज्याचा पाया', 'रूपनगर की राजकन्या', 'म्हैसूर का बाघ' और 'मध्याह्न' आदि ऐतिहासिक उपन्यासों की रचना की।

यद्यपि आप्टे ने ऐतिहासिक गुत्थियों और उनकी सूक्ष्म जटिलताओं को चीरते हुए अपने निरूपण को अंतिम स्तर तक पहुँचाने का प्रयत्न नहीं किया, तथापि अनेक परिवर्तित धाराओं में बहते हुए भी उन्होंने उपन्यास-साहित्य को अबाध गति से आगे बढ़ाया और ऐतिहासिक कथावस्तु में कल्पना एवं तथ्य को सम्मिश्रित किया। 'राष्ट्रपतन' और 'प्रणवीर' में क्रमशः यवन-आक्रमण के पूर्व और पश्चात् के भारत की आंतरिक-दशा का दिग्दर्शन कराया गया है। 'प्रणवीर' में मराठी इतिहास की वह प्रसिद्ध घटना वर्णित है, जिसमें शिवाजी के सेनापति तानाजी द्वारा सिंहगढ़ विजय का उल्लेख है। वज्राघात आप्टे का अंतिम उपन्यास है जो उनकी लाडली इकलौती पुत्री की मृत्यु के पश्चात् लिखा गया था और जिसमें हृदय के अत्यन्त विह्वल भाव व्यक्त हुए हैं। इसमें दक्षिण के अत्यन्त शक्तिशाली, बृहद् हिंदू-साम्राज्य विजयनगर के शासक रामराजा के पतन की गाथा है जिसे बहमनी के चार मुसलमान शासकों ने मिलकर पराजित किया और नष्ट भ्रष्ट कर डाला। इस उपन्यास में हृदय के उद्गार अत्यन्त करुणा-विगलित शैली में सुन्दरता के साथ प्रस्फुटित हुए हैं। इसमें कोरी ऐतिहासिकता ही नहीं, प्रत्युत् युग की पुकार का स्वर प्रत्यक्ष सुन पड़ता है। उपन्यास का मूल वेदना है जिसे केन्द्र मानकर प्रमुख घटनायें आवर्तित होती रहती हैं।

तेलुगु-साहित्य का महान् विभूति चिलकमर्ति लक्ष्मीनरसिंहम् श्री कंदुकूरि वीरेशलिंगम् पंतुलु के समकालीन थे, जो आधुनिक तेलुगु-गद्य के जनक और आद्य के असाधारण प्रतिभासम्पन्न और युग प्रवर्तक लेखक माने जाते हैं। श्री पंतुलु ने सर्वप्रथम अंग्रेजी लेखक गोल्डस्मिथ की प्रख्यात रचना 'दि वीकर ऑफ दि वेकफील्ड' (The Vicar of the Wakefield) के अनुकरण पर अपना ऐतिहासिक उपन्यास 'राजशेखर चरित्रमु' की रचना की थी जिसने अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति अर्जित की और जो अनेक भाषाओं में अनूदित होकर पढ़ा गया। श्री पंतुलु ब्रह्म-समाजी थे और पुरातन रूढ़-परम्पराओं के कट्टर विरोधी, उन्हें तत्कालीन तेलुगु-साहित्य के गौरव-वर्द्धन का श्रेय प्राप्त है।

चिलकमर्ति लक्ष्मीनरसिंहम् ने उन्ही के पदचिन्हो पर चलकर अपनी अप्रतिम कल्पना-शक्ति और आकर्षक रचना-पद्धति के द्वारा तेलुगु-कथा-साहित्य की अभिनंदनीय सेवा की है। युवावस्था में ही नेत्र-ज्योति विलुप्त होने पर उनकी अंतस्साधना कलात्मक अभिव्यक्ति मे परिणत होती गई और एक दिव्य-दर्शी साधक की भांति उन्होने अचेतन मे चेतना का संचार किया। उन्होंने अपने कतिपय रेखांकनों मे मानवीय पहलुओ को मूर्त्त करके इतिहास के प्रमुख व्यक्तित्वो की विशेषताओ को उभार कर दर्शाया और एक कलाकार की हैसियत से उनके चित्र बहुत ही सशक्त, यथार्थ और भावपूर्ण बन पडे। 'अहल्यावाई', 'सौदर्य तिलक' और 'रामचन्द्र विजयम्' आदि उनके ऐतिहासिक उपन्यास विशेष उल्लेखनीय है, जिनमे मध्यवर्गीय आन्ध्र-जनता के जीवन का कलापूर्ण चित्रण है और जो भाषा की सजीवता एवं सुन्दरता की दृष्टि से अभूतपूर्व बन पडे है। श्री नरसिंहम् संस्कृत, तेलुगु, अंग्रेजी आदि कई भाषाओं के पूर्ण ज्ञाता होने के कारण राजमहेन्द्रपुरम् के 'मिल्टन' और आन्ध्र प्रदेश के 'सूरदास' कहलाए। जिस वृक्ष की छाया के नीचे बैठकर ये अपनी विलक्षण वक्तृत्व-शक्ति से नवयुवको को प्रोत्साहित किया करते थे, वह भी आज इस कलाकार की पुण्य-स्मृति को समेटे उनकी शाश्वत अमरता का प्रतीक बन गया है।

श्री नरसिहम् के कृतित्व की सबसे बड़ी खूबी है कि उसमे अतीत जीवन की बड़ी गहरी झाकी मिलती है और वर्त्तमान् आन्ध्र-जीवन मे जो कुछ नवीन और प्रगतिशील है—उससे इनकी कला का विचित्र समन्वय हुआ है। इनके उपन्यासों की कथावस्तु, सुसंगत कल्पना, पात्रो का मनोवैज्ञानिक चित्रण, आकर्षक वातावरण और भाषा की मार्मिकता दर्शनीय है। आकस्मिक घटनाओ को संयोजना भी इन्होने अत्यन्त आकर्षक ढंग से की है। 'रामचन्द्र-विजयम्' इनका सर्वश्रेष्ठ उपन्यास है, जिसमे इनकी भावाभिव्यंजना सरल, किन्तु प्रभावोत्पादक है। लगता है जैसे इतिहास और कल्पना के समावेश से रग की कूची फेरकर इन्होने रेखाओ को उभाड़ा है। यद्यपि कही कही ऐतिहासिक सत्य विकृत है, तो भी इनका जीवन-दर्शन सटीक और मनोग्राही है और इनके व्यक्तिगत अनुभव की एक विचित्र दीप्ति समस्त कृतियो मे द्रष्टव्य है।

इधर गुजराती साहित्य मे कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी की ऐतिहासिक कृतियो ने युगान्तर ला दिया है। उन्होने प्राचीन भारतीय सस्कृति का विशेष प्रतिनिधित्व किया है और अतीत के गरिमामय इतिहास मे कलामय औपन्यासिक अवयवो की संयोजना करके एक विशेष साहित्यिक आन्दोलन का सूत्रपात किया है।

जिसमे मुंशीजी ने सिद्धराज जयसिह के साम्राज्य और तत्कालीन राजनीतिक, एवं सांस्कृतिक उन्नति की रूप-रेखा का विवेचन प्रस्तुत किया । इसके अतिरिक्त 'भगवान् कौटिल्य', 'पृथ्वी वल्लभ', 'जंय सोमनाथ', लोमहर्षिणी', 'भगवान् परशुराम' आदि इनके प्रमुख ऐतिहासिक उपन्यासो मे भारत की अतीत गरिमामयी अखंड परम्परा को परोक्ष रूप से अक्षुण्ण रक्खा गया । 'पृथ्वी वल्लभ' में मालवा नरेश मुज का आख्यान है और 'जय सोमनाथ' मे महमूद गजनवी द्वारा सोमनाथ पर किये गये आक्रमण का रोमाचकारी वर्णन, जिसमें मनुष्य की वर्बरता के छिछले, स्वार्थपूर्ण और नाशकारी पहलुओ का निदर्शन है ।

औपन्यासिक-कला की दृष्टि से मुंशीजी के उपन्यास बहुत ही सफल बन पड़े है । उनकी लेखन-शैली और भाषा-प्रवाह में अद्भुत ऐक्य है । उनके विषय देशकाल के अनुकूल है और रचना-कौशल मार्मिक, गठा हुआ और चुस्त है । मुंशीजी की पैनी दृष्टि युग-युग के अंतराल को भेदकर इतिहास के गंभीरतम तथ्य को उघाड़ उघाड़कर दर्शा देती है और वे एक कुशल कलाकार की भाति तत्कालीन-जीवन के गहरे-धुंधले रगों और स्पष्ट-अस्पष्ट रेखाओ को कल्पना के योग से आकर्षक-चित्रो मे परिणत कर देते है । युग-जीवन के यथार्थ से उपन्यास के विधायक तत्वों को ग्रहण कर मुशीजी ने गुजराती-साहित्य-क्षेत्र मे अपनी कृतियों द्वारा एक उथल-पुथल सी मचा दी है और यथार्थ के आह्वान एवं अतीत-चिन्तन से जो समय समय पर उन्हे प्रेरणा मिलती रही है, उसके फलस्वरूप एक विचित्र सा गरिमामय द्वंद्व हमें उनकी ऐतिहासिक कृतियो में दृष्टिगत होता है, जिससे उनकी नैसर्गिक रस-ग्राहिता जितनी गतिशील प्रतीत होती है उतनी ही स्थायी । वस्तुत. उनका जीवन-दर्शन युग की तहो मे सिमटा हुआ कल और आज के व्यापक एव श्लाघ्य मर्यादावाद का समन्वयात्मक प्रतीक है । वे अचिन्त्य मानव-मन के व्यंजक संकेतो और उसकी प्रेरक भावनाओं को हृदयगम करके इतिहास की शुष्कता को सरसता मे परिणत कर देते है ।

कहना न होगा कि मुंशीजी की भाति हिन्दी औपन्यासिक-जगत् मे महापंडित राहुल साकृत्यायन और वृन्दावनलाल वर्मा ने भी इसी प्रकार ऐतिहासिक-निधि और भारतीय-संस्कृति के अनेक अवयवो को अपने उपन्यासो में सुरक्षित रक्खा है । यद्यपि **राहुल सांकृत्यायन** के उपन्यासो की संस्कृति का रूप-निर्माण वर्त्तमान् युग की समन्वित सस्कृति से संपन्न हुआ है, तथापि उन्होने इतिहास के जिस विशिष्ट युग मे झांककर जीवन की भाव-भूमि मे प्रवेश किया है, उसका

[illegible] का व्यापक चित्रण उनके उपन्यासों में मिलता है। उनकी कुछ रचनाएँ [illegible] स्थूल भौतिक मान्यताओं में लिप्त जीवन के सुख-दुःखों का रसास्वादन [illegible] में व्यस्त रहा। ज्यों-ज्यों उनका वस्तु का [illegible] हो गया और बहिर्मुखी [illegible] के प्रति उनकी जिज्ञासा बढ़ती गई त्यों-त्यों वे अपने सहज मार्ग से विचलित होकर आत्म-तत्त्व की अपेक्षा भौतिक-सत्य पर बल देने लगे और जीवन में गहरे न पैठकर परिस्थितियों के चित्रण में प्रवृत्त हुए। उनकी कला-सृजन की चरम परिणति जीवन के यथार्थ के अंकन और भोग एवं पुनर्जागरण काल के सामाजिक अवस्थाओं के सजीव चित्र प्रस्तुत करने में हुई। नागरिक पारिवारिक जीवन उसकी जटिल समस्याएँ और मधुर रम्य प्रसंग लोगों की सहज मनोवृत्ति एवं आकांक्षाओं आदि को राहुलजी ने अपने उपन्यासों में अद्भुत क्षमता और आत्म प्रतीति के साथ अंकित किया है। प्राच्य और पाश्चात्य इतिहास का गम्भीरतम अध्ययन होने के कारण देश विदेश के प्रमुख प्रमुख आन्दोलनों और बौद्ध-संस्कृति का प्रभाव भी इनके ऐतिहासिक निरूपण में द्रष्टव्य है जिससे उनकी उपन्यास-कला बृहत्तर एशियाई वातावरण से पोषित होकर भीतर से प्राचीन भारतीय मान्यताओं को थामे हुए विराट रूप धारण कर गई है।

इसके अतिरिक्त बाह्य-आकर्षण के साथ साथ अन्तर-सौन्दर्य, हृदय की सहज अनुभूति और रागात्मक-द्रवण भी अविभाज्य रूप से इनकी कृतियों में सम्मिश्र हैं। सामयिक जन-जीवन के प्रति न केवल जागरूकता ही प्रत्युत् एक मीमांसक का दृष्टिकोण इनमें देखा पड़ता है। एक ओर तो वे भावनाओं के स्रोत में बहकर चित्र-विचित्र अनुभवों में कल्पना का रंग भरते जाते हैं, दूसरी ओर एक स्वस्थ जीवन उपभोक्ता की भाँति आध्यात्मिक-तत्त्वों की अवहेलना करके बुद्ध द्वारा प्रतिपादित 'अनात्मवाद' एवं 'परिवर्तनवाद' से खिंचे रहते हैं। इनके उपन्यासों की विस्तृत पट भूमि में प्रदर्शित विभिन्न जीवन-दृष्टियों एवं विचारधाराओं का क्रम भी कुछ विश्रृंखल सा है जिनमें ऐतिहासिक मान्यताओं की अपेक्षा स्वतन्त्र चिन्तन और अपने मन्तव्यों को प्रमुख रूप से सुस्थिर करने की प्रवृत्ति अधिक लक्षित होती है। कहीं कहीं शब्द-वैचित्र्य में लेखक स्वयं खो जाता है समुचित पथ प्रदर्शन के बिना उनके पात्र दिशाहीन से लगते हैं और नायिका का अभाव वातावरण की तरह स्निग्धता में उभार नहीं ला पाता। इनके शैली शिल्प में बौद्धिक दृढ़ता न होकर विस्तृत-जीवन की मूर्त सघन व्यंजना है और इनके उपन्यासों में ऐतिह्य नितान्त सत्य हो या नहीं, हाँ—कला की नूतनता को अपने में समेटे हुए है

राहुलजी के प्रख्यात 'सिंह सेनापति' और 'जय यौधेय' उपन्यास उनकी समृद्ध कल्पना की सहज उद्भूति है, जिनमें लिच्छवी और यौधेयो के गण-जीवन की अनेकरूपता, उनके विरोधी राजकुलो का वर्णन और समकालीन परिस्थितियो के विभिन्न पहलुओ का समर्थ चित्रण हुआ है। राहुलजी का अभी हाल में ही प्रकाशित 'मधुर-स्वप्न' इतिहास के स्तरों मे झांकता हुआ आज से लगभग डेढ़ हज़ार वर्ष पूर्व के सासानी वंशज पीरोजा-पुत्र क्वात् के शासन-काल का सामती-दर्प, धर्माचार्यो का अत्यधिक जोर और अनाचार, मज़्दक और उनके अनुयायियो का प्राणदंड, शासित-वर्ग की उद्दंड-नीति के साथ साथ दलित-वर्ग की दयनीय स्थिति आदि का दिग्दर्शन कराता है। पात्रो के व्यक्तित्व की रेखाये ऐसी स्पष्ट उभर आई है, जो युग युग की शाश्वत अमरता की प्रतीक बन गई है।

राहुलजी की उपन्यास-कला पर बहिर्देशीय संस्कृति की छाप तो है ही, अपने देश के भीतरी विषम चित्रो की विकृति का भी प्रभाव पडा है। आधुनिकता का प्रतिनिधित्व करने वाली उनकी ऐतिहासिक कृतियां व्यापक जीवन-खडो पर टकराकर अचिन्त्य रूप-कल्पना और इनकी सबल सृजन-सामर्थ्य को व्यंजित करती है।

इन्ही के समकालीन हिन्दी के प्रमुख ऐतिहासिक उपन्यासकार **वृन्दावन लाल वर्मा** ने भी अपने उपन्यासों द्वारा साहित्य-क्षेत्र में एक नवीनतम अध्याय खोला है, जिसमे अपने विशाल ऐतिहासिक अध्ययन के आधार पर प्राचीन भारतीय संस्कृति एव वातावरण को पुनर्जीवित करने का प्रयास किया है। इनके उपन्यासो मे जो सत्य-दृष्टि, चित्रण-क्षमता और पुरातन आदर्शो के निरीक्षण की प्रवृत्ति है, वह हिन्दी-कथा-साहित्य मे एक नूतन देन बन गई है। नि.सदेह, वर्माजी ने इतिहास के सत्य को अधिक निकट से परखा है और उनके पात्र उधार लिये हुए नही, वरन् चिर-परिचित ऐतिहासिक मानव है, जो परिस्थितियो के अनुकूल जीवन के सतत सघर्ष को वहन करते है। इनके प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यास 'गढकुडार' और 'विराटा की पद्मिनी' में क्रमश. राजपूताना और बुन्देलखंड के मध्ययुगीन राजघरानो के सामूहिक जीवन-सघर्ष का चित्रण है, जिनमें इतिहास के मूल को कल्पना के योग से संग्रहणीय बना दिया गया है। इसके अतिरिक्त 'झासी की रानी' मे रानी लक्ष्मीबाई के शौर्य का आख्यान, 'मृगनयनी' में गूजर-कुल की सुन्दरी कन्या मृगनयनी और ग्वालियर के शासक मानसिंह तोमर (१४८६–१५१६) की प्रणय-कथा और 'कचनार' में धामोनी के राजगोंडो का इतिहास और कचनार

... ... विजय का चित्रण है जिनमें ... जनता एवं आभ्यन्तरिक तथ्य ... के साथ सम्पूर्ण ऐतिहासिकता का गुम्फन हुआ है। इनकी 'मुसाहिब ... ', माधवजी सिंधिया, टूटे कांटे, नागपुर, 'समरह सौ बत्तीस', ... ललितादित्य आदि अन्य ऐतिहासिक कृतियां भी हैं जिनमें से कुछ अभी अप्रकाशित हैं।

वर्माजी की उपन्यास-शक्ति सराहनीय होते हुए भी उनकी कला विचार ... है सजनात्मक नहीं। ऐतिहासिक-धारा के सरणों की दृष्टि से उनके उपन्यास महत्त्वपूर्ण हैं किन्तु युग-धर्म के साथ पूरा तादात्म्य स्थापित करते हुए वे जीवन की गवाहना को नहीं अपना सके हैं। उनकी दूसरी प्रमुख विशेषता है कि उन्होंने भारतीय इतिहास पर सर्वप्रथम दृष्टि उत्पन्न करके प्राचीन संस्कारों को जगाया है उनके हृदय की विशालता में अतीत-गौरव का महत्-गुण्य समाया हुआ है भाषा-सौष्ठव और भाव-व्यंजना के साथ साथ कथा का निर्वाह और पात्रों का चरित्र चित्रण भी सम्यक् रूपेण हुआ है लेखक का दृष्टिकोण स्वस्थ, सरल और स्पष्ट है तथा उसने अपनी वैयक्तिक अनुभूतियों को व्यापक-जीवन की समग्रता में समाहित कर लिया है तथापि वह सामयिक विषय की गहराई में कहीं नहीं उतरा है और सामाजिक-द्वन्द्वों की अन्तःप्रवृत्ति में पड़ने की भी उसकी अभिरुचि नहीं है। यह सही है कि वर्माजी ने उपन्यास की बहुमुखी धाराओं को एक नई दिशा में मोड़ा है किन्तु वे उन स्वप्न-नगरियों में नहीं आ जीवन की चित्र विचित्र रागिनियों की भरी हाट में पहुंचकर असंख्य जीवन-रंगों को बटोरने को लालायित हों। निर्माण-कौशल में उदात्त-कल्पना का परिचय उन्होंने कहीं भी नहीं दिया है, कथानक का गठन भी साधारण कोटि का है इसके अतिरिक्त उनकी लेखन शैली और भाव प्रकाशन की पद्धति सरल और आकर्षक होते हुए भी वर्णन के बोझिलपन को लिए हुए है जिससे भाषा का सहज प्रवाह किंचित् स्खलित सा होता हुआ बहता है किन्तु इन सब त्रुटियों के बावजूद भी उनकी ऐतिहासिक-कृतियां हिन्दी-जगत् की एक शानदार देन है। उनके अतीत कथानकों के झरोखों में जो पुरातन भारतीय-संस्कृति की शाश्वत झांकी मिलती है वह प्रत्येक जिज्ञासु को इतिहास का मर्म समझने और अतीत की महानता से पुलकित होने का अवसर प्रदान करती है।

ऊपर निर्दिष्ट दस कलाकारों के उच्च सृजन के अतिरिक्त समय समय पर अनेक उपन्यासकारों ने ऐतिहासिक-रचनाओं की उपादेयता को समझा है औ

अपनी एक-दो कृतियो द्वारा इस व्यापक क्षेत्र मे प्रगति की है।

रूसी-साहित्य मे सबसे पहला ऐतिहासिक उपन्यास ओल्गा फोर्श का 'क्लैड इन स्टोन' (Clad in Stone) है, जिसमे उन्नीसवी शताब्दी के क्रांतिकारियो का साहित्यिक निरूपण हुआ है, किन्तु युग-विशेष की नैतिक-सास्कृतिक मान्यताओ का उद्घाटन सर्वप्रथम एलेक्से टालस्टॉय के 'पीटर दि ग्रेट (Peter the Great) उपन्यास मे हुआ, जो पीटर-युग के सामयिक-वातावरण को चित्रित करता हुआ दो खंडो मे प्रकाशित हुआ है। युद्ध से पूर्व के ऐतिहासिक उपन्यासो मे चापिगिन का 'स्तेका राजिन' (Stenka Razin) और कास्तीलेव का 'मिनिन एण्ड पैजारस्की' (Minin and Pajarsky) उपन्यास भी उल्लेखनीय है।

तेरहवी शताब्दी के टार्टर-आक्रमणो से सम्बधित वी. यान द्वारा लिखित 'चगेज खा' (Chengiz Khan) 'बाटू खा' (Batu Khan) और 'एलेक्जेण्डर दि अनइजी' (Alexander the Uneasy) उपन्यास-त्रिक् एक क्रांतिकारी प्रयोग के रूप मे अवतीर्ण हुआ, जिसमे अतीतोन्मुख रूसी-लोगो की मनोवृत्तियो को सम्यक्रूपेण ग्रथित किया गया। यान के दृष्टिकोण से ऐतिहासिक उपन्यास आकर्षक और स्थायी रसोद्रेक करता हुआ भी सत्यता, शौर्य ओर मनो-वैज्ञानिक गूढ़ता को व्यक्त करने वाला होना चाहिए। ऐतिहासिक पात्रो के साथ साथ आवश्यकतानुसार कल्पित पात्रों के सृजन मे भी लेखक पूर्ण स्वतंत्र और निश्चिन्त है।

एस. बोरोडिन के 'दिमित्री दान्सक्वा' उपन्यास मे मध्ययुगीन-रूस की घटनाओ को लेकर कुलीकोवो युद्ध-भूमि मे टार्टर खा मेमाय पर प्रिंस द्वारा किए गए आक्रमण का उल्लेख है, जिसने तत्कालीन रूसी-साहित्य को प्रभावित किया था। 'चगेज् खा', 'दिमित्री दान्सक्वा' और एतोनोवस्का का 'दि ग्रेट मॉरावी' (The Great Mauravy) उपन्यास भी विशेष ख्यात हुए और उन पर स्तालिन-पुरस्कार प्रदान किया गया। परवर्त्ती औपन्यासिक कृतियो मे लियो टालस्टॉय का 'वार एण्ड पीस' (War and Peace), सरगीयेव सेन्स्की का 'सेवस्टोपोल ऑरडियल' (Sebastopol Ordeal) और वी० शिश्कोव का 'एमेलिन पुजाकेव' (Emelyan Pugachev) ने इतिहास की आत्मा को नया संस्कार दिया, जिनमे तत्कालीन प्रवृत्तियो का औरो से अधिक सुन्दर चित्रण हुआ।

इस ओर आकृष्ट हुआ। मलयालम मे सबसे प्रतिभाशाली उपन्यास लेखक सी वी. रमन पिल्ले हैं, जिनके उपन्यास स्कॉट के ऐतिहासिक उपन्यासो के समकक्ष रखे जाते है। इन्होने नवयुग की मांग के अनुसार केरल-संस्कृति की आत्मा को जगाया और उसके शुष्क कंकाल मे प्राणो का संचार किया। 'मार्तण्ड वर्मा', 'धर्मराजा' और 'रामजबहादुर' इनके तीन प्रख्यात उपन्यास हैं, जो जन-रुचि को अपने कलादर्शो द्वारा परिप्लावित करते है। इनके पश्चात् राजा अप्पनतम् पुरान का ऐतिहासिक-उपन्यास 'भूतरायर' भी मलयालम-साहित्य मे अपना विशिष्ट स्थान रखता है।

कन्नड़ भाषा में श्री वेंकटाचार्य के पश्चात् मौलिक ऐतिहासिक-उपन्यासकारो में गलकनाथ का नाम विशेष उल्लेखनीय है। इनके सुप्रसिद्ध उपन्यास 'माधव करुण विलास' मे विजयनगर साम्राज्य के आदि काल का चित्रण है, जिसमें युगानुरूप बौद्धिक-चेतना और कथावस्तु का निर्वाह आद्योपात रोचक और कुतूहलवर्द्धक है। उपन्यासकार पुटन्णा के 'माडिद ने महाराया' और 'मायागना' नामक दो ऐतिहासिक उपन्यास भी सुन्दर है, किंतु कन्नड़-भाषा मे गलकनाथ ही ऐतिहासिक-उपन्यासकारों के प्रमुख स्तम्भ माने जाते है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो गया कि विश्व-साहित्य मे विभिन्न उपन्यासकारो द्वारा अब तक अनेक ऐतिहासिक प्रयोग हुए हैं, जो युगो की संस्कृति से किसी न किसी रूप में सम्बद्ध होकर उसकी धारा को आगे बढ़ाते रहे है। बहुधा इतिहास की आत्मा में बिना प्रविष्ट हुए ही कलाकार सद्य.स्थितियों एव भावना के अनुकूल कल्पना-सापेक्ष्य लावण्य मे अपने कृतित्त्व को द्योतित करते रहे है। अतीत की उभरी स्थूल सौंदर्य-रेखाओ ने उन्हे इतना आकर्षित किया है कि उनकी भाव-प्रवणता प्रमुख हो गई है और इतिहास गौण। इसके अतिरिक्त कुछ ऐसी कृतिया भी लिखी गयी हैं, जिनकी पृष्ठभूमि में अनुभूति की निविड़ता होते हुए भी व्यापकत्त्व नही और वे इतिहास की ओट मे कल्पित चित्रो की अनुप्रेरणा मात्र बनकर ही रह गई है।

वस्तुत: इतिहास, संस्कृति और साहित्य का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध रहा है, वे एक दूसरे के पूरक है और एक के सौंदर्य का विकास दूसरे में साकार हो उठता है। कला के प्रत्येक उपकरण मे ऐसे तत्त्व सन्निहित होते है, जो मनुष्य के चिर-पुरातन संस्कारो और देश-काल की निर्दिष्ट परिधि मे आबद्ध होते है।
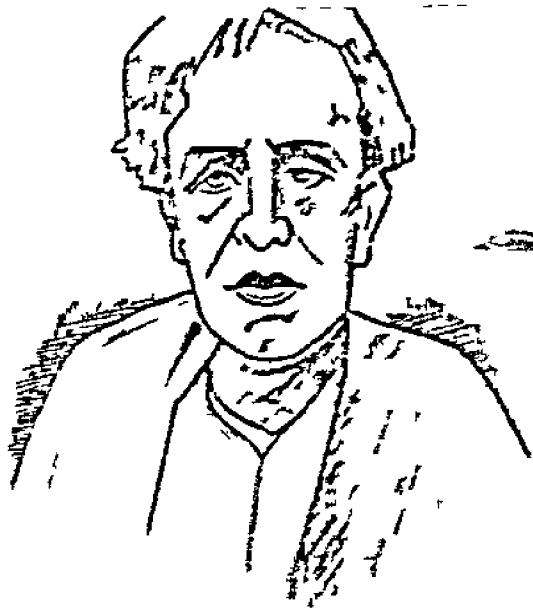
शरच्चन्द्र
और
डॉस्टॉइवस्की

शरच्चन्द्र और डॉस्टॉवस्की की कला युग-युग की जिज्ञासा को लिये मानव की अन्तर्मुखीन चेतना और जीवन के गहन, गम्भीर प्रश्नो की विराट् झांकी है, जिसमे सन्निविष्ट चितन मनस्ताविक गतिभगियों का उद्घाटन करता हुआ सामाजिक वातावरण के सक्रिय, अन्तरग स्वरूपो का निदर्शन कराता है। वाह्य-जीवन के घात-प्रतिघात मानव की चेतनामूलक अन्त.-प्रक्रियाओ को जन्म देते हैं और मनुष्य का अवचेतन मन जीवन की असीम निखिलता में सत्य का अनुष्ठान चाहता है। कलाकार की सफलता मन के गूढ़तम स्तरों, मूक अनुभूतियो और अन्तर्भावनात्मक प्रक्रिया को जगाने एव तीव्र बनाने मे है। वह व्यक्ति के संपूर्ण अस्तित्त्व को बौद्धिक-दीप्ति से भरकर व्यष्टि-अनुभूति को समष्टि-अनुभूति में परिणत कर सकता है।

रूस में डॉस्टॉवस्की और बंगाल मे शरच्चन्द्र के पूर्व जो उपन्यास लिखे गये उन मे मनोवैज्ञानिक-अंकन एवं सूक्ष्म मनस्तत्त्वो को उघाड़ कर दर्शाने का प्रयास न था। इन दोनो के समकालीन रूस और भारत के सर्वश्रेष्ठ उपन्यासकार टालस्टॉय और टैगोर की मौलिक और नवोन्मेषशालिनी प्रतिभा ने अपने उपन्यासों मे मानव-हृदय के वाह्य एवं अन्तरग पहलुओं को स्पर्श तो किया, किंतु उनके लिये जीवन इतना व्यक्त और व्यापक बन गया कि उनकी दृष्टि उन्हीं उपकरणों और स्थलों पर टिकी, जहा व्यापक चेतन की प्रतिष्ठा एवं सूक्ष्म संवेदनों को विराट् शरीरत्त्व का आकार प्रदान किया गया। डॉस्टॉवस्की और शरच्चन्द्र ने ही सर्वप्रथम जीवन

से प्रस्तुत किया। डॉस्टॉवस्की की विलक्षण प्रतिभा की अकस्मात् धूम सी मच गई, किंतु उसके पश्चात् ही जब उसका दूसरा उपन्यास 'दि डबल' (The Double) प्रकाशित हुआ तो उसकी ख्याति पर सांघातिक चोट हुई। इस पुस्तक में मानव-मस्तिष्क की असामान्य चिन्तनाओ और आन्तरिक ऊहापोहों की सुन्दर व्यंजना की गई थी और गोगोल की कलाभिव्यक्ति को नवीन मानवीय संदर्भों से परख कर गभीरतम रूप दे दिया गया था। अशांत मस्तिष्क की अचेतन स्थिति एवं मूल ग्रंथियां, जो ज्ञान-तन्तुओ के दूषित होने से विकृत हो जाती है, भयंकर मानसिक रोगो अथवा विक्षिप्तावस्था को जन्म देती है। उक्त उपन्यास मे इसी प्रकार के अरूप मानसिक-द्वंद्वों का निदर्शन है, जो शनै शनैः पागलपन की स्थिति पर आ रहा है। डॉस्टॉवस्की की भाव-प्रवण आत्मा एवं बौद्धिक-चेतना ने अपने नायक की अन्तरंग भावनाओ में आत्मसात् होकर उसके मस्तिष्क की पेचीदा और रहस्यमयी गुत्थियो को खोलने का प्रयास किया, किंतु तत्कालीन समालोचक और पाठक-वर्ग के क्रूर व्यंगों ने, जिन्होने कि उसकी अत्यन्त साधारण सी पहली कृति को प्रशंसा के पुल बांध कर आसमान मे चढ़ा दिया था, उसे मर्मघाती ठेस पहुचाई और वह उनसे असहयोग कर बैठा। इस बीच उसने और भी अनेक मनोवैज्ञानिक कहानियां और आख्यान लिखे, जो किसी प्रकार भी साहित्यिको को अपनी ओर आकृष्ट न कर सके।

सन् १८४८ में रूस मे जो क्रांति के बादल मडरा रहे थे—उससे तत्कालीन सम्राट् निकोलस प्रथम इतना भयभीत हुआ कि पेट्राशेवस्की के तत्त्वावधान मे पनपने वाले समाजवादी दल को, जिसका कि एक सदस्य डॉस्टॉवस्की भी था, बन्दी बना लिया गया और एक लम्बे कोर्ट-मार्शल के पश्चात् उनमे से कई को मृत्यु-दण्ड दिया गया। २१ दिसम्बर, सन् १८४९ के प्रातः उन्हे वध-यंत्र के पास लाया गया, फासी देने की सभी तैयारी हो गयी थी, ऐन मौके पर उन्हे छोडने का हुक्म आया। डॉस्टॉवस्की को प्राणदण्ड के बदले साइबेरिया मे चार वर्ष तक निर्वासन और कठोर परिश्रम का दण्ड मिला। ओमस्क की जेल मे, जिसका कि उसने 'हाउस ऑफ डेथ' मे सजीव चित्र खीचा है, इन चार वर्षों को उसने व्यतीत किया, किंतु इन दुर्दम्य क्लेशों और यन्त्रणाओ ने उसके स्वास्थ्य पर असर करते हुए भी उसके मस्तिष्क को कुंठित और एकान्त-साधना को नष्ट नही किया। जीवन की भीषण परिस्थितियो ने उसे मानव-विकास के सौंदर्यमूलक पथ पर अग्रसर किया और उसकी परवर्ती रचनाएं आन्तरिक सौंदर्य-बोध से दीप्त हो उठी।

सन् १८५४ में रूस पर से पश्चात् निर्वासन तो हटा लिया गया किन्तु तो भी चार वर्ष तक उसे साइबेरिया में ही रहना पड़ा और वहाँ से सन् १८५९ में उसे विनिर्मुक्त किया गया। स्वस्थ जीवन में प्रवेश करते ही उसने अपनी महान् कृति 'द हाउस आफ डेड' (The House of Death) लिखा जिसमें जेल जीवन के कटु-सत्यों का उद्घाटन किया गया। इसका करुणाजनक हृदय और मस्तिष्क को झकझोरता हुआ आगे बढ़ता है और लेखक की अन्तर्भेदी दृष्टि मनुष्य के भीतर, बहुत भीतर रमकर मस्तिष्क के अज्ञात स्पन्दन और जीवन-संघर्ष के अस्पष्ट पहलुओं के रहस्यात्मक सत्य का पर्दाफाश करती है, जो अन्धकार-जन्य विच्छिन्न होकर जीवन के आर-पार झांक लेने की सामर्थ्य प्रदान करता है। आन्तरिक संघर्ष के द्वेष-उत्पीड़न एवं ग्राह्य अग्राह्य स्पर्शों की सामूहिक व्याख्या करके आत्म-यन्त्रणा के कठोर सघातों को अनिवार्य छोर तक पहुँचाया गया है। कहना न होगा कि इस ग्रन्थ में डॉस्टावस्की की मानसिक प्रक्रिया का पूर्ण विकास हुआ है जिससे वह योरप के साहित्य-क्षेत्र में बहुत ऊँचा उठ गया।

सन् १८६६ में प्रकाशित डॉस्टॉवस्की की सर्वश्रेष्ठ कृति 'क्राइम एंड पनिशमेंट' (Crime and Punishment) में उसकी विराट् सृजन-सामर्थ्य के दर्शन हुए जिसमें मानवीय गुण-शक्तियों और उसके व्यक्त-अव्यक्त मूलाधारों का मनोवैज्ञानिक निरूपण किया गया। रूसी-साहित्य में मनोविश्लेषणात्मक पद्धति से लिखा हुआ आज तक ऐसा अद्भुत ग्रंथ कभी प्रकाशित न हुआ था। इस उपन्यास में एक ऐसे निर्धन व्यक्ति रास्कॉल्निकाव के अन्तर्द्वन्द्वों एवं मानसिक ऊहापोहों का चित्रण है जो घोर मस्तिष्कीय अव्यवस्था, अशान्ति और अज्ञात शैतानी-शक्ति की प्रेरणा से एक धनी विधवा का वध कर देता है और इस दुष्कृत्य के पश्चात् उसके अन्तर को मथने वाली आशा-निराशा, भय-दुस्साहस और सुख-दुःख का प्रबल विस्फूर्जन जो न केवल उसके अनुभूत तथ्यों को अमर तूलिका से अंकित गहरी रेखाओं द्वारा व्यक्त करता है, वरन् अन्त में असह्य यन्त्रणा और भीतरी छटपटाहट को कम करने के लिये पुलिस के सामने उसका आत्म-समर्पण, साथ ही अन्य गौण पात्र—जैसे मार्मेलादोव परिवार और ईमानदार पुलिस इन्सपेक्टर राजुमिखिन तथा सेंट पीटर्सबर्ग नगर में उठता हुआ जहरीला धुआँ—सभी मानो अत्यन्त सजीवता से चित्रित हुआ है और अपने सर्जक की शिल्प की विलक्षणता एवं उन्मुक्त चेतना का परिचायक है। रास्कॉल्निकाव का सोनिया वेश्या के सम्मुख घुटने टेक देना और यह कहना "मैं तुम्हारे सामने नहीं झुक रहा हूँ, वरन् मनुष्य के संघर्षों और कष्टों के समक्ष नत हूँ" और भी लेखक की उद्बुद्ध बौद्धिक-

अभिधा का सामाधान कराता है। डॉस्टॉवस्की के स्वभाव की यह सहज सीमा है कि मनोभाव-ज्ञापन के व्यावहारिक-प्रयोगो एवं मानव-प्रकृति के अस्वस्थ, अस्वाभाविक तन्तुओ मे घुसने की उसने असाधारण चेष्टा की है और उसका यह विश्लेषणात्मक प्रयास विश्व-साहित्य मे बेजोड है।

उसकी परिवर्त्ती कृतियो मे यह बौद्धिक-वार्द्धक्य और भी सघन होकर छाता गया है और उसकी आन्तरिक कचोट अनुभूत-तीक्ष्णता मे परिणत होकर अधिकाधिक तीव्र होकर व्यक्त हुई है। उसके दूसरे प्रसिद्ध उपन्यास 'दि ईडियट' (The Idiot) मे स्थूल और सूक्ष्म दोनो प्रकार के मानसिक-द्वद्व, विद्रूप और भीषण अह के विस्फोट के सबल, क्रांतिमय अंकुर प्रस्फुटित हुए है, जिसमे एक मिश्किन नामक पढ़े-लिखे मूर्ख के मानसिक-असतुलन, मति-विभ्रम और स्नावयिक-विकृतियो का विभिन्न दृष्टिकोणो से विश्लेषण किया गया है। इस व्यक्ति मे मानसिक-शैथिल्य और आत्मिक-दुर्बलता होने के कारण सरलता और सद्भावना की मात्रा इतनी बढ गई है कि वह चोर, बदमाश, गुडो और दुश्चरित्र व्यक्तियों के गिरोह से साफ़ बच निकलता है, यहा तक कि वे सभी उसके ओजस्वी व्यक्तित्त्व से प्रभावित हो उठते है। वह सब से दिल खोल कर मिलता है और उसकी उच्चाशयता एव सद्व्यवहार, जो मस्तिष्क की विरुद्ध प्रक्रियाओ के साथ साथ उसमे आत्म-प्रतीति और समष्टि-चेतना जगाते है, उसे मानव-मस्तिष्क का अन्वेषक बना देते है। किसी भी क्रम का निर्णय करने के लिये जो मस्तिष्क की प्रच्छन्न क्रियाए है, वे पहले स्थूल-सस्कारो को भीतर ले जाती है और पुनः भीतर से बाहर। उनमे ग्राह्य कौन है और अग्राह्य कौन— इसका निर्णय सूक्ष्म बौद्धिक-क्रियाओ से होता है, जिसको इस व्यक्ति ने अपनी पूर्ण पकड़ मे कर लिया है। डॉस्टॉवस्की ने इस चरित्र को अद्भुत क्षमता से चित्रित किया है, जिसमे उसने अपनी अतिशय कोमलता और सौंदर्य-चेता आत्मा की तरल स्निग्धता के मार्दव से ऊबकर अनगढ और परुष का समावेश भी किया है। उसके अपने 'स्व' की वह वास्तविक तस्वीर नही है, वरन् कल्पित प्रतिरूप है, जो वह बनने की इच्छा रखता है। डॉस्टॉवस्की की स्वभावगत त्रुटियो के बावजूद जितनी अच्छाइयां है, वह इस पात्र मे विचित्र रूप से गुम्फित हो गयी है।

मिश्किन के ठीक विपरीत रोगोज़िन व्यापारी है, जो उच्छृंखलता और दुर्दम्य वासनाओ का आगार है और अपनी प्रेयसी नास्टासिया का इस आधार पर वध कर देता है, क्योंकि वह उसके प्रेम को पूर्णतया जीतने मे अक्षम है। इस दुर्दान्त घटना के पश्चात् वह मनहूस रात्रि, जो नास्टासिया को मारने के बाद बीतती है,

उपन्यास का कथानक हल्का, वाक्य असम्बद्ध और चरित्र-चित्रण अस्वाभाविक एवं एकागी है। घटना-चक्रो का आयोजन आवश्यकता से अधिक है और पात्रों की इतनी भीड़-भाड़ इकट्ठी हो गई है कि लेखक की प्रतिभा दब सी गई है और उसकी असाधारण सूझ-बूझ, जिसका परिचय उसने अपनी पूर्ववर्त्ती कृतियो में दिया है, कुंठित सी जान पड़ती है।

'दि डेविल्स' के पश्चात् डॉस्टॉवस्की ने अपनी शक्तियो की दिशा बदल दी और लगभग सात-आठ वर्षों तक उसका झुकाव पत्रकारिता की ओर रहा। उसने 'एक लेखक की डायरी' (Diary of a Writer) पुस्तकाकार लिखी है, जिसमें सामयिक घटनाओ की समीक्षा की गई है। तत्पश्चात् वह अपने एक अधूरे उपन्यास 'दि ब्रदर्स कार्माजोव' (The Brothers Karamazov) को, जो कि आकार में उसकी सबसे बडी कृति है, लिखने मे व्यस्त हुआ, किन्तु पूर्ण न कर सका और बीच में ही उसकी मृत्यु हो गई। इस उपन्यास मे दिमित्री, इवान और आल्योश नामक तीन भाइयो की कथा है, जिनका पिता दुरात्मा, व्यभिचारी और कुटिल-हृदय का है। पिता के प्रच्छन्न संस्कार तीनो भाइयों मे होने के कारण उनमे दुष्प्रवृत्ति एवं सद्वृत्तियो का विचित्र समन्वय है। सबसे बड़ा भाई झक्की, असंयमी और दुश्चरित्र है, जो अपनी काम-वासनाओ को आपत्तियो मे भुला देने की चेष्टा करता है; दूसरा भाई घोर भौतिकवादी है, जिसकी आत्म-यंत्रणाएं इस उपन्यास मे खूब विस्तार से वर्णित की गई है और तीसरा भाई आल्योश मानवता का प्रेमी , साथ ही ईश्वर और मनुष्य की शक्ति मे पूर्ण आस्था रखने वाला है। वह किसी मठ में प्रश्रय पाने का इच्छुक है, किन्तु उसका पिता उसे ससार के सुख-दुःखो के आस्वाद की प्रेरणा देता है। फलस्वरूप आल्योश भौतिक आकर्षणो की मृगमरीचिका से लुब्ध दुनिया की रंगीनियो और ऐश्वर्योपभोग में लिप्त हो जाता है, क्योंकि अपने जन्मजात संस्कारो के कारण वह भी भयानक कामी है और इस प्रकार शनैः शनैः वह पतनोन्मुख हो जाता है। इस पुस्तक का नाम 'एक महान् पापी का इतिहास' (The History of a Great Sinner) रखा जाने वाला था और इस महान् पाप का नायक आल्योश को ही होना था, किन्तु इस अन्तिम स्थिति पर आने के पूर्व ही डॉस्टॉवस्की की मृत्यु हो गई और उसका मन्तव्य अधूरा रह गया।

डॉस्टॉवस्की ने अचेतन अथवा अवचेतन मन की स्थापना करके मानव-मस्तिष्क के गूढ़ स्तरो में झाकने का प्रयास किया और आतरिक विकृतियो एवं

विरुद्ध प्रतिमाओं का मनोवैज्ञानिक व्याख्या करके उन्हें स्थूल प्रतीकों द्वारा स्पष्ट किया। शरच्चन्द्र में डास्टायवस्की की सी गहराई तो नहीं है तो भी उन्होंने मानसिक द्वन्द्व और आन्तरिक सूक्ष्म भावनाओं को परीक्षणात्मक प्रयोगों में सिद्ध किया है और स्थूल सूक्ष्म एवं विकसित-अविकसित मनोभावों को अद्भुत क्षमता से दर्शाया है।

जीवन विराट है और मनुष्य अपने चारों ओर के विस्तृत अनुभव-क्षेत्रों का प्रसार करते रहने का इच्छुक। उसमें जिज्ञासा है और आत्माभिव्यक्ति की प्रबल कामना। सच्चा साहित्यकार घटना मात्र में जाकर जीवन रहस्यों को आगाना में पकड़ लेता है। डास्टॉवस्की ने जिस प्रकार अर्द्ध विक्षिप्त असन्तुलित और विकारी मस्तिष्कों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया ठीक उसी प्रकार शरच्चन्द्र ने भी जागरूक रहकर जीवन की गहराई को आंका और तत्कालीन बंगाल की प्राचीन परिपाटियों के विरुद्ध अपनी क्रियात्मक क्षमता और निजी अनुभवों के बल पर विशेष दृष्टि से स्त्री-पुरुषों के अन्तर्भाव राग-द्वेष के विविध समस्याओं पर आन्तरिक वैषम्य विरोध छलना पतन आदि का अनुदान कराया। उन्हीं के शब्दों में, "मनुष्य को यदि भली भाँति खोजा जाय तो उसके प्रच्छन्न प्रभेदों को प्रत्यक्ष किया जा सकता है। ऐसी स्थिति में उसकी स्वभावज त्रुटियों से समवेदना प्रकट किए बिना भला कोई कैसे रह सकता है।

दुनिया में कुछ ऊपर जहाँ आदर्श जीवन में वास्तविक जीवन का अभिनय अधिक यथार्थ है रहस्यमय विराट और विशिष्ट घटनाओं के अगणित दृश्य अन्धकार में जुगनुओं से कौंध जाते हैं और मानवीय-कुण्ठाओं अतृप्त आकांक्षाओं और वैयक्तिक अवैयक्तिक स्वप्न-स्वप्नों को साकार कर जाते हैं। प्रेम और वासना का द्वन्द्व ठीक ठीक समझा तो नहीं जा सकता किन्तु अनवरत डूबा हुआ अविश्वास भीतरी दर्द अदम्य घनित अचिन्त्य मनोव्यापार उत्तेजनाएं अस्पष्ट संकेत, अन्तरतम में गुप्त गत अभिसतम निगूढ़ तत्त्व कभी कभी एक विचित्र कंपकंपी अथवा विवश और अनियन्त्रित स्वभाव से उभर पड़ते हैं। स्त्री प्रकृति और पुरुष प्रकृति में जो वैषम्य और वैपरीत्य है उसके फलस्वरूप अनेक चेष्टित व्यापारों की व्यक्ति होती है और न जाने उनके अन्तर में छिपे कितने आग्रह कितने निषेध कितने श्लील-अश्लील भाव व्यक्त हो उठते हैं। शरच्चन्द्र के उपन्यासों के अधिकांश नारी और पुरुष-पात्रों का चित्रण इन्हीं अतृप्त मानवीय वासनाओं की स्थापना के लिए हुआ है। 'श्रीकान्त' की अभया, 'चरित्रहीन' की किरणमयी और 'शेष प्रश्न' की कमल जीवन की असीमित लिप्साओं को लिये हुए मन की सहज अविवेक गति को बांधकर रखने में असमर्थ हैं।

निराशा मस्तिष्कीय विकृति को जन्म देती है और यौवन का अधा उन्माद वाह्य एवं आतरिक जीवन में विसंवादी स्वरो के प्रलाप से अतः-शक्ति का ह्रास करता चलता है। विपरीत परिस्थितियो से सघर्ष, सामाजिक व्यवस्था के कारण पुरातन आदर्शों के प्रति विस्फोटक विद्रोह और प्राणघातक लिप्साओ के दमन की चाह शरच्चन्द्र की नारियो को उच्छृंखल वना देती है और उनकी दुर्दम्य वासनाये विस्तार से सिमट कर कभी उफन पडती है और कभी भीतर दव जाती है। 'चरित्र-हीन' की किरणमयी का विवाह यद्यपि हारान मे हुआ है, तथापि उसकी असगत इच्छाए इतनी उदड हो गई है कि वह अपने पति की रुग्णावस्था मे ही डॉक्टर अनग के प्रेम मे फंसकर अपने को पतित कर लेती है। तत्पश्चात् वह दिवाकर को लेकर वर्मा भाग जाती है और उसे अपनी ऐन्द्रिय-वासनाओ का शिकार वनाती है, किन्तु अन्त मे उपेन्द्र के सान्निध्य मे आकर उसकी समस्त वासनाए उसी ओर खिच जाती है और एक विचित्र से ऊहापोह एव भीतरी कचोट को सहते सहते वह विक्षिप्त हो जाती है।

'श्रीकान्त' उपन्यास में राजलक्ष्मी, अभया और कमललता सभी श्रीकान्त को प्रेम करती हैं और उनमे आसक्ति-अनासक्ति एवं वासनात्मक-द्वद्व दृष्टिगत होता है। 'शेष-प्रश्न' की कमल कुछ ऐसे असाधारण तत्वो से निर्मित हुई है कि उसमे विचित्र प्रेमोन्माद होते हुए भी उपरामता है और जीवन की एकाग्र-अनेकाग्र वृत्तियो के मध्य भी उसमे अविचलित साहसिकता के दर्शन होते है। सामाजिक-विलगाव, रूढ़ि-बद्धता एव आचार-विचार के वोझिल नियमो से दवी उसकी वहिर्मुखी भावुकता क्रान्ति करती चलती है और भीतर की प्रवहमान प्रेरणा अतः-शक्ति के सहारे जीवन के अप्रतिहत वेग के साथ डूवती-उतराती क्षण-प्रतिक्षण उठती गिरती वासनात्मक-ऊर्मियो पर थिरकती है। अपने आंतरिक-विश्वासो और अकाट्य-तर्कों से कमल यह सिद्ध कर देना चाहती है कि रूढ़ियां जो किसी ज़माने मे वुद्धिसंगत थी —अव नवीन परिस्थितियो मे असंगत हो गई है। अतीत अन्ध विश्वासो और आज के मानव की सहजात वृत्तियो के वीच जो दुर्भेद्य प्राचीर खडी हो गई है—उसे सुदृढ़ बनाने के लिये आत्म-सजगता और निर्भीक वुद्धि अपेक्षित है, यही कारण है कि वह अपने ईसाई पति की मृत्यु के पश्चात् पुनर्विवाह के निपेधमूलक नियमो को विच्छिन्न करती हुई शिवनाथ को पतिरूप मे वरण कर लेती है और विवाहित जीवन मे ही अपनी घनिष्ठता विलायत से लौटे हुए अजित नाम के एक नवयुवक से वढा लेती है, जिसका विवाह-संवंध आशु वावू की एकमात्र पुत्री मनोरमा से निश्चित् हो चुका है। अन्त मे घटनाओ का रुख कुछ ऐसा होता है कि कमल के पति शिवनाथ

की मनोरमा में अनुचित संबंध हो जाता है और कमल वस्तुतः प्रतिकार भावना से प्रेरित होकर अथवा अपनी ही ... के वशीभूत अजित की जीवन-संगिनी बनना स्वीकार कर लेता है। इस ... पथ पर वह जिस अज्ञात दिशा की ओर उन्मुख होती है वहाँ बंधनों का अन्त और निर्बाध विस्तृत जीवन पड़ा है। विस्मय का पुतला ... प्रेरणा और दुस्सह ... के लिए वह दुर्ही ... मार्ग में आगे बढ़ती है और अपना जीवन दूसरों को देकर भी वह उसमें रमती नहीं ... पृथक रहती है। न जाने कितने मनोव्यापारों और द्विधाओं से वह घिरी है, किन्तु उसका सतेज अन भूमिका भीतर ही भीतर सिमटी हुई रागतत्त्व से पृथक् होकर स्वयमेव तटस्थ हो गई है और उपन्यास के अन्त में तो उसका औत्सुक्य और कौतूहल ... चिंतन की कटुता में परिणत होकर और भी विचित्र रूप धारण कर गया है।

न केवल शरच्चन्द्र के उपर्युक्त प्रमुख नारी पात्र ही असाधारण हैं, प्रत्युत ... की सुमित्रा 'वामुनेर मेय' (ब्राह्मण की बेटी) की सध्या, 'देवदास' की पार्वती 'श्रीकान्त' की राजलक्ष्मी और 'शेष प्रश्न' की मनोरमा आदि भी सबल व्यक्तित्व की विचित्र नारियाँ हैं जिनके अणु-परमाणुओं में निरन्तर अविश्वास की चिनगारियाँ सुलगा करती हैं। 'बामुनेर मेये' में सध्या के अपने विवाह का आकुल आग्रह एक बार ठुकरा देने पर जब पुनः अरुण उसे अपनी स्वीकृति देना चाहता है तो उसके मर्म पर चोट करती हुई वह उसकी उपेक्षा करती है और अपने पिता के साथ वृन्दावन चली जाती है। निम्न वार्तालाप का तीखा व्यंग देखिये—

अरुण अवाक होकर बोला, "सध्या! तुम भी जा रही हो? मैं उस दिन अपना चित्त स्थिर न कर पाया था, किन्तु मैंने निश्चय किया है कि तुम्हारी बात से ही राजी हो जाऊँगा।"

सध्या बोली, "उस दिन मेरा भी चित्त स्थिर न था अरुण जी, किन्तु आज मेरा चित्त स्थिर हो गया है। मैं पिताजी के साथ यही बात जानने जा रही हूँ कि औरत के लिये शादी करने के अतिरिक्त कोई काम है भी कि नहीं? इसलिये ... करना, हमें देर हो रही है, हम चलें।"

कहने की आवश्यकता नहीं कि शरच्चन्द्र ने नारी के भीतर के उपद्रव को पढ़ा है, उसके अन्तर में छिपे सत्य को अवगत कर लिया है। जीवन की एकस्वरता से ऊबकर जो अकथ्य, असमनीय खिंचाव, विघटन और द्वन्द्व कमजोर मस्तिष्क को मथा करता है—वही इनके नारी-पात्रों का सबल प्रेरणा और दर्दभरी हूक परिणत होकर फूट पड़ा है।

इनके उपन्यासो के अधिकाश पुरुष-पात्र पर-स्त्री-कातर, उच्छृंखल, लक्ष्यहीन और सामाजिक विधि-निषेधो से निर्लिप्त होते है। श्रीकान्त, देवदास, सतीश, इन्द्रनाथ, सव्यसाची, अरुण और शिवनाथ सभी प्रणय के मूक विस्फोट को थामे अजीब उलझन और परेशानी मे पड़े है। प्रेम उनके लिये महज भुलावा और प्रवंचना है, भीतर की तड़प, जो विद्युत् की कौंध सी चिलक कर छिप जाती है। वे हरवक्त हल्का सा दर्द लिये एक सुखमय जुगुप्सा का अनुभव करते है। उनके अंतरतम मे जो हलचल, जो सघर्ष और कचोटन सी होती है, वह निरन्तर चोट करती हुई उन्हे क्रांति की सतह पर खींचती है, किन्तु अनेक वार जीवन की ऊब और दुराग्रह उन्हे आसपास छाए कोलाहल से ऊपर उठाकर पौरुषहीन बना देती है। प्रारंभ मे उनके प्राणों में जोश है, अदम्य उत्साह, जो उनमे प्रणय-कौतूहल जगाता है, किन्तु अन्त में वही गहरी खड्ड। नारी को अत्यन्त निकट पाकर उनका उत्साह मानों शिथिल पड़ जाता है और उसकी सहज उच्छृंखलता और अलंघ्य दूरी उनके हृदयो में एक अनिश्चित् आशंका और झिझक भर देती है।

शरच्चन्द्र के उपन्यासो में नारी और पुरुष का परस्पर प्रेम मूलत. एक समस्या है, जिसमे न जाने कितने सूत्र, सूक्ष्म-तरल तार इस समस्या मे गुथे हुए है। मूल समस्या सामञ्जस्य की है—दोनों के पारस्परिक आकर्षण मे जो खिचाव की बेबसी है, वही उन्हें छोटी छोटी तात्कालिक उलझनो की ओर ढकेलती है। प्राय. उनके सभी उपन्यासों में नारी और पुरुष का रागात्मक द्रवण मनोलोक के सुस्थिर व्यामोह में परिणत हो गया है और अन्त मे उनका आकर्षण ही विकर्षण बनकर निराकार आक्रोश और अन्तर्वियोग की धूमिल छाया बन छा गया है, जहा विस्मरण की चिरन्तन प्रेरणा और अन्तर का करुण क्रन्दन छिपा है।

दुरभिसन्धि

यहा यह लिखना अप्रासगिक न होगा कि शरच्चन्द्र और डॉस्टॉवस्की दोनों ने ही मानव-विकृतियो का पर्दाफाश करके सामाजिक रूढियो मे बंधी चिताधारा को गहरी ठोकर दी, जिससे चिंतन का रुख ही बदल गया। डॉस्टॉवस्की के उपन्यासो के पात्र प्राय. अस्वस्थ, अशरीरी, विक्षिप्त, मानसिक रोगी, पापी, कामुक और पागल होते है। अव्यवस्थित मस्तिष्क और अतृप्त ऐन्द्रिय वासनाओं का विश्लेषण करके उसने मानव की प्रच्छन्न वृत्तियों को अपने उपन्यासो मे इस ढंग से उद्घाटित करके दर्शाया कि तत्कालीन रूसी-साहित्य मे एक क्राति सी मच गई। कुत्सित यथार्थ को चित्रित करने के लिये उसने जीवन-समष्टि मे झांक कर अपनी सबसे अधिक हमदर्दी पतितो और आत्म-प्रपीड़ितो के साथ व्यक्त की और उन्हे

ने अपने उपन्यासों का विषय बनाया। जीवन की विभीषिकाओं के शिकार, चतुर्दिक उपहास के कारण कुण्ठा और निराशा के शिकार बनकर, भयंकर परिस्थितियों और घृणित परवशता में पड़कर उसने अपने समय, ग्लानि और दलित मानसिक भावों को उसी वर्ग के लोगों की कुण्ठाओं और मस्तिष्कीय विकृतियों के रूप में चित्रित किया है।

मनुष्य की विविध मनोवृत्तियाँ घृणा, क्रोध, पागलपन, हिंसा और उन्माद मनोवैज्ञानिक दृष्टि से उस असंतुलित मस्तिष्क की विकृत चेष्टाएँ हैं, जिसका अनवरत उद्वेलित होकर अपने चेतना-तंतुओं पर नियंत्रण खो चुका होता है अथवा अपने भीतरी उद्दण्ड उद्वेगों के समक्ष नतमुख हो जाता है। ये उभरी हुई वक्र चेष्टाएँ और जागरूक, प्रतिरोधक मनोभाव किस प्रकार मनुष्य की स्वाभाविक वृत्तियों और जीवन-व्यापारों का प्रत्यावर्तन करते हैं—इसका डॉस्टावस्की ने अपनी आन्तरिक शक्तियों से सम्यक् विश्लेषण करके प्रयोग सुझाया है।

इस प्रकार मानव चरित्र के गुप्ततम रहस्यों और अधःपतित समाज का चित्रण करने से डॉस्टावस्की पर साहित्य में गन्दगी फैलाने का आरोप लगाया गया। शरच्चन्द्र के उपन्यासों में भी अधिकतर वेश्याओं, दुश्चरित्र विधवाओं और निर्लज्ज स्त्रियों के अंतर्द्वन्द्व के सूक्ष्मांकन का ही प्रयास है। उनके पुरुष-पात्र भी प्रायः आवारा, लफंगे, बिगड़े हुए रईस और चंचल मनोवृत्ति के व्यक्ति होते हैं। कहना न होगा कि जिस प्रकार रूस में डास्टावस्की पर परम्परागत साहित्यिक-रूढ़ियों को छिन्न-भिन्न करके अपना एक नया पथ बनाकर चलने का लाञ्छन लगाया गया, उसी प्रकार भारत में तात्कालिक बंगाली समाज ने भी शरच्चन्द्र को उनकी कृतियों के लिए बुरा भला कहा तथा एकनिष्ठ प्रेम की मर्यादा को भंग करके असती नारियों को गरिमान्वित करने का दोष लगाया। किन्तु उनके मत से महान् से महान् पापी और हिंसक के जीवनगत सत्य को पकड़ना और भी कठिन एवं दायित्वपूर्ण है। अल्प दृष्टि वाले मनुष्य के लिये जो हेय है, वही कलाकार की व्यापक दृष्टि में उपादेय हो जाता है। शरच्चन्द्र लिखते हैं —

"समाज नामक वस्तु को मैं मानता हूँ, किन्तु देवता करके नहीं। पुरुष तथा स्त्रियों के बहुत दिनों के पुंजीभूत मिथ्या कुसंस्कार तथा उपद्रव इसमें सम्मिलित हैं। .... पुरुष के लिये उतनी कठिनाइयाँ नहीं है। उसके लिए धोखा देने का मार्ग खुला हुआ है, किन्तु जिसके लिये किसी भी तरह छुटकारे का मार्ग खुला नहीं है—वह है स्त्री। एकनिष्ठ प्रेम की मर्यादा को इस युग का साहित्यिक भी मानता है, इसके प्रति उसकी श्रद्धा तथा सम्मान की कोई सीमा नहीं है, किन्तु जिस बात को वह सह नहीं सकता—वह है उसके नाम से धोखा। उसे ऐसा प्रतीत होता

हैं कि इसी धोखे के रास्ते से भावी संतानों की आत्मा में असत्य संक्रामित होता है और इसी के फलस्वरूप वे कायर, ढोंगी, निष्ठुर होकर उत्पन्न होते हैं। सुविधा तथा प्रयोजन के तकाजे को मानकर कदाचित् लोग अनेकों असत्य को सत्य करके चलाते हैं, किन्तु केवल इसी बहाने से जातीय साहित्य को कलुषित करने की तरह पाप बहुत कम है। सामयिक आवश्यकता चाहे कुछ भी हो साहित्य को इस संकुचित दायरे से मुक्ति देनी ही पड़ेगी।"

वस्तुतः कलाकार मानव के गुण-दोषो का प्रतिनिधित्व करता हुआ विश्व-जीवन का समाधान लेकर चलता है। कल्याण की साधना मे प्रवृत्त होने पर सद्-असद् की परिभाषा भी बदल जाती है। जिनका अतरंग जीवन साधन-संपन्न और विशाल है—वह अखड विश्वास मे बंधा सम्भाव्य सीमा से पार झाकने की क्षमता रखता है। शारलोट ब्रोण्टे के 'जेन आयर' (Jane Eyre) उपन्यास में कथित निम्न उद्गार शरच्चन्द्र और डॉस्टॉवस्की की मूल-भावनाओ को सुन्दर ढंग से व्यक्त करते हैं —

"मै अब आपसे आचार-विचार, परम्परागत-रूढ़ियों अथवा हाड़-मांस के शरीर के माध्यम से नहीं बोल रही हूं, वरन् मेरी आत्मा आपकी आत्मा को संबोधन कर रही है, ठीक इस प्रकार मानों दोनों की आत्माएं समाधिस्थ होकर प्रभु के चरणों में खड़ी है, दोनों समान—जैसे कि हम है।"

("I am not talking to you now through the medium of custom, conventionalities, or even of mortal flesh; it is my spirit that addresses your spirit, just as if both had passed through the grave, and we stood at God's feet, equal—as we are!")

सच्चे साहित्यकार के लिये आदर्श-अनादर्श का विभेद वांच्छनीय नही है। यथार्थ की साधना के लिये उसे स्थूल प्रतीक चाहिए। वह अपने जीवन की समूची सिद्धि वृहत्तर मानव-प्रतीको मे प्रतिफलित करता हुआ व्यापक सामजस्य चाहता है। उसकी आत्मा हमारी आत्मा से मानो पुकार पुकार कर कहती है, "मनुष्य के प्रेक्षक मत बनो। विनत प्रेम वह दुर्दम्य शक्ति है, जो हिंसक-भावनाओं से कही अधिक बढ़ कर है। सक्रिय सद्भाव ही परस्पर विश्वास जगाता है। मानव से प्रेम करो और उनके कुकृत्यो से मत डरो, वरन् पापी मनुष्य से भी घृणा मत करो। प्रभु के सभी जीवों से स्नेह करो और यह प्रार्थना करो कि वह तुम में सदाशयता की वृद्धि करे। सरल बालकों और उन्मुक्त पछियो से सदैव चहकते रहो।"

बाह्य और अंतश्चेतना

शरच्चन्द्र और डॉस्टॉवस्की की संपूर्ण साधना स्वानुभूत तथ्यो के समुचित परिपाक के अनन्तर पार्थिव जीवन के मौलिक परख की वैज्ञानिक परिणति में है।

डॉस्टोवस्की अपनी कला द्वारा व्यक्ति-व्यक्तित्व व समष्टि का सामञ्जस्य दर्शाता है और शरच्चन्द्र की कलामय [illegible] बाधा प्रयोगों का आत्मगत करके उनके मूल अमूल्य सत्य [illegible] दर्द की क्षमता रखता है। इसमें सन्देह नहीं कि शरत् ने बंगाली दृष्टि से जीवन की विषमता को कला के माध्यम में प्रतिष्ठित करके परिवर्तित परिस्थितियों के अनुसार आज के विश्वव्यापी [illegible] जीवन के विशिष्ट पहलुओं का निरूपण कराते हैं।

डॉस्टोवस्की ने अपने जीवन में जो कुछ देखा-सुना अथवा जो कुछ उस पर बीती उससे हृदय में जो टीस और वेदना की लहरें लहराईं, वह अनुपम शक्ति से अपने उपन्यासों में उभारकर उसने एक नए युग का निर्माण किया। उसके द्वारा गढ़े गए सशक्त चरित्र-चित्रण सजीव एवं छोटे छोटे दृश्यों में जीवनव्यापी यथार्थ का अंकन हुआ है। उसके उपन्यासों में आत्मा की वेदना और कष्टों से धुल उठने वाली अग्नि धधक रही है जो मानव की कुण्ठाओं और अन्तर्भावों पर अपनी चिनगारियाँ छिटकाती है। उसके जीवन की कटु अनुभूतियाँ, आन्तरिक गहरी प्रेरणाओं का ध्वंस, आत्म-व्यामोह—अतृप्त वासनाएँ, आधारहीन असंबद्ध स्मृतियों के मनोविकार जो उसके मस्तिष्क पर भार बन कर छा गए थे—वे उसकी प्रखर अन्तःशक्ति की राह से उपन्यासों में सजीव होकर व्यक्त हो गए। उसके सदृश मानव-अन्तर्जगत् के सूक्ष्म रहस्यों का उद्घाटन करनेवाले कलाकार बहुत कम हैं।

कहने की आवश्यकता नहीं कि शरच्चन्द्र में भी डॉस्टोवस्की की भांति मनोवैज्ञानिक निपुणता के साथ साथ चारित्र्य की अलौकिकता एवं मानव-संघर्ष के द्वन्द्व-द्वन्द्व व वैयक्तिक तथ्य-दर्शन का भव्य प्रयास है। उन्होंने व्यापक दृष्टिकोण को लेकर काल विशेष के पात्र, भीतरी परिस्थितियों और तत्कालीन एवं सुन्दर भविष्य के सामाजिक-आचार और मानवोचित सद् असद् विचारों का विश्लेषण किया है। 'चरित्रहीन' में किरणमयी का चित्रण नारी की असद् वृत्तियों पर एक कटु तीव्र व्यंग है। उच्छृंखल वासनामयी लक्ष्यहीन और निर्बल चरित्र वाली स्त्रियों को शायद ही इतनी गहराई से किसी ने आंका हो।

जिस प्रकार डॉस्टोवस्की रूस का युग निर्देशक कलाकार है उसी प्रकार शरच्चन्द्र भी भारतीय-साहित्य की निर्बाध परम्परा के सजग प्रहरी हैं। दोनों ने ही जीवन-स्वरों के उतार चढ़ाव का अनुभव किया है और वे स्वर उनकी आत्मा में प्रविष्ट होकर युगोच्छ्वास की मूर्त-अमूर्त जिज्ञासाओं और सूक्ष्म संवेदनाओं के रूप में उनके महान् कृतित्व में मुखर हो उठे हैं।

चीन का महाकवि लिपो

लिपो

जन्म—ईसवी सन्–७०१

मृत्यु—ईसवी सन–७६२

जन्मस्थान—प्हासी (Pa-hsi) चीन

चीन का अतीत बहुत ही गौरवपूर्ण रहा है। कला और साहित्य सभी क्षेत्रों में प्राचीन काल के चीन ने प्रशंसनीय प्रगति की थी। यद्यपि चीनी-साहित्य संस्कृत-साहित्य की भांति तो पुराना नहीं है, तथापि विश्व के वर्तमान जीवित साहित्यों में प्राचीनता की दृष्टि से इसका स्थान सर्वोपरि है। ईसा के ६०० वर्ष पूर्व से ही इसकी धारा अटूट और अक्षुण्ण चली आ रही है।

महाकवि लिपो चीन के सर्वश्रेष्ठ कवि है। इनके प्रादुर्भाव को तो चीनी काव्यक्षेत्र में एक चमत्कार ही समझना चाहिए। १२०० वर्ष पश्चात् भी इस महाकवि की महत्ता असंदिग्ध और बेजोड़ है।

तांगवंश के शासन काल मे, जो चीनी साहित्य एव सभ्यता का स्वर्णयुग माना जाता है, लिपो का प्रादुर्भाव हुआ था। निःसन्देह यह युग कला एवं साहित्य की दृष्टि से बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। इस समय तक चीन मे बौद्ध धर्म सर्वत्र फैल चुका था। चीन निवासियों की संस्कृति में बौद्ध आदर्श एवं भावनाएं समाविष्ट हो चुकी थीं, अतएव तांगवंश के समय का साहित्य बौद्ध-आदर्शों के प्रभाव से ओत-प्रोत है। प्रख्यात हान-लिन एकेडमी, जिसमें केवल विद्वान् लोग ही प्रविष्ट हो सकते थे, साहित्यिक प्रगति का मुख्य साधन थी और उसका प्रभाव साहित्य तक ही सीमित नहीं था, वरन राज्य—व्यवस्था और अनुशासन मे भी वह सहयोग देती थी।

तांग-शासन काल में काव्य-कला का अत्यधिक विकास हुआ। इस युग का साहित्य और काव्य-कला इतनी उत्कृष्ट थी कि उसका प्रभाव परवर्ती युगों के साहित्य पर भी स्थायी सिद्ध हुआ। तत्कालीन रचनाओं में कितनी सजीवता, कितना भावावेश, कितना रस था—यह इस समय के साहित्य को पढ़ने से ज्ञात होता है। इस युग में लगभग दो हज़ार कवि हुए, जिनकी रचनाओं में काव्यात्मक कला का समावेश प्रचुरता से हुआ। किन्तु इस युग के सबसे प्रमुख कवि लिपो हैं जिन्होंने अपनी असाधारण बुद्धि एवं विलक्षण प्रतिभा के प्रकाश से समस्त चीनी साहित्य को आलोकित कर दिया। अभी तक चीनी साहित्य के इतिहास में कोई भी ऐसा कवि नहीं हुआ, जो प्रसिद्धि में लिपो की समानता कर सके।

उच्च-वर्गीय होने पर भी लिपो का जन्म एक साधारण परिवार में हुआ था। स्वयं कवि ने तो अपना विस्तृत परिचय कहीं नहीं दिया, किन्तु इनके द्वारा रचित ग्रन्थों में इनका जीवन-वृत्त या विवरण यत्र-तत्र बिखरा हुआ मिलता है। इनकी जन्मतिथि अभी तक अनिश्चित एवं संदिग्ध है। कुछ विद्वानों का मत है कि उनका जन्म सन् ६९९ में हुआ था और कुछ उनकी जन्म तिथि ७०१ मानते हैं। इनकी मृत्यु तिथि ईसवी सन ७६२ मानी जाती है।

बाल्यावस्था में ही लिपो में महाकवि के लक्षण परिलक्षित हो गए थे। कहते हैं कि १० वर्ष की आयु में ही उन्होंने अपनी पहली कविता लिखी थी, जिससे इनकी पर्याप्त प्रसिद्धि हुई। किन्तु न जाने क्यों सांसारिक व्यवहारों से इन्हें अरुचि हो गई और १८ वर्ष की आयु में ही पर्वतीय प्रदेश में स्थित एक स्थान में रहकर ये एकान्त साधना में रत हुए। प्रकृति के उन्मुक्त प्रांगण में विभिन्न पशु पक्षियों के साथ खेलने में इन्हें अत्यन्त सुख होता था और प्राकृतिक-सौंदर्य इनके जीवन में नवीन स्फूर्ति एवं प्रेरणा का सञ्चार करता था। स्थानीय गवर्नर ने इनकी प्रशंसा सुनकर इन्हें सरकारी नौकरी के लिए आमन्त्रित किया, किन्तु प्रकृति उपासक लिपो ने इसे तुच्छ समझ कर ठुकरा दिया।

कहना न होगा कि ज़िन्दादिली और मस्ती उनके समस्त जीवन में ओत प्रोत थी। जितने भी प्रतिबन्ध, नियम, कानून, शृंखलाएं थीं—उन्हें तोड़ कर कवि ने अपने प्राणवान् व्यक्तित्व की तेजस्विता को अपने कृतित्व में ढाल और हृदय के विह्वल आनन्द-कणों से जीवन की शुष्कता को सिक्त किया।

"बिना कमीज़ पहने एक हरे-भरे जंगल में बैठा हुआ मैं अत्यन्त धीरे धीरे
श्वेत परों का पंखा झल रहा हूं।
मैंने अपनी टोपी को उतार कर एक उभरे हुए पत्थर पर लटका दिया है।
वायु अनानास के वृक्ष को छू कर आती हुई मेरे नग्न मस्तक को चर्चित कर
रही है।"

वातावरण जब अवरुद्ध होता है और उसमे कुछ आकर्षण नही दीखता अथवा कवि की उन्मुक्त आत्मा जब घुटती हुई सी जान पड़ती है—तो वह मस्ती के तराने गाता है। मूक प्रणय के रहस्य साकार होकर उसके गीतो में फूट पड़ते हैं।

"मेरा मस्तक मेरे बालों से अनावृत्त था।
द्वार के समीप खेलती हुई मैं पुष्प तोड़ रही थी —
जबकि मेरे प्रिय! तुम बांस के घोड़े पर 'टाप-टाप' की ध्वनि करते हुए
थिरकते आये थे और मुझ पर कच्चे बेर फेंक रहे थे।
चांग-कान की एक गली में हम दोनों साथ साथ रहते थे, दोनों जवान और
खुशदिल।

चौदह वर्ष की आयु में मै तुम्हारी पत्नी बन गई।
तब मै इतनी लजीली थी कि मुस्कराने तक का दुस्साहस न कर सकती थी
और तुम्हारी हज़ारों आवाजों पर भी मुड़ कर न देखती थी।
किन्तु पन्द्रह वर्ष की आयु में मैंने भ्रू-भंगिमा सीधी की और हंसी,
यह सोचकर कि कोई भी हमारे विशुद्ध प्रेम पर कीचड़ नहीं उछाल सकता
और अपने खम्भे से चिपकी मै तुम्हारी बाट जोहती रहूंगी
तथा चिर-प्रतीक्षित शिखर पर भी मेरी हिम्मत कभी पस्त न होगी।
तब जबकि मै सोलह वर्ष की हुई, तुम एक लम्बी यात्रा पर चल दिये।
तुम्हारे चरणों के चिन्ह हमारे दरवाजे पर, जहां मैंने तुम्हें जाते देखा
था अंकित थे, उनमें से प्रत्येक हरी काई में समाया हुआ और वे उसमें
इतनी गहराई से गड़ गये थे कि उन्हें मिटाया नहीं जा सकता था।
प्रारंभिक पतझड़ की हवा के झोंकों ने गिरे हुए पत्तों को बिछा दिया।
और अब, आठवें महीने में, गुनगुन करती तितलियां दो-दो मिल कर
हमारे पश्चिमी उद्यान की घास पर मंडराती है।
इन सभी कारणों से मेरा दिल टूट रहा है और मुझे भय है कि
मेरे गुलाबी कपोल, ऐसा न हो, मुरझा जायें।
ओह! जब तुम अन्ततः तीन 'पा' जिलों को पार करके वापिस आओ
तो मुझे यहां घर पर खबर कर देना।

म आऊगी और तुम से मिलूगी, चाग-फॅग शा का जितना भी
माग या फासला होगा, उसका कुछ भी परवाह न करूगी।"

उन्मुक्त जीवन की ओर

बारह वष की आयु में कवि के जीवन में आकस्मिक परिवर्तन हुआ। शराब और वाद्य की ओर उनका विशेष झुकाव हो गया और अनेक दुष्प्रवृत्तिया उनके जीवन में आ गई। उसी समय लिपो का परिचय महाकवि टयू-फ्यू से हुआ जिनकी गणना उस समय उच्च कोटि के कवियों में थी। कवि टयू-फ्यू लिपो का गुरुवत् सम्मान करते थे और इन दोनों महाकवियों में सहोदर भ्राताओं का सा सच्चा स्नेह और अनुराग था।

सन् ७४२ तक कवि की ख्याति दूर दूर तक फल चुकी थी। ताग वश के तत्कालीन शासक ह्यान साग अत्यन्त रसिक काव्य प्रेमी विद्वान, सगीतज्ञ सौन्दय एव कला के उपासक थे। उनके शासन-काल में चीनी साहित्य प्रौढता को पहुच गया था। सम्राट ने लिपो की प्रसिद्धि सुनकर उन्हे दरबार में आमन्त्रित किया और बहुत ही स्नेह एव सम्मान से अपने यहा रखा तथा उन्हें हान लिन एकेडेमी का सदस्य भी नियुक्त किया, किन्तु लिपो की स्वतन्त्र और निर्भीक प्रवृत्ति ने कोई भी बधन स्वीकार नहीं किया। सोने के पिजडे में बद मानो उनकी स्वच्छन्द आत्मा तडप रही थी। दरबार के कडे अनुशासन में भी कवि ने शराब का मादक मोह और उच्छ खल जीवन का परित्याग नहीं किया। लिपो के मित्र और सहयोगी कवि टयू फ्यू ने अपनी एक कविता में लिपो के जीवन का मार्मिक चित्रण करते हुए लिखा है कि यदि लिपो को एक शराब का प्याला पीने के लिए दे दिया जाय तो वह सकडो कविताए लिख डालेगा। मदिरा ही उसके मन और प्राण में समाई हुई है और वह मदिरा में ही सोता और विश्राम करता ह। वह सम्राट के अनुशासन को भी ठुकरा देता ह और स्पष्ट कहता ह कि म शराब का देवता हू।

एक स्थल पर लिपो ने लिखा ह—

"देखो पीले दरिया का पानी आकाश से उतर कर समुद्र में
समाहित हो रहा ह, पुन कभी न लौटने के लिए।
उच्च-कक्ष में लगे चमकीले दपण में—देखो, किस प्रकार सुन्दर अलकें,
जो प्रात रेशमी सिल्क की भांति काली थीं, रात्रि में बफ की
श्वेतिमा में परिणत हो गई ह।
ओरे, आत्म-सचेतन व्यक्ति को जो चाहें करने दो,
और उसके स्वर्णिम मद्य-पात्र को चद्रमा की ओर कभी रिक्त न छोडो।
प्रभु ने जो गुण दिये ह—उनका सदुपयोग करना चाहिये।
शराब से परिचय प्राप्त करो।

अपने प्यालों को कभी विश्राम न करने दो।
मैं तुम्हारे लिए जो गीत गाऊं—उसे ध्यान से सुनो।
वाद्य और संगीत कहां है, स्वादिष्ट भोजन और खज़ाना,
मुझे तो निरन्तर शराब की मादकता में विभोर होना ही रुचिकर है,
मुझे कभी सजग न होने दो।
मेरे आतिथेय! तुम क्यों कहते हो कि धन चुक गया,
जाओ, मेरे लिए शराब ले आओ, हम साथ साथ पीयेंगे।
मेरा पुष्पों से सुसज्जित घोड़ा
और फर के बने वस्त्र, जो एक सहस्र की कीमत के होंगे, ले आओ
और उन्हें अच्छी शराब के बदले में लड़के को दे दो।
बस, दस हज़ार पीढ़ियों तक के दुःख-क्लेशों को हम उसमें डुबा देंगे।"

काव्य प्रेमी सम्राट् लिपो की सभी त्रुटियो को उदारतापूर्वक क्षमा करत रहे। उन्हें उसकी कविताओं से अनुराग था। कवि की विलक्षण प्रतिभा और रचना चातुर्य्य ने सम्राट् को विमुग्ध कर लिया था। एक बार एक ऐसे ही अवसर पर जब कि सम्राट अपनी प्रेयसी के साथ भोजन कर रहे थे तो अपने चतुर्दिक् दृश्यों की मनमोहकता से आकृष्ट होकर कवि को बुलाया और कविता करने का आदेश दिया। लिपो ने सुन्दर कविताओं की तो रचना की, किन्तु अपने तीक्ष्ण व्यंगों से सम्राट् की प्रेयसी को कुपित कर दिया। वह उनसे अत्यन्त शत्रुता करने लगी और जानी दुश्मन हो गई। लिपो को अपनी आत्म-रक्षा के लिये इधर उधर छिपना पडा। इस अर्से मे कवि को अनेक विषम परिस्थितियो एव कठिनाइयो का सामना करना पड़ा, किन्तु उनकी प्रसिद्धि चारों तरफ़ हो चुकी थी। लोग दिल खोल कर उनका स्वागत करते थे। जहा कही भी वे जाते जनता उनके अभिनन्दन के लिये उत्सुक रहती और अधिकाधिक सम्मान एव प्रेम प्रदर्शित करती। सरकारी अफसरो और प्रांतीय गवर्नरों में उनके स्वागत के लिये परस्पर होड़ रहती थी। एक बार विद्रोही प्रिंसयग के साथ ये सन्देह में गिरफ्तार भी कर लिए गये थे और उन्हे मृत्यु दण्ड भी दिया गया था किन्तु न्यायाधीशो की कृपा से इन्हें छोड़ दिया गया। इस प्रकार लिपो का समस्त जीवन सघर्ष और विपम परिस्थितियों में गुज़रा था।

निम्न पंक्तियो मे कवि की निर्वासित, घायल आत्मा और दर्दीली आहें तड़प उठी हैं—

"मेरी आत्मा चांगकान में जाने के लिये सदा छटपटाती रहती है।
जलकूप की सुनहली परिधि पर वर्षाती कीड़े गुनगुना रहे हैं।

मेरा छोटी चराई पर कुहर का झीना आवरण दर्पण की भांति चमक रहा है।
ऊंचे पर स्थित लम्प की बत्ती हिल रही है और मेरी व्यथा भी बढ़ती जा रही है।

मैं सिर उठा कर अनेक निश्वासों के साथ चन्द्रमा की ओर, जो मेघों के
मध्य में एक पुष्प की भांति एकाकी लगता है, आंखें पसारे हूं।
ऊपर आकाश में गरिमामय, मालिना दृष्टिगत होती है,
और नीचे किंचित् हरीतिमा की झलमलाहट के साथ कलकल जल बह रहा है।

आकाश ऊंचा है और पर्वत विस्तृत, दोनों के मध्य में मेरा आहें उठ रही हैं।
पर्वत शिखर पर चढ़ा हुआ क्या मैं नीचे उतरने का स्वप्न देख सकता हूं?
आह! चिर-आकांक्षाएं मेरे हृदय को विदीर्ण कर रही हैं।"

साहित्य में लिपो का स्थान

चीनी-साहित्य में महाकवि लिपो का महत्वपूर्ण स्थान है। इनकी समस्त रचनायें यूरोप की प्रमुख भाषाओं में अनूदित हो चुकी हैं। चीन में इनकी मुख्य मुख्य कविताओं को संग्रहीत करके बहुत सुन्दर ढंग से सम्पादित और प्रकाशित किया गया है। सन् १७५६ में इनके सभी ग्रंथों का गम्भीर अध्ययन किया गया और इनकी सविस्तार व्याख्या और समालोचना हुई। कवि के मृत्यु के एक वर्ष पश्चात् ही इनकी कविताओं का एक बहुत बड़ा संग्रह निकाला गया, जिसमें इनकी एक हजार उत्कृष्ट कवितायें और स्फुट गद्य भी था। अंग्रेजी में जोसेफ एडकिन्स ने सर्वप्रथम इनकी रचनाओं का अनुवाद किया, जो सन् १८८८ में 'जरनल ऑफ पेकिंग ओरियन्टल सोसाइटी' में प्रकाशित हुआ किन्तु अभी हाल ही में आर्थर वेली द्वारा किया हुआ अनुवाद अधिक सुन्दर और साहित्यिक है।

कई शताब्दियां बीत जाने पर भी लिपो की ख्याति ज्यों की त्यों अक्षुण्ण बनी हुई है। चीन-वासियों को आज भी यह कवि उतना ही प्रिय है जितना कि तांग काल और उसके परवर्ती समय में यह जनता को था। चित्रकार अब भी उसकी मस्ताना भाव भंगियों का चित्रण करने में अपना गौरव समझते हैं। उसके विषय में अनेक किम्वदन्तियां प्रसिद्ध हैं और वे विश्वास बनकर लोगों के दिलों में समा गई हैं। यह ही चीनी साहित्य में एक ऐसा कवि है जिसकी रचनाओं में रचना-कौशल, प्रबन्ध पटुता और सहृदयता आदि सभी गुणों का समाहार मिलता है। जगत के अकृत्रिम स्वरूपों में अपनी लोकोत्तर कल्पना को समाविष्ट करके जीवन के विराट वैभव में झांक कर देखने की उसमें विलक्षण क्षमता थी।

कलाकार बीटोफ़ेन

बीथोफेन

जन्म—ईसवी सन् १७७०

मृत्यु—ईसवी सन् १८२७

जन्मस्थान—बौन (Bonn), जर्मनी

"जो कोई भी मुसीबत का मारा भाग्यहीन व्यक्ति हो, उसे यह सोचकर धैर्य धारण करना चाहिए कि मैं भी उसका सा ही अभागा और विपत्ति में सहायता करने वाला उसका प्रिय बन्धु और सखा हूं।"—ये शब्द विश्व के महान् कलाकार बीटोफेन ने अपनी अन्तिम वसीयत में लिखे थे।

वस्तुतः बीटोफेन की मृत्यु उसके जीवन काल की दुःखद घटनाओं का एक दर्दनाक चित्र प्रस्तुत करती है।

मृत्यु के समय बीटोफेन सत्तावन वर्ष का था और एकाकी जीवन व्यतीत कर रहा था। रोग ने उसके अंग-प्रत्यंग को जर्जरित कर दिया था। रूखे और घने वाल बिल्कुल सफेद हो गये थे, और उसके माथे पर गहरी झुरिया थी। ऊपर का मोटा ओंठ नीचे के ओठ को ढके रहता था, बेढंगी ठोढी और उभरी हुई गाल की हड्डियों ने मुखाकृति को विकृत कर दिया था। दुर्बल और क्षीण होने के कारण उसका मुख और भी भयानक और कुरूप लगता था। हा, उसकी आंखों में अभी खुशहाल जीवन की चमक शेष थी, जो हृदय को स्पर्श करती थी।

करने को छोड़ दिया और स्वयं उसकी समाधि का प्रबन्ध करने के लिये चले गये। पांच बजे अचानक घंटाघर की घड़ी रुक गई। साढे पांच बजे बिजली की गड़-गड़ाहट हुई और जोरो की आंधी से आकाश भर गया। मरणासन्न बीटोफेन ने अपने जलते हुए नेत्र पुनः खोले और आकाश की ओर देखा। ६ बजे कौंधती हुई बिजली की चमचमाहट मे एन्सलम हिल्तन ब्रीनर ने देखा कि बीटोफेन ऊपर हाथ उठाकर आकाश की ओर इंगित कर रहा है। शीघ्र ही उसका हाथ नीचे गिर पड़ा। श्वास रुक गया और वह उस परम धाम को सिधार गया, जहां चिर-विश्रान्ति का साम्राज्य है।

मरते समय बीटोफेन के पास न स्त्री थी, न बालक था, न सखा, न कोई सम्बन्धी, न मित्र, न कोई परिचित स्नेही। वह उपेक्षित, एकाकी, निर्धन, बधिर और जीवन की एक बहुत बड़ी अशान्ति को लेकर संसार से विदा हुआ। उसकी मृत्यु के पश्चात् एक अपरिचित व्यक्ति ने उसकी खुली हुई आंखे बन्द की।

बीटोफेन विश्व का महान् संगीतकार था। हृदय के एकान्त, निर्जन कोण मे; जीवन के शून्य, मौन तारो में; घटाटोप असीम दुःखों की घोर विभावरी से व्याप्त दुर्भाग्य के विडम्बनापूर्ण नैराश्य में उसे नित्य ही अन्तर्वीणा की झंकार सुनाई पड़ती थी और उसके मधुर रव से दिशाएं झंकृत हो उठी थी। वह दुःख मे भी सुख की कल्पना करता था, निराशा के अन्धकार में भी उसे आशा की ज्योति दृष्टिगोचर होती थी, उसके भाव, उसके विचार अत्यन्त उच्च भावना-लोक में विचरण करते थे। वह साधारण जीवन स्तर से बहुत ऊपर उठ गया था। संगीत के इतिहास में बीटोफेन का नाम चिर-स्मरणीय रहेगा। प्रखर बुद्धि एवं विलक्षण प्रतिभा से उसने ससार को चकित कर दिया था।

बीटोफेन ने अपने हृदयंगत भावों को, अपनी अन्तरात्मा की अन्तर्चेतना को बड़ी कुशलता से संगीत में व्यक्त किया। उसने अपने भाव, विचार, अनुभव स्वरो मे साधे और एक अनुभवी पारदर्शी की भांति एक नवीन संगीत स्रोत का अजस्र प्रवाह प्रवाहित किया। उसके गाये हुए गीत उसके मनोगत भावों की सच्ची कहानी है। उनमे आध्यात्मिक तत्त्व की व्यथा सन्निहित हैं। व्यर्थ के मिथ्याडम्बर में उसके भाव नही उलझे, वे तो निरभ्र हृदयाकाश से बरस पड़े। हृदय की भावना मन्दाकिनी की भांति कलकल करती हुई आई और संगीत के सरस स्रोत में वह निकली।

जो न समझ सका जो आत्मा की सच्चाई को अन्तर्नाद की करुण पुकार हमें इस गायक के गानों में मिलती वह अन्यत्र कम ही मिलेगी। उसे बाह्य शृंगार, अलंकार तथा सजावट की परवाह न थी। उसका गाना या प्रवृत्ति अन्तर्निहित की ओर थी। जो कुछ उसने सोचा जो कुछ उसने समझा वह गीतों में प्रकट कर दिया। उसने भाषा का मार्ग प्रशस्त किया और एक नवीन संगीतात्मक शैली का आविष्कार किया। अपने जीवन के अन्त तक वह भाषा को ठीक करने में लगा रहा और उसे पर्याप्त सफलता मिली। उसने नई राग रागनियों की भी रचना की और संगीत क्षेत्र में विशिष्ट अनुसंधानपूर्ण प्रगति की। वह एक संगीतकार ही नहीं, बल्कि एक महान् दार्शनिक आत्मजिज्ञासु और जीवन-द्रष्टा था। दार्शनिक कान्ट (Kant) का वह भक्त था शेक्सपियर की आत्मा के दर्शन उसने किये थे, गेटे को वह स्नेह करता था और प्रसिद्ध कवि शिलर (Schuller) उसकी श्रद्धा एवं सम्मान का पात्र था। संगीत रचना में वह बेच (Bach) और मोजार्ट (Mozart) के आदर्शों का अनुयायी था।

बीथोवन की जीवन-गाथा और उसकी संगीतमयी यात्रा इस बात की प्रतीक है कि न्याय अमर है और उसकी विजय होती है। मनुष्य और प्रारब्ध का संघर्ष अवश्यम्भावी है पर इस संघर्ष में, इस प्रतिक्रिया में सदैव मनुष्य ही विजयी रहा है। जीवन के अन्तिम पहर में जब निर्दयता की चोट ने बीथोवन को मर्माहत कर दिया था उसने अपनी 'नाइन्थ सिम्फोनी' (Ninth Symphony) में आनन्द का गान प्रस्तुत किया था।

बीथोवन को जीवन भर पत्नी की चाह रही। उसे कभी किसी का प्रेम न मिल सका। बाल्यावस्था में ही जब वह बहुत छोटा था उसकी स्नेहमयी माता का देहान्त हो गया। पिता को तो घर का जरा भी ध्यान न रहता था। भाई उसे घृणा करते थे उन्होंने कभी उसे समझने का यत्न नहीं किया। देखने में वह सुन्दर न था। उसका शरीर छोटा और स्थूल था। जो उसे नहीं जानते थे वे उसे देख कर हँसते थे। बीमारी उसे छोड़ती न थी। जिस रोग ने उसे सुनने से वंचित किया, वह २६ वर्ष की आयु में भी उसे हो चुका था। अन्य शारीरिक व्याधियां भी उसे होती रहती थीं। स्वभाव उसका अत्यन्त चिड़चिड़ा और रूखा था। अपने रूखे और अशिष्ट व्यवहार के कारण वह लोगों को अपनी ओर आकर्षित करने में सदैव ही असफल रहा। उसे अपनी रचनाशक्ति एवं अन्तर्चेतना का भान था। इसीलिये उसे अपनी

त्रुटियां अत्यन्त अखरती थी। आलोचकों ने उसे कभी भी दम न लेने दिया। उन्होंने सदैव उसकी रचनाओं का तिरस्कार किया और उसके संगीत को नीरस और निरर्थक बताया।

थेरेसा ब्रून्जविक नाम की महिला के प्रति वीटोफेन अत्यन्त आसक्त था। उसका सम्बन्ध भी उससे तय हो चुका था, पर दुर्भाग्यवश उसका विवाह न हो सका और न ही वह कभी अपनी प्रेयसी के दर्शन ही कर सका। परम साध्वी थेरेसा की आत्मा भी सदैव अपने प्रेमी के लिये छटपटाती रही।

१९ वी शताब्दी के युगाकाश मे वीटोफेन का उदय एक नवोदित आदित्य के सदृश मंगलमय सिद्ध हुआ। आधुनिक युग मे प्यानो और वायलिन के अत्यधिक प्रचलन का श्रेय वीटोफेन को ही है। वह यूरोप के लिये ही नहीं, अपितु विश्व के लिये एक मधुर संदेश, एक मधुर प्रकाश बन कर आया। 'नाइन्थ सिम्फोनी' (Ninth Symphony) में हमे इस महान् कलाकार की प्रचुर अनुभूतियों की झांकी मिलती है, जिसे देखकर उसकी विलक्षण प्रतिभा एवं सहज अन्तर्चेतना का अनुमान किया जा सकता है।

इक्कीस वर्ष पूर्व, २६ मार्च १९२७ को, सर्वप्रथम यूरोप के महान् संगीत-कला-कोविद वीटोफेन की मृत्यु-तिथि दुनिया के कोने-कोने मे मनाई गई थी। इस उत्सव में वड़े-वड़े राजनीतिज्ञो, वैज्ञानिकों, कलाकारों, संगीतज्ञों, राजकर्मचारियो, धार्मिक-नेताओं, सैनिकों, वालक, वृद्ध, स्त्री-पुरुषों सभी ने अत्यन्त उत्साह से भाग लिया था। जव वीटोफेन के ये मृत्यु पर्व आते हैं—ऐसा प्रतीत होता है कि मानो देश और जाति का विभेद मिट जाता है, राजनैतिक विस्फोट एवं धार्मिक वन्धन ढीले पड जाते हैं तथा विश्व के समस्त संगीतकार वीटोफेन मे साकार हो उठते है। उसने अपनी महान् कलाकृति 'नाइन्थ सिम्फोनी' (Ninth Symphony) में मनुष्य-मात्र को एक होने का उपदेश दिया है। वह समस्त मानवता का सच्चा मित्र था, किंतु

मानवता ने उसकी मृत्यु के एक शताब्दी बाद उसे समझा, उसे पहचाना और अब तो वह विश्व विश्रुत ख्याति प्राप्त कर चुका है तथा संगीत-क्षेत्र में उसकी महत्ता बेजोड़ है।

वर्ड्स्वर्थ और प्रकृति

विलियम वर्ड् सवर्थ
जन्म—७ अप्रैल सन् १७७०
मृत्यु—२३ अप्रैल सन् १८५०
जन्मस्थान—ग्राम-कॉकरमाउथ,
इंगलैण्ड
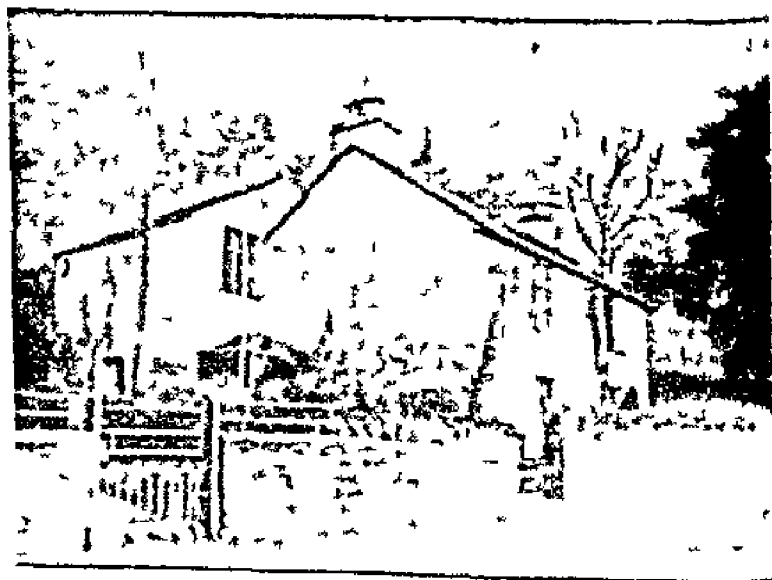
प्रकृति की गोद में वर्ड् सवर्थ की कुटिया

अनादि काल से प्रकृति की मनोरम क्रोड़ में मानव की सहज अन्तर्वृत्तियां आश्रय लेती आई हैं। मानव के चारों ओर प्रकृति फैली हुई है। प्रकृति का रूपात्मक सौन्दर्य मनुष्य के मानस पर प्रतिबिम्बित हो रहा है, और प्रकृति की गति मानस-चेतना को ग्रहण कर रही है।

प्रकृति-उपासक महाकवि विलियम वर्ड्सवर्थ की कृतियों में प्रकृति मानो सजीव हो उठी है। उनकी कविता में न तो कल्पना की क्रीड़ा है, न कला की विचित्रता। वह है प्रकृति की ही एक मनोहर झांकी और उसी के स्वरूप का मधुर ध्यान। प्रारंभ से ही कवि का बाल-हृदय प्रकृति के विभिन्न रूपों के प्रति प्रश्नशील है और वह प्रकृति की गति और विभिन्नता में किसी व्यापक रहस्यात्मक शक्ति का संकेत पाना चाहता है। वह समझना चाहता है और प्रकृति के समस्त प्रसाधनों एवं अलंकारों पर मुग्ध हो अपने में ही प्रश्न करता है—ये वस्तुयें कैसे उत्पन्न हो गई? ये गुलाब, चमेली, बेला इत्यादि पुष्प क्यों खिलते हैं? अगणित पुष्पों एवं श्यामल द्रुम-लताओं से मंडित सघन वन, अनन्त लहरियों से विलोडित गहन गम्भीर समुद्र, मन्द-मन्द गरजते [illegible] मेघ-रंजित शृंगों से [illegible] दिखाई देता और फिर उस पर्वत के नीचे स्वच्छ घाटियों पर फैले हुए वन में आकाश और हरीतिमा के बिम्ब, लहराते हुए खेतों और जंगलों, हरी घास में मस्त उछलने वालों, विशाल चट्टानों पर [illegible] को [illegible] हुए झरनों, मंजरियों से लदी हुई अमराइयों, झाड़ियों, [illegible] नदियों, [illegible] और [illegible] के [illegible] में उठे हुए [illegible] के मनोहर

दृश्यों की वह मनामुग्ध दृष्टि स रचना है। उस अन्तर्निहित धरती तथा भोला बिन बनावट ग्राम बनिताओं, बाल्यावस्था के साथी पुण्य रंग बिरंगे मधु-मंदिर सुरभि वाहा पुष्प नीलम-मरण हरित कटीले कटावदार पौधों रसमय वन्य या फर्न फूल विदग्ध अम्बुधि की आतुर चाह में दौड़ी जाने वाली सरिताओं एवं समस्त प्राकृतिक उपादानों में असाधारणत्व की प्रतीति तथा चिर-परिचित साहचर्य सम्भूत रस की अनुभूति होती है —

"स्मरणीय सौंदर्य से दीप्त प्रातः का पुष्प सदैव की भांति देदीप्यमान, जैसा कि मैंने देखा था।

सामने ही कुछ दूरी पर हंसते हुए समुद्र का व्यापक प्रसार,

पास ही वृहदाकार पर्वत, जो धूमिल रंग और दिव्य आभा की तरलता से सिक्त मेघों सा चमक रहा था।

चरागाहों और नीची सतह वाली जमीन पर उषःकालीन सहज मधुरिमा का आच्छादन,

ओस, कुहरा और पक्षियों का संगीतमय स्वर तथा खेत बोने के लिये श्रमिकों का प्रस्थान आदि सब कुछ शानदार था।"

(Magnificent
The morning rose in memorable pomp
Glorious as ever I had beheld—in front
The sea lay laughing at a distance near
The solid mountain shone, bright as the clouds
Grain tinctured drenched in empyrean light
And in the meadows and the lower grounds
Was all the sweetness of the common dawn
Dew vapours and the melody of birds
And labourers going forth to till the fields")

ज्यों-ज्यों कवि का बुद्धि का विकास होता है, उसकी सहज भावना की सौन्दर्यानुभूति में प्रकृति सचेतन और सप्राण हो उठती है पुनः उसीके साथ मग्न होकर आनन्द से उल्लसित होती है। इस दिन इस आत्म चेतना के प्रसार में प्रकृति मन चेतन हो उठता है और उस क्षण प्रकृति उसे अपनी ही चेतना का एक रूप और गति प्रतीत होता है।

"पृथ्वी और समुद्र, समस्त दृश्य-जगत् और उसके समक्ष फैला हुआ अम्बुधि का निस्सीम जल-समूह एक विचित्र आनन्दानुभूति से ओतप्रोत हैं। इतस्ततः जल को स्पर्श करते हुए मेघ अव्यक्त प्रेम की सृष्टि करते हैं। आनन्द की अभिव्यक्ति में वाणी मूक है और शब्द मौन; उसकी आत्मा इस दृश्य के सौन्दर्य-रस का आस्वादन कर रही है। मन, शरीर, प्राण सभी तो उसमें विलय हो गए हैं, उसका पार्थिव शरीर ही मानो उसमें जा समाया है। उन दृश्यों में ही वह खोया-सा खड़ा है, उन्हीं में उसकी चेतना और प्राण केन्द्रित हैं। ईश्वर-प्रदत्त सुखों में विभोर वह अपने अन्तर्मानस को विचारों से नितांत शून्य पाता है, इनमें ही मानों वे खो गये हैं। धन्यवाद वह नहीं दे सकता। शोक प्रकट करने में भी वह असमर्थ है। अपनी मूक अन्तर्चेतना से एकरूप हो वह उस परम शक्ति की अभ्यर्थना में संलग्न है, जिसने उसका सृजन किया और जो उस दिव्य-प्रेम एवं ब्रह्मानन्द की अनुभूति कर रहा है, जो प्रशंसा और अनुनय से परे है।"

"(Ocean and earth, the solid frame of earth
And ocean's liquid mass in gladness lay
Beneath him.—Far and wide the clouds were touched
And in their silent faces could be read
Unutterable love. Sound needed none,
Nor any voice of joy; his spirit drank
The spectacle; sensation, soul and form
All melted into him; they swallowed up
His animal being; in them did he live,
And by them did he live; they were his life.
In such access of mind, in such high hour
Of visitation from the living God,
Thought was not, in enjoyment it expired,
No thanks he breathed, he professed no regret;
Rapt into still communion that transcends
The imperfect offices of prayer and praise
His mind was a thanksgiving to power
That made him; it was blessedness and love")

प्रकृति के इस सर्वचेतनवादी दृष्टिकोण मे कवि की अनुभूति प्रकृति से ऐसी समन्वित हो जाती है कि उसे प्रकृति के प्रति आश्चर्य-चकित और प्रश्नशील होने का अवसर ही नही मिलता। यही कारण है कि वह सर्वचेतनवादी सृष्टि के स्रष्टा और

सृजन के सूत्रधार के प्रति अपना आग्रह प्रकट नहीं करता। वह अपनी सीमाओं में अनात्मवादी भी रहता है। प्रकृति ही उसके जीवन का आधार, प्रेम की साधना है। उसके प्रत्येक मनन में, जिज्ञासा में, प्रार्थना में, ध्वनि में प्रकृति का अनुग्रह निहित है। वही उसकी प्राणाधिका सखा, जीवन सहचरी, संरक्षिका, पथ प्रदर्शिका, आनन्द दायिका, पवित्र भावों का वहन करने वाली जीवन-ज्योति है —

(Well pleased to recognize
in Nature and the language of the sense
The anchor of my purest thought,
The guide, the guardian of my heart
And soul of all my moral being.)

प्रकृति के विभिन्न स्वरूपों ने कवि की भावनाओं को विकसित किया है। अलंकारों में विभूषित हो वह बहुरंगिनी उसकी भावनाओं को हँसाती रुलाती है और कभी चेतन मानव के अगाध प्रेम एवं सम्मान की भावना पर मुग्ध हो उसपर अपना वरदान बिखेरती है। कभी वह सच्ची साधिका की भाँति ज्ञानोपदेश द्वारा उचित मार्ग निर्देश करती है और कभी रहस्यमयी चूनरी ओढ़ कर उसके लिए गूढ़ चिन्तन का विषय बन जाती है। यही नहीं वह कभी चंचला स्वयं मानवीय रूप धारण करके छायावादी अवगुण्ठन से पास उसे विमोहित करती है और कभी आकर्षक मनोहारी, अल्हड़ भाव में अतीत की मधुर स्मृतियों को गुदगुदा देती है। प्रेम की अभिव्यक्ति के रूप में कवि अपने भावों को प्रकृति में प्रतिबिम्बित देखता है। प्रेम की वेदना का रूप यदि प्रकृति में है तो प्रेम की तृप्ति भी उसी में दिखाई देती है। कभी-कभी प्रकृति की विराट लीला में वह अपने भावों को भर सामने से हट जाता है

"प्रभात
निश्चल नीरव जल मेरे मस्तिष्क पर उल्लास का भार बनकर
छा गया है, और आकाश, जो पहले कभी इतना सुन्दर न लगा
था, मेरे हृदय में धमकर मुझे स्वप्न विभोर सा बना रहा है।"

(The calm
And dead still water lay upon my mind
Even with a weight of pleasure, and the sky
Never before so beautiful, sank down
Into my heart, and held me like a dream.)

सच तो यह है कि प्राकृतिक सौन्दर्य एवं सौकुमार्य की उपासना मे अहर्निश निरत वर्ड्सवर्थ ने सुन्दर एवं सरस भावो की लडिया पिरो कर अपने काव्य को सजाया है। उसकी अन्तर्हित भावनाए मानो साकार हो उठी है।

"अप्रैल का सुन्दर, स्वच्छ प्रभात है। क्षुद्र नदी अपनी पूर्णता से गर्वित हो यौवन की मदमाती चाल से प्रवाहित हो रही है। नदी के बहते जल की प्रतिध्वनि वासन्तिक वायु में जा विलीन होती है। सभी सजीव वस्तुओं से आनन्द और आकांक्षा, आशाएं और इच्छाएं विभिन्न ध्वनियों की भांति फूटी पड़ रही है।"

("It was on April morning, fresh and clear,
The rivulet, delighting in its strength,
Ran with a youngman's speed; and yet the voice
Of waters which the river had supplied
Was softened down into a vernal tone
The spirit of enjoyment and desire
And hopes and wishes from all living things
Went circling, like a multitude of sounds".)

ग्रीष्म-जैसी मनहूस ऋतु का वर्णन करते हुए कोई भी कवि प्रकृति के उन नाना रूपो एव दृश्यों तक नही पहुंच पाया है, जिसका वर्णन वर्ड्सवर्थ की कविताओ मे अनायास ही मिलता है:

"उत्तरी मैदान स्वच्छ हवा में तैरता हुआ दूर तक नज़र आ रहा है। घुमड़ते बादलों की फिसलती छाया पृथ्वी की सतह को चितकबरा सा बना रही है।"

("The northern downs
In clearest air ascending, showed far off
A surface dappled over with shadows fleecy
From brooding clouds.")

यहां देखिए—गर्मी की प्रचण्डता को भी वह छन्दोबद्ध कर सकता है:

"प्रचण्ड ग्रीष्म जबकि वह अपनी आत्मा को कांटेदार गुलाब-पुष्प में केन्द्रित कर देता है।"

("Flaunting summer when he throws
His soul into the briar rose.")

प्रारम्भ में फ्रांस की राज्य क्रांति में वर्ड्सवर्थ ने मानवता, विश्व-बन्धुत्व और जीवन का अभिनव सदेश पाया था, किन्तु साथ ही क्रान्तिवादियों की हिंसक मनोवृत्ति और पाशव चेष्टाओं ने उन्हें पुन प्रकृति की ओर उन्मुख कर दिया। उनकी प्रारम्भिक कृतियों 'दि प्रिल्यूड' (The Prelude) और 'दि एक्सकरशन (The Excursion) में उनकी अन्तरंग भावनाओं की मनोहर झांकी मिलती है।

अन्तत उनकी कल्पनामय चेतना विकसित होते होते प्रकृति की अन्तरात्मा में इतनी पैठ गई कि उसके प्रत्येक स्वरूप का स्पष्ट चित्र उनके हृदय-पटल पर अंकित हो गया और प्राकृतिक-अनुभूति का अन्तर्बाह्य सूक्ष्म रेखाओं में उभर पड़ा।

उनकी प्रख्यात कविता बाल्यावस्था की स्मृति द्वारा अमरत्व का संकेत (Ode on Intimations of Immortality from Recollections of Early Childhood) में प्रकृति की व्यापक चेतना के साथ उनकी अपनी अन्तवृत्तियों का तादात्म्य होकर अद्भुत ज्योतिमय कणों में छिटक पड़ा है।

> "हमारा उद्भव एक प्रकार का निद्रा और चिर विस्मृति है।
> आत्मा, जिसका प्राकट्य हमारे साथ होता है और जो जीवन की नक्षत्र है
> कहीं अन्यत्र से आती और दूर हो जाकर छिपती है।
>
> हम पूर्ण विस्मृति और एकदम निरावरण होकर नहीं आते, वरन्
> ऐश्वर्य के घन खण्डों पर थिरकते हुए अपने चिर-आश्रय-स्थल प्रभु के
> यहां से आते हैं।
> बाल्यावस्था में स्वर्ग सामने बिछा रहता है, किन्तु ज्यों-ज्यों बालक बढ़ता
> जाता है, त्यों-त्यों कारागार की सघनता उसे आच्छन्न करती जाती है।
> वह प्रकाश से साक्षात्कार करता है और उल्लास में भरा हुआ सोचता है—
> यह प्रकाश कहां से बह कर आता है।
> युवावस्था की ओर बढ़ता हुआ वह अपनी उद्भव-दिशा से दूर भटकता
> जाता है, किन्तु प्रकृति का उपासक तब भी बना रहता है।
> अपने मार्ग में दिव्य सौन्दर्य से दीप्त वह ज्यों-ज्यों मनुष्य बनता जाता है
> साधारण जीवन की चकाचौंध में वह उसे तिरोहित होते देखता है।'

(Our birth is but a sl ep and a forgetting
The soul that rises with us ou life's Star

Hath had elsewhere its setting,
And cometh from afar;
Not in entire forgetfulness,
And not in utter nakedness,
But trailing clouds of glory do we come
From God, who is our home;
Heaven lies about us in our infancy!
Shades of the prison house begin to close
Upon the growing Boy,
But He beholds the light, and whence it flows
He sees it in his joy;
The youth, who daily farther from the East
Must travel, still is Nature's Priest,
And by the vision splendid
Is on his way attended;
At length the Man perceives it die away,
And fade into the light of common day.")

अनन्त और शाश्वत अन्त-प्रकृति मे रमकर वर्ड्सवर्थ की कल्पना का प्रसार इतना व्यापक हो गया है कि तुच्छ से तुच्छ उपकरणो मे भी उन्हे विराट् छाया छटपटाती नजर आती है। 'लूसी ग्रे' (Lucy Gray) की निम्न पंक्तियो मे कवि के कोमल हृदय की धड़कन सुन पड़ती है।

"सम-विषम पथों पर भटकती हुई वह बिना पीछे मुड़े एकाकी गीत गाती है, जो वायु के स्तरों में ध्वनित होता रहता है।"

("Over rough and smooth she trips along
And never looks behind;
And sings a solitary song
That whistles in the wind.")

कवि के लिए व्यक्त सत्य है—प्रकृति और मानव। इन्ही के आध्यात्मिक प्रणय का रूप उसे सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है। इन्ही से अन्तर्भूत रूप-व्यापार उसके हृदय पर मार्मिक प्रभाव डाल कर उसके भावों का प्रवर्त्तन करते है। इन्ही रूप-व्यापारो के भीतर उसे भगवदीय कला का साक्षात्कार होता है, इन्ही का सूत्र पकड़ कर उसकी भावना अव्यक्त सत्ता का आभास पाती है। प्रकृति के रोम-रोम में, कण-कण में एक दिव्य, अलौकिक शक्ति सन्निहित है। उसकी दृष्टि मे प्रकृति निर्जीव

नहीं, प्रत्युत् सजीव एवं सप्राण है। वह मनुष्य के दुःख-सुख में योग देती है। वह उसके साथ रोती है, हँसती है। वह उसकी महत्त्वाकांक्षाओं, दुर्बलताओं, इच्छाओं, वेदनाओं तथा सुखों में सदैव साथ रहती है। एक स्थल पर वह कहता है

"मेरा विश्वास है कि प्रत्येक पुष्प वायु के श्वास-प्रश्वास का अनुभव करता है।"

(And it is my faith that every flower enjoys
the air it breathes)

प्रकृति ही उनके जीवन की आशा एवं मधुर मुस्कान है —

(It is her privilege through all the years of
this our life to lead from joy to joy)

प्रकृति के विस्तृत प्रांगण में उसे निरंतर अव्यक्त सत्ता का आभास होता है

"सूक्ष्म गति और अव्यक्त सत्ता,
जो चिन्त्य वस्तुओं का प्रेरक है, समस्त भावनाओं का सार और
सभी वस्तुओं की सर्वाहिका-शक्ति।"

('A motion and a spirit that impels
All thinking things
All objects of all thoughts
And rolls through all things ')

कवि के कानों में निरंतर यह प्रश्न गूँजता रहता है—वह कौन शक्ति है, जो यह सब चुपचाप करती है? अन्त में इस जिज्ञासा का समाधान होता है—प्रश्न का उत्तर भी कवि को स्वयं ही मिल जाता है कि निस्सन्देह इस अनुपम सृष्टि की स्रष्टा कोई अव्यक्त शक्ति है जिसने मनुष्य मात्र की रक्षा के लिये केवल अपनी इच्छा-शक्ति द्वारा इसका सृजन किया है। तो क्या मानव जीवन में ज्योति का अन्तर्साक्ष्य करानेवाली प्रकृति ही है? कवि की वाणी मूक हो जाती है, भाव स्तब्ध हो जाते हैं। उस प्रकृति के गर्भ में सृष्टि के अन्तराल में अद्भुत अलौकिक दिव्य प्रकाश का आभास होता है जो उसके रोम रोम में परिव्याप्त होकर कविता द्वारा व्यक्त होता है।

रवीन्द्र, पन्त और कीट्स का
सौन्दर्यवाद

श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर

जॉन कीट्स

जन्म–३१ अक्टूबर, सन् १७९५

मृत्यु–२३ फरवरी सन् १८२१

जन्मस्थान–लन्दन (इंग्लैंड)
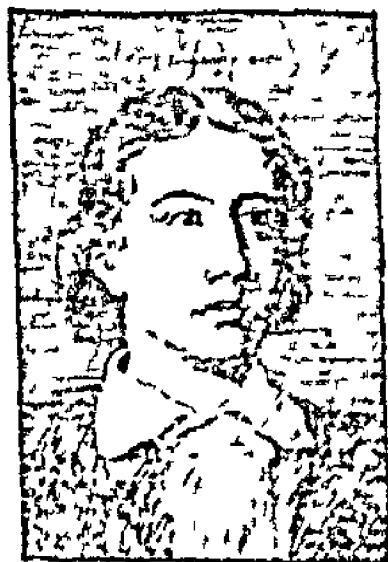
निस्सीम सुषमा के संधान मे कवि का अल्हड़ मन अस्पष्टता मे टगा जब भावना के छाया-पथ में रगीन-रेखाएं खीच देता है तो न जाने कब के और कहां के देख दृश्य और सौंदर्य-चित्र उसकी कल्पना मे उभर कर सजीव हो उठते हे। उसके प्राणों की धड़कन में, भीतर ही भीतर घुमड़ते आवेगो और श्वासों की पुलक मे मादक-सौदर्य विखर कर उसकी भावना की पार्श्वभूमि को रंजित कर देता है। दिव्य-सौंदर्य की सत्ता आनन्दमयी प्रेरणा वनकर निर्विशेष साधना में परिणत हो जाती है और तव असीम और ससीम का द्वंद्व एवं परोक्ष-अपरोक्ष का विभेद मिटकर सुन्दर को सत्य में तदाकार कर देता है।

कीट्स के शब्दों मे "सौंदर्य ही सत्य है और सत्य ही सौंदर्य।" (Beauty is truth, truth Beauty) अर्थात् सौंदर्य वह शाश्वत चेतना है, जो सत्य और श्रेय-ज्ञान की चरम परिणति है। सौंदर्य का प्रसरणशील अस्तित्व सत्य की आत्मा और ज्ञान का आदि-मूल है, तीनो ने एक दूसरे की परिधि मे अपने स्वरूप का निर्माण किया है।

कवि की सौंदर्य-भावना सत्य की जिज्ञासा वनकर जव भीतर के अरूप सौंदर्य को यत्र-तत्र छलकाती है तो अपने उमड़ते हृदय को संयत करके कोमल स्वर मे वह गा उठता है—

"एइ चित्त आभार वृन्त केवल,
तारि 'परे विश्व-कमल........" (टैगोर)

आलोक से इस प्रकार भर देता है कि विश्व का कण-कण उन्हें एक विचित्र आभा से ओत-प्रोत दीख पड़ता है।

"जगतेर मर्म ह'ते मोर मर्मस्थले
आनितेछे जीवन-लहरी—
विश्वेर निःश्वास लागि जीवन-कुहरे
मंगल आनंद-ध्वनि बाजे।"

"जगत् के मर्म से मेरे मर्मस्थल में जीवन-लहरी खिंची आ रही है। जीवन-कुहर में विश्व का निःश्वास संलग्न होने से मंगल और आनन्द की ध्वनि बज रही है।"

कवि बन्धनों से परे अनन्त सौंदर्य में व्याप्त होना चाहता है। उसकी अन्तर्मुखी चेतना विराट् छाया से तादात्म्य कर लेती है। प्रकृति के स्पन्दनों में मुखरित सौंदर्य उसकी उन्मन लहरियों में थिरकता हुआ अनिर्वचनीय भाव-परिधि में निर्बाध रूप से छलक पड़ता है।

"जे आमार शरीरेर शिराय शिराय,
जे प्राण तरंगमाला रात्रि-दिन—
सेइ प्राण छूटियाछे विश्व दिग्विजये
से प्राण अपरूप छन्दे ताले लये
नाचिछे भुवने।
सेइ जुग-जुगान्तेर विराट् स्पन्दन
आमार नाड़ीते आज करिछे नर्त्तन।"

"हमारे शरीर की प्रत्येक शिरा में जो अहर्निश प्राण तरंगित होते रहते हैं— वे ही प्राण आज छूटकर विश्व-दिग्विजय के लिये निकल पड़े हैं। वे ही प्राण अपरूप छन्द, ताल और लय में भरकर त्रिभुवन में नर्तन कर रहे हैं और वे ही युग-युगांतर का विराट् स्पन्दन बनकर आज हमारी नस नस में थिरक रहे हैं।"

सृष्टि की प्रत्येक वस्तु अपनी निर्धारित सीमा के भीतर अपरिमेय एकत्वबोध के फलस्वरूप अभौतिक सौंदर्य के ध्येय तक पहुंचने का प्रयत्न कर रही है। कवि के हृदय में स्निग्ध आलोक और सौंदर्य की आध्यात्मिक-दीप्ति मन्द मन्द संचरण करती हुई अमर सौंदर्य-रेखाओं में खचित हो जाती है।

"एइ क्षणे
मोर हृदयेर प्रान्ते, आमार नयन-वातायने

ये तुमि रयेछ चेये प्रभात-आलोके
से तोमार दृष्टि येन नाना दिन नाना रात्रि हते
रहिया रहिया,
चित्ते मोर आनिछे बहिया,
नीलिमार अपार संगीत
निःशब्देर उदार इंगित
आजि मने हय बारे-बारे
येन मोर स्मरणेर दूर पारापारे
देखियाछि कत देखा
कत युगे, कत लोके, कत चोखे, कत जनताय,
कत एका।
सेइ सब देखा आजि शिहरिछे दिके दिके
घासे घासे निमिखे निमिखे,
बने बने झिलमिल पातार झलक झिकमिके।'

इस क्षण मेरे हृदय प्रान्त और नयन वातायन में तुम प्रभात-आलोक झिलमिलाता देख रहे हो। तुम्हारी यह दृष्टि अनेक दिन और अनेक रात्रियों में से गुज़रती हुई नीलिमा का अपार संगीत और निःशब्द उदार संकेत मेरे हृदय में उतार रही है। आज मेरे मन में बार बार यही आ रहा है कि अपनी अतीत स्मृतियों के दूरस्थ छोर पर मैंने कितने दृश्य कितने युग, कितने मनुष्य कितनी आँखें, कितनी जनता और कितने ही एकान्त देखे हैं। जो कुछ मैंने देखा है—वह सब आज दिग-दिगन्त में, तृण तृण में, वेणु वन में, और पत्तों की चमक में प्रतिक्षण सिहर रहा है।

यों तो सुन्दर-असुन्दर एक दूसरे के पूरक और ईश्वरीय-सत्ता के दो अभिन्नतम अंग हैं, किंतु सौन्दर्य कला प्रवण आत्मा की चेतना और उसके कोमल भावों की अमूर्त माधुरी है। सौन्दर्य-सत्ता का अजस्र स्रोत उसके अन्तर में प्रविष्ट होकर उसके चारों ओर इतना आनन्द, इतना उल्लास और आकांक्षा बिखेर देता है कि वह विस्मय विमुग्ध हो विश्वात्मा से विराट् सर्जन में प्रश्न कर बैठता है—

"यदि प्रेम दिले ना प्राणे
केन भोरेर आकाश भरे दिले
एमन गाने गाने।

केन तारार माला गांथा
केन फूलेर शयन पाता,
केन दखिन हाउया गोपन कथा
जानाय काने काने ?"

"यदि तुमने प्राणों मे प्रेम नही भरा तो प्रभात में आकाश को इस प्रकार गीतो से क्यों भर दिया है ? क्यो तारिकाओं की माला गूथते हो ? क्यों पुष्प-शय्या बिछाते हो और क्यों दक्षिण-पवन आकर कान मे कुछ गोपनीय बाते सुना जाता है ?"

सौंदर्य की बोध-चेतना इतनी सूक्ष्म है कि वह हृदय को तीव्रता से स्पर्श करती हुई सत्य की समग्रता मे अन्तरग चेतना का उन्मेष करती है। सच्चे सौंदर्य का ध्येय भड़कीले, प्रचारित एवं काल्पनिक प्रत्यक्ष से हटकर आत्म-चिन्तनशील सौंदर्य को जगाना है, जो मनुष्य-जीवन की आनन्दमयी प्रेरणा बनकर आत्म-भाव मे स्थित हो जाता है। कवींद्र रवींद्र की महती आकांक्षा एक ओर अन्तर्निष्ठ-सौंदर्य की प्रेरणा का उत्स है और दूसरी ओर विश्वात्मा की असीम व्याप्ति उनकी आखो मे आलोक के स्निग्ध कण बनकर ढुलकती रहती है। रहस्यमयी कुहेलिका मे कवि को सौंदर्य की अम्लान शिखा का झलमल-झलमल आलोक दीख पडता है, जिससे उसका मानस भावापन्न होकर काव्यमय पुलक में फूट पड़ता है।

"प्रकाश, मेरे प्रकाश, विश्वव्यापी प्रकाश, नयनो को चूमनेवाले प्रकाश,
हृदय को अपनी मधुरिमा से ओतप्रोत कर देने वाले प्रकाश !
आह, प्रिय ! प्रकाश मेरे जीवन के केन्द्रबिन्दु पर नर्त्तन कर रहा है।
प्रिय ! यह प्रकाश ही मेरे प्रणय--तारों को झनझना रहा है।
आकाश ज्योतित है, हवा उन्मादिनी सी बह रही है, आह्लाद समस्त पृथ्वी पर बरस रहा है।
तितलियां प्रकाश के समुद्र पर अपने पंख फैलाए तैर रही हैं। लिली और जूही की कलियां प्रकाश-तरंगो के शिखर पर अठखेलियां कर रही हैं।
मेरे प्रिय ! प्रकाश प्रत्येक घन-खण्ड से टकराकर स्वर्णिम-आभा में बिखर जाता है और असंख्य रत्नों को बहुलता से बिखेर देता है।
प्रिय ! अनंत आनन्द और उल्लास पत्ते पत्ते पर बिखर कर फैल जाता है।
आकाश-गंगा ने अपने दोनो किनारों को डुबा दिया है, जिससे आनन्द की बाढ़ सी फूट पड़ी है।" (गीताञ्जलि से)

(l a n · · i n n the w · · i filling light the eye-kissing light, h a · w · ning light

A · · light dance · my darling at the centre of my life · l · h · trik · my darling the chords of my love the sky · · · th wind runs wild laughter passes over the earth

The butterflies spread their sails on the sea of light Lilies and jasmines surge up on the crest of the waves of light

The light i shattered into gold on every cloud my darling and it scatt r · gems in pro us n

Mirth spreads fr m leaf to leaf my darling and gladness without measure The heaven s river has drowned its banks and the fl · d · p · · abroad)

नि मन्देह रवीन्द्र का अनन्त दिव्य-सौन्दर्य की प्रकाश धारा न आलोकित है। स्निग्ध आलोक का मधु-गगन झर-झर कर उनके प्राण और अन्तर चेतना को भिजा रहा है। कवि को लगता है, जस दिग्दिगन्त म सौन्दर्य की रश्मियां फूटकर बिखर गया है और प्रकाश धारा आकाश की सघनता को चीरकर पृथ्वी पर उतर आई है तथा आनन्द का स्रोत उमड घुमड कर उन्मुक्त गगन और पृथ्वीतल में व्याप्त हो गया है ।

कवि अज्ञात-पथ का पथिक है। अनन्त सौन्दर्य में मिलकर उसकी इच्छाए इतनी शिथिल हो गयी है कि वह अपनी स्वप्निल मधुमयी कल्पना के प्रसार को अब विश्राम देना चाहता है।

'एबार फिराओ मोरे, लये जाओ
संसारेर तीरे,
हे कल्पन, रगमयि ! दुलायोना
समीरे समीरे
तरगे तरगे आर ! भुलायोना
मोहिनी मायाय ।

हे कल्पना ! मुझ वायु म अत्यन्त प्रकम्पन के साथ मत झकझोरो, एवं एक तरग के साथ आदोलित न करो। हे रगमयि ! मुझ अपनी मोहिनी माया म मत भुलाओ वरन् अब मुझ लौटा कर संसार के समीप ले चलो।

कहना न होगा—रवीन्द्र की अन्तर्दृष्टि सूक्ष्मतम सौंदर्य मे पैठ सकी है। वे अपने चित्रों की जो इतनी सम्यक् रूप रेखा खींचने में समर्थ हुए हैं—इसका कारण है

कि वे सौंदर्य के अन्तर्बाह्य दोनों रूपों में अवगत है। कीट्स की सौंदर्यानुभूति भी बहिरतर मान्यताओं से पृथक् ऊर्ध्व धरातल पर टिकी हुई तत्त्वतः उसी लक्ष्य की ओर संकेत करती है, जहां मानव गहरी सौंदर्य-भावना में मग्न अपनी पृथक् सत्ता की प्रतीति का विसर्जन कर देता है। उसकी पारदर्शी दृष्टि सत्यहीन विरूपता को चीर कर सौंदर्य की आन्तरिक शुचिता को स्पर्श करती है। 'सत्यं-शिवं-सुन्दरम्' की सूक्ष्म व्यापकता में कवि की कल्पना ने तादात्म्य कर लिया है, जिससे उसका मानसिक-चिन्तन वस्तु-जगत् की मांसलता से परे घनीभूत सौंदर्य-तत्त्वों में साकार हो गया है। कीट्स के शब्दों में, **"सुन्दर वस्तु चिर-आनन्ददायिनी है, उसकी माधुरी नित्य बढ़ती जाती है, उसका कभी ह्रास नहीं होने पाता।"**

("A thing of beauty is a joy for ever. Its loveliness increases; it will never pass into nothingness.")

अपने एक पत्र में वह लिखता है, **"मैंने सभी वस्तुओं में सौन्दर्य-तत्त्व को प्यार किया है, और यदि मुझे अधिक समय मिले तो मैं अपने को अमर बना जाऊं।"**

("I have loved the principle of beauty in all things, and if I had had time I would have made myself remembered")

जब सर्वप्रथम कीट्स ने लिखना आरम्भ किया तो अपनी बहिर्मुखी और अन्तर्मुखी सौंदर्य-दर्शन की लालसा, अन्तःकरण में छिपी हुई किसी अव्यक्त आकांक्षा की प्रेरणा, सत्य के प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप और जीवन-सरिता में उठने वाले रंगीन बुदबुदों की चाह के कारण वह सौंदर्य के सपने सेने लगा। सौंदर्य की छवि को उसने प्राणों में उतार लिया और सौंदर्य ही उसके जीवन का इतिहास बन गया।

मध्ययुगीन इटली के अतीत वैभव और ग्रीक-कला ने कीट्स को अत्यधिक प्रभावित किया था। 'हेलेनिज्म' उन दिनों ग्रीक सभ्यता एवं संस्कृति का द्योतक और तत्कालीन कलात्मक प्रवृत्तियों का पोषक समझा जाता था। कीट्स की कला-प्रवण आत्मा ग्रीस की प्रत्येक प्रतिमा, कलाकृति और प्रस्तर-खंड में सौंदर्य की खोज करती थी। यद्यपि उसे ग्रीक-भाषा की अधिक जानकारी न थी, तो भी उसने वहां के महाकवियों और कलाकारों की रचनाओं को अंग्रेजी अनुवादों के माध्यम से हृदयंगम कर लिया था। अपने अन्तर की चेतना में उसे अनवरत सौंदर्य-दीप्ति जगमगाती जान पड़ती थी और सरल शैशव की सुखद स्मृतियां सुन्दरता की धूप-छांह एवं अनिर्वचनीय पवित्रता में ओत-प्रोत थीं। स्पेन्सर (Spenser) और लेहंट (Leigh Hunt) की शृंगारिक कविता और चेपमेन (Chapman) के

[illegible] जो कवि म [illegible] और [illegible] भावना जाग्रत हो गया था [illegible] मानसिक स्थिति का [illegible] हुई निम्न पंक्तियों में [illegible] है—

तब मुझे ऐसा अनुभव होता था मानों मैं आकाश-लोक से झाँकने वाला प्रहरी हूँ और मेरी परिधि में कोई नया नक्षत्र तैर आया है, अथवा मैं सुदृढ़ कार्टेज की भाँति अपनी विराट दृष्टि से समुद्र में घूर रहा हूँ जिसके सभी अनुयायी डेरियन पर्वत के शिखर पर स्थित चुपचाप एक दूसरे के मुँह को उद्दण्ड आशंका से देख रहे हैं।"

(Then felt I like some watcher of the skies
When a new planet swims into his ken
Or like stout Cortez when with eagle eyes
He stared at the Pacific—and all his men
Looked at each other with a wild surmise—
Silent upon a peak in Darien)

कीट्स ने ग्रीक-निवासियों की भाँति सौन्दर्य को उस मूर्च्छना में उपस्थित किया है, जो कल्पनाशीलता की अतिरंजित सूक्ष्मता के प्रति जिज्ञासा जगा जाती है। उसकी कलात्मक प्रतिभा प्रचण्ड मनोवेगों को तरंगित करती हुई अन्तरात्मा की प्रतिच्छाया है और सौन्दर्य की एन्द्रिय-परिधि में भी उस अमर सत्य की ओर उन्मुख है जहाँ अन्तर्द्रष्टा कलाकार की ज्ञानभूत आत्मा उद्भासित होकर ज्ञान-स्फुलिंगों में एकरूप हो गया है। 'ओड टु ए नाइटिंगल' (Ode to a Nightingale), 'ओड ऑन ए ग्रेसियन अर्न' (Ode on a Grecian urn), 'ओड ऑन मेलेंकली' (Ode on Melancholy) और 'ओड टु आटम' (Ode to Autumn) आदि गीतों में जो कला का सौन्दर्य निखर पड़ा है वह कीट्स की अलौकिक प्रतिभा का परिचायक है। प्रकृति की अन्तरात्मा में अनवरत उठने वाले उच्छ्वास, आनन्द-स्वप्नों की अस्पष्ट, अनबूझ दुर्भेद्यता, प्रणय का आनन्द और मधुर टीस, साथ ही उन्मुक्त प्राणों की विद्रोह कर भ्रमशील इच्छा-आकांक्षाओं का घुमड़ना करुण राग—सभी मानो कवि के अन्तःसौन्दर्य की आभा से आलोकित हो उठा है। बुलबुल की स्वर-लहरी की गूँज में कवि को युग-युगान्तर की भावनायें सिहरती सुन पड़ती हैं।

"अमर चिड़िया! तू मरने के लिए पैदा नहीं हुई। न ही बुभुक्षित पीढ़ियाँ तेरी चिरन्तनता को कुचल सकेंगी। आज की ढलती हुई रात्रि में जो स्वर मुझे सुन पड़ रहा है—यह प्राचीन-काल में राजा रंक दोनों के द्वारा सुना गया था। कदाचित इसी संगीतात्मक ध्वनि ने रूथ के व्याकुल कलेजे को, जबकि वह घर लौटने की चाह में अश्रुपूर्ण नेत्रों से एकाकी खेत में खड़ी थी,

चीर दिया था। यह वही स्वर है, जिसका आकर्षण अतीत-काल में प्राय: निर्जन परीदेश के इर्दगिर्द फैले निस्सीम समुद्र के भयोत्पादक हहराते फेनों के ऊपर खुलने वाले जादू के झरोखों से झांकने को बाध्य कर देता था।"

("Thou wast not born for death, immortal Bird!
No hungry generations tread thee down;
The voice I hear this passing night was heard
In ancient days by emperor and clown;
Perhaps the self-same song that found a path
Through the sad heart of Ruth, when, sick for home,
She stood in tears amid the alien corn;
The same that oft-times hath
Charmed *magic casements, opening on the foam*
Of perilous seas, in faery lands forlorn.")

हृदय के अंधेरे गह्वर से उमड़ता निराशा का कुहरा कवि को सारी पृथ्वीतल पर व्याप्त दीख पड़ता है। अतएव वह सद्भाव से भरा मस्त, उन्मुक्त विहंगिनी को सांसारिक अनुभूत क्लेशों, यहा के निवासियों की परेशानी और विपदाओं, वृद्धावस्था की शारीरिक क्लांति और असमर्थता, अस्थायी सौदर्य और प्रेम की दुर्दशा के नज़ारो से दूर रहने का आदेश देता है। ऐहिक-जडता और दुश्चिताओ से वह पक्षी की आन्तरिक कुहुक और स्वर के मार्दव को नष्ट नही करना चाहता।

"दूर तिरोहित हो जा, भाग जा और यहां की श्रांति, ज्वर और कष्टों को, जहां कि मनुष्य बैठकर एक दूसरे की आहें सुनते है, जहां क्लांत, जर्जर शरीर को लकवा मार जाता है, जहां यौवन ढलकर श्रीहीन, फिर ढांचा सा और बाद में मृत्यु के रूप में परिणत हो जाता है, जहां की चिन्तन-प्रक्रिया दु:ख-दर्दों से भरी है तथा निराशाएं स्वस्थ चेष्टा को म्लान कर देती हैं, जहां सौन्दर्य से चमकते नेत्र बुझ जाते है और नए प्रेम का ज्वार दूसरे दिन ही मंद पड़ जाता है, सर्वथा भुला दे, जिसको कि हरे पत्तों के मध्य में रहकर तू कभी कल्पना भी नहीं करती।"

("Fade far away, dissolve, and quite forget
What thou among the leaves hast never known,
The weariness, the fever, and the fret
Here, where men sit and hear each other groan;
Where palsy shakes a few, sad, last grey hairs,
Where youth grows pale, and spectre-thin, and dies;
Where but to think is *to be full of sorrow*
And leaden-eyed despairs;
Where Beauty cannot keep her lustrous eyes,
Or new Love pine at them beyond to-morrow.")

ग्रीसियन अर्न पर लिखने की प्रेरणा कीट्स को लार्ड हालैंड के संगमरमर के कलामय सुन्दर कलश को देखकर हुई थी जो अब भी केंसिंगटन नगर में हालैंड-हाउस के उद्यान में सुरक्षित रखा है। इसमें एक बलिदान का सजीव दृश्य अंकित है जो ग्रीस की मूर्ति निर्माण-कला, मन-भावना एवं सूक्ष्म रसों की प्रकाश-छाया से प्रभावित हुआ है। कलश के बिल्कुल सामने एक वेदी है, जिसके समीप एक पुजारी खड़ा है। वेदी के ऊपर एक व्यक्ति वाद्य बजाने की भावभंगी में चित्रित किया गया है दो हरे भरे वृक्ष पास ही लहलहा रहे हैं और एक बछड़ा बलि के लिये लाया जा रहा है।

कलश के दूसरी ओर कुछ युवक वृक्ष के नीचे गीत गा रहे हैं। उनके पास ही वाद्य-संगीतज्ञ खड़े हैं और दो प्रेमी परस्पर चुम्बन किया ही चाहते हैं। संगमरमर के वाद्य-यंत्र का मूक संगीत कभी न गाये जाने वाले गीत प्रणय की शान,अर्द्ध-अनुभूत स्निग्धता, जो कभी फलप्रद नहीं हो सकती ये सब मानो उस पात्र पर वास्तविकता से भी अधिक सजीव और आकर्षक प्रतीत हो रहे हैं। कवि की दृष्टि स्थूल को छोड़ कर सूक्ष्म-सौन्दर्य में रमना चाहती है। वह कलश-वाद्य को सम्बोधित करके कहता है—

"सुने हुए गीत मधुर होते हैं, किन्तु जो कभी सुने नहीं जाते, वे उससे भी अधिक मधुर हैं, अतएव, ए मृदुल वाद्य ! नित्य बजते रहो—पार्थिव कानों के लिए नहीं वरन् अगाधित, सूक्ष्म चेतना के खातिर उन गीतों को सुनाने के लिए, जो निःस्वर हैं।

सुन्दर युवक ! इन वृक्षों के नीचे अपने गीत की तुम कभी अवहेलना न करोगे, न ही ये वृक्ष कभी ठूंठ, पत्रहीन होंगे।

साहसी प्रेमी ! तुम अपने लक्ष्य पर पहुंचकर भी कभी, किसी भी स्थिति में चुम्बन न कर पाओगे तो भी इसके लिये कुछ दुःख न करना क्योंकि वह (तुम्हारी प्रेयसी) कभी भी तुम्हारी दृष्टि से ओझल न होगी।

यद्यपि इस स्वर्गीय-सुख के आस्वाद से तुम सदैव वंचित रहोगे, तथापि तुम्हारा प्रेम स्थायी होगा और वह नित्य ही सुन्दरी बनी रहेगी।"

(Heard melodies are sweet but those unheard
Are sweeter therefore, ye soft pipes play on,
Not to the sensual ear but more endeared
Pipe to the spirit ditties of no tone

Fair youth, beneath the trees thou canst not leave
Thy song, nor ever can those trees be bare,
Bold Lover, never, never canst thou kiss,
Though winning near the goal—yet do not grieve;
She cannot fade, though thou hast not thy bliss,
For ever wilt thou love, and she be fair!")

विश्व के विराट् रंगमंच पर पार्थिव वस्तुएं नित्य बनती और बिगड़ती हैं, केवल शाश्वत सौदर्य और सत्यता की प्रकाश-धारा दिग्दिगन्त मे व्याप्त होकर मानव-हृदयों मे जाग्रत रहती है।

"ओ मूक निर्मिति ! जिस प्रकार स्थायित्व की भावना हमारी खिन्नता को अपहृत करती है, उसी प्रकार तू हममें प्रेरणा और प्रोत्साहन भर। ग्राम्य-दृश्यों के प्रदर्शक ओ निर्जीव पात्र ! इस युग की वृद्धता जब नष्ट हो जाएगी, तब भी हमसे पृथक् इतर मानवों के दुःख-क्लेशों के मध्य तू अमर बना रहेगा। तू मनुष्य का मित्र बनकर निरन्तर यह सीख देता है, 'सौन्दर्य सत्य है, सत्य है सौन्दर्य'—पृथ्वी पर आकर इसी सारतत्त्व को अवगत करना और इसके रहस्य को हृदयंगम कर लेना अनिवार्य है।"

("Thou, silent form! dost tease us out of thought
As doth eternity. Cold Pastoral!
When old age shall this generation waste,
Thou shalt remain, in midest of other woe
Than ours, a friend to man, to whom thou say'st;
Beauty is truth, truth beauty—that is all
Ye know on earth, and all ye need to know.")

रवीन्द्र और कीट्स ने जिस प्रकार सत्सौन्दर्य की आभा को अपने अमर कृतित्व में ज्योतित किया है, उसी प्रकार पन्त के गीत भी सौंदर्य के झिलमिल प्रकाश से जगमगा उठे हैं। पन्त सौंदर्य-प्रेमी हैं और प्रत्येक भावमयी वस्तु में सौंदर्य के अतुल वैभव को बिखरा पाते हैं।

"न जाने कौन अये द्युतिमान !
जान मुझको अबोध, अज्ञान
सुझाते हो तुम पथ अनजान,
फूंक देते छिद्रों में गान।"

प्रकृति के अणु-अणु में कवि ने सौंदर्य की रहस्यमयी छाया झलमलाती देखी है। उसे विश्वात्मा में मूक संकेत, नभ की निस्सीमता मे दिव्य स्फुलिंग, सद्यःस्फुट सुमनो के सौरभ में अचिन्त्य सुवास, पक्षियों की मधुर कूक में मौन निमंत्रण, शशि की निर्मल ज्योत्स्ना मे रजत हास, उषा की अरुणिमा मे सार्वभौम सरसता, संध्या

की भन्मलाहट में मामिक सूक्ष्मता और जगत् की अनित्य सत्ता में चिरंतन सत्य के दर्शन होते हैं। उसी सृष्टि के उन्मुक्त प्रसार में अज्ञात शक्ति व्याप्त दीख पड़ती है।

"एक ही तो असीम उल्लास,
विश्व में पाता विविधाभास,
तरल जलनिधि में हरित विलास,
शान्त अम्बर में नील विकास,
वही उर उर में प्रेमोच्छ्वास,
काव्य में रस कुसुमों में वास।"

अपने भीतरी सौन्दर्योल्लास को पन्त ने मानव की सहज, सरल सुषमा में नर-वर देखा है।

"उसके उस सरलपने से
मैंने था हृदय सजाया,
वह ललित स्पन्दन आ का
वह सरलता अपनाया।"

कवि के लिये सौन्दर्य विश्व का अन्तरतम संगीत है। उसमें उसकी सूक्ष्म-चेतना अन्तर्हित है। सर्वमान्य-सौन्दर्य तत्त्वों का उद्घाटन करते हुए उसने अपनी अरूप वृत्तियों को कविता में साकार किया है।

"भूतियों का दिगन्त छवि-जाल
ज्योति चुम्बित जगती का भाल!
राशि राशि विकसित वसुधा का यह यौवन विस्तार?
स्वर्ग की सुषमा जब साभार
धरा पर करती थी अभिसार!
प्रसूनों के शाश्वत शृंगार,
(स्वर्ण भृंगों के गंध विहार,)
गूंज उठते थे बारबार,
सृष्टि के प्रथमोद्गार!
अरे, विश्व का स्वर्ग-स्वप्न, सर्जन का प्रथम प्रभात।"

विश्व की प्रत्येक वस्तु को क्षणभंगुर मानते हुए भी पन्त जीवन में पूर्णता लाने के लिये निरपेक्ष जागरूकता के कायल हैं। वे अन्तरंग सरसता में डूबकर उदात्त भावों की सृष्टि करना चाहते हैं।

"जीवन के अंतस्तल में
नित बूड़ बूड़ रे भाविक!"

शरीरज सौन्दर्य की व्यक्ति

यहां यह लिखना अप्रासंगिक न होगा कि रवीन्द्र, कीट्स और पन्त सौन्दर्य की निर्बन्ध धारा में बहते हुए भी शरीरज मादकता और ऐहिक उन्माद की तरंगित भावनाओं से अछूते न रहे। दिव्य-सौंदर्य का सूक्ष्म आवरण हटते ही वस्तुजगत् की चमक-दमक में नारी की मधुर छवि, अंग-प्रत्यंग का चपल विलास, जगमगाते रंगीन रेशमी पट से झांकती उसके कोमल तन की श्वेताभा उनके नेत्रो मे सहसा कौंध जाती थी, जिससे वह कुछ क्षणों के लिये अपने तन-मन की सुधि खो देते थे। रवीद्र निरावरण नारी की शोभा मे सराबोर होकर उसकी नग्न पावनता को भासमान देखना चाहते हैं।

"फेलो गो वसन फेलो—घुचाओ अंचल !
परो शुभ्र सौन्दर्येर नग्न आवरण।"

"एजी ! वस्त्र फक दो, अंचल हटाओ। पहन लो शुद्ध सौन्दर्य का नग्न आवरण।"

'देहेर-मिलन' में कवि का अग-प्रत्यंग नारी के अग-प्रत्यंग के लिये छटपटा रहा है।

"प्रति अंग कांदे तव प्रति अंग तरे,
प्राणेर मिलन मागे देहेर मिलन।
हृदये आच्छन्न देह हृदयेर भरे,
मुरछि पड़िते चाय तव देह परे।"

"अग-प्रत्यंग तेरे अंग-प्रत्यंग के लिये रो रहा है। प्राण तेरे देह का मिलन मांगता है। हृदय से आच्छन्न देह हृदय के आवेग से भरा तुम्हारे देह पर मूर्च्छित हो कर गिर पड़ना चाहता है।"

सौंदर्योपासक कवि की अनुरक्ति नारी की रमणीयता में सिमटकर केन्द्रित हो गयी है। नारी का शरीरज आकर्षण उसकी सौंदर्य-चेतना को उद्बुद्ध करता हुआ उसके प्राणो को उच्छ्वसित करता है।

"नारीर प्राणेर प्रेम मधुर कोमल,
विकसित यौवनेर वसन्त समीरे।
कुसुमित होये ओइ फूटे छे बाहिरे,
सौरभ सुधाय करे पराण पागल।"

"नारी के प्राणो का मधुर, कोमल प्रेम यौवन के वासंती समीर को झकझोर रहा है। कुसुमित होकर बाहर फूट-फूट पड़ रहा है और सौरभ-सुधा प्राणो को उन्मत्त बना रही है।"

रवीन्द्र बाबू की प्रारम्भिक रचनाओं 'प्रभात-संगीत', 'निर्झरेर स्वप्न भंग', 'प्रतिध्वनि' 'अनन्त जीवन', 'अनन्त मरण' आदि में मादक उन्माद है, हृदय को तरंगित करने वाला भावावेग है और जीवन के मधुर क्षणों की सरसता फूट पड़ी है। काल्पनिक स्मृति चित्र सहसा कवि की भावनाओं को विलासित करते हैं अथवा तारता अतीत वर्तमान् की मीठी कुहक से चहक पड़ता है और तब उसमें प्राणों में उतरकर हृदय-वीणा के तार-तार को झंकृत कर देता है और अकूल सागर में उमड़ती आशा निराशा की ऊर्मियाँ बंधनमुक्त होकर छलक पड़ रही हैं।

"ना जानि केनरे एत दिन परे
जागिया उठिल प्राण,
ओरे, उथिल उठछे वारि,
ओरे प्राणेर वासना प्राणेर आवेग
रुधिया राखिते नारि।'

'न जाने क्या आज इतने दिन बाद मेरे प्राण जाग उठे हैं। और जल उच्छ्वसित हो उठा है। प्राणों का आवेग, प्राणों की वासना आज रोके नहीं रुक रही है।"

कवि की परवर्ती रचनाओं 'उर्वशी' और 'विजयिनी' में उसके तरुण हृदय का उष्ण रक्त प्रवाहित हो रहा है। प्रणय की मूर्च्छना उस अन्तरिक्ष में व्याप्त दीख पड़ती है और प्रेयसी की मुस्कानों में उसका समस्त अन्तर्वाह्य आलोकित हो रहा है।

"अंगे अंग यौवनेर तरंग उच्छल
लावण्येर माया मन्त्रे स्थिर अचंचल
बन्दी होये आछे।

"अंग प्रत्यंग में यौवन की उच्छल तरंगें उठकर लावण्य के माया मन्त्र में स्थिर, अचंचल होकर बन्दी हो गयी हैं।'

देखिये पन्त की प्रणयिनी भी किस प्रकार इठलाती, बलखाती उसके एकाकी हृदय-कोण में मन्द-मन्द संचरण करती हुई आती है—

'अरे, वह प्रथम मिलन अज्ञात
विकम्पित उर मृदु पुलकित गात
सशंकित ज्योत्स्ना सी, चुपचाप
जड़ित-पद नमित पलक दृग् पात।

रवीन्द्र की भांति पन्त भी भावातिरेक में विभोर सौंदर्य की अनूठी कल्पनाओं से अनुप्राणित हैं। प्रेयसी की मुखच्छवि में कवि की दृष्टि अटकी है उसकी मादक चेष्टाओं के प्रत्येक इंगित पर उसके गीतों का शब्द-शब्द थिरक रहा है। प्राणों की पुलक, हृदय की आकुलता और जीवन का समस्त रस देकर उस एक केंद्रबिन्दु

में ही जा सिमटा है। स्वप्न-संगिनी की चाह में उसकी भावनाएं तरंगित होकर छन्द-छन्द में छहर उठी है।

"मुद्रमिल सरसी में सुकुमार
अधोमुख अरुण-सरोज समान,
मुग्ध कवि के उर के छू तार,
प्रणय का सा नव-गान,
तुम्हारे शैशव में, सोभार,
पा रहा होगा यौवन-प्राण;
स्वप्न-सा, विस्मय-सा अम्लान,
प्रिये, प्राणों की प्राण!"

प्रकृति का प्रत्येक तत्त्व कवि को उस अनिन्द्य सुन्दरी की सौंदर्य-आभा से दीप्त दीख पड़ता है और दृश्य-जगत् की अनेकरूपता में उसके अन्तर का माधुर्य आविर्भूत होकर छलक पड़ा है। 'पल्लव','ग्रंथि', गुंजन' और अनेक स्फुट उद्गीतियों में कवि की प्रणयानुभूति जाग्रत होकर सरस कल्पना में गुथ गई है, किंतु इधर की रचनाओं में कवि अन्तरात्मा की ओर मुड़ा है और उसकी सौंदर्य-चेतना सूक्ष्म होकर स्थूल के बहुत ऊपर उठ गयी है। ऐन्द्रिक-उपभोग की लालसा आत्मा की विशदता और सात्त्विक उल्लास में परिणत होकर जीवन तत्त्वों में पैठना चाहती है।

"निभृत स्पर्श पाकर निसर्ग का,
आत्मा गोपन करती चिन्तन।"

कीट्स सिद्धान्ततः सूक्ष्म सौन्दर्य का साधक होते हुए भी पार्थिव सौंदर्य का कल्पक है। उसकी सरस कल्पना इतनी सचेतन और प्रखर है कि वह बाह्य-सौंदर्य के नूतन आलोक और घुमावदार रूप में रमकर चित्रमय हो उठी है। कवि के जीवन की सबसे बड़ी ट्रेजेडी है कि वह अपनी काव्य-साधना के आरम्भ में ही, जब कि उसकी केवल एक कृति 'एंडीमिओन' (Endymion) लिखी गयी थी, एक आकर्षक किंतु अविश्वस्त युवती फेनीब्रॉन के स्नेहजाल में फंस जाता है, जो उच्छृंखल प्रकृति की होने के कारण अपने प्रेमियों को तड़पाने में ही सुख का अनुभव करती है। फेनी के प्रेम को जीतने में, उसे सर्वथा अपनी बनाने में कवि के सभी प्रयत्न विफल होते हैं।

"आह! यदि तुम मेरी दमित आत्मा को निर्धन, निस्सत्त्व और क्षणिक दर्प से अधिक महत्त्व देती हो तो प्रेम की पावन-धारा को किसी दूसरे के स्पर्श से अपावन न होने दो; अथवा अभिमंत्रित केक को निर्मम हाथों से न तोड़ो। सद्यः-स्फुट पुष्प को कोई और न छूने पाए। यदि तुम ऐसा नहीं चाहती तो मेरी आंखें सदैव के लिए मुंद जाएं और यह प्रणय-व्यथा चिर-विश्रांति में खो जाए।"

'लामिया', 'हाइपीरियन', 'इज़ाबेला' आदि अन्य रचनाओं में भी कवि की तात्कालिक मन.स्थिति का परिचय मिलता है, जिनमें फेनी के प्रेम में विभोर उसका उच्छ्वसित उल्लास प्रस्फुटित हुआ है। सौंदर्य की गम्भीर साधना को भुला कर प्रेयसी की सजल सुधि में मग्न कवि को ऐसा प्रतीत होता है मानों सृष्टि का कण कण अनुराग से रजित है। प्रणय-कौतुक के विचित्र स्वप्न, रंगीन कल्पना का उन्मुक्त प्रसार एवं यौवन की उद्दाम लालसाएं उसकी परवर्ती रचनाओ में आद्योपान्त विद्यमान् है। उसकी भीतरी कुहुक छहर छहर कर बरस रही है, आलोक झिलमिला उठा है और आनन्द उत्सारित होकर चारो ओर फूटा हुआ सा दीख पड़ता है। अपने मित्र रेनोल्ड्स को कीट्स ने एक पत्र में लिखा था, "यदि मैं निश्चित, स्वस्थ और सुव्यवस्थित चित्त रहूं और मेरे फेफड़े इतने मजबूत हों कि मै बड़े से बड़े धक्को, वेदनाओं और परेशानियो को बिना विचलित हुए सह सकूं तो चाहे मुझे अस्सी वर्ष क्यों न जीना हो मै शान्तिपूर्वक सुख से जीवन बिता सकता हूं। किंतु मै अपने शरीर को श्रांत और शिथिल अनुभव कर रहा हूं। इतना ऊंचा उठना मेरी सामर्थ्य से परे है, मै विवश होकर अपनी इच्छाओ का दमन कर रहा हूं।"

जीवन की मधु-वेला में भाग्य कवि को धोखा देता है। उसके दो भाइयों की मृत्यु हो जाती है और फेनी उससे अपना सम्बन्ध विच्छेद कर लेती है, जिससे उसका प्रणय-वचित, भावुक हृदय अत्यन्त व्यथित हो उठता है और वह बीमार पड़ जाता है।

फरवरी सन् १८२० में शीत लग जाने के कारण कीट्स की शारीरिक स्थिति और भी बिगड़ जाती है और उसे खून की कै होती है। कवि को समीप आती हुई मृत्यु दीखने लगती है. "मै इस खून के रग को पहिचान रहा हूं, यह नसों में से बह कर आया हुआ खून है, जिसका एक एक क़तरा मेरी मृत्यु का सूचक है। मै जल्दी ही मरने वाला हूं।"

डॉक्टरों ने शीत-ऋतु में उसे इंग्लैड से कही अन्यत्र जाने की सलाह दी, किंतु फेनी की स्मृति और यदा-कदा उसके दर्शनो का लोभ संवरण करना उसके लिये असह्य था। जैसे तैसे समझाने-बुझाने पर आठ सितम्बर को अपने एक मित्र जोजेफ सेवर्न के साथ वह ग्रेवसेण्ड के लिये रवाना हो गया। उसे विदित था कि वह लौट कर फिर कभी इंग्लैड नही आयेगा। अपने मरने से पूर्व कवि ने एक बहुत ही करुण पत्र लिखा, "मै मरना गवारा कर सकता हूं, पर फेनी से बिछुड़ना मुझे सह्य नहीं।" वियुक्त प्रेयसी की स्मृति से आकुल कवि की छटपटाती आत्मा कुछ दिन बाद ही, जब कि वह केवल पच्चीस वर्ष का था, मृत्यु में चिर-विश्राम पा जाती है।

साधन और साध्य

कहने की आवश्यकता नहीं कि रवीन्द्र, पन्त और कीट्स तीनों ही पार्थिव म अपार्थिव प्रम की व्यंजना और बाह्य रूप रंग में सौंदर्यानुभवी अन्तरात्मा की सूक्ष्म अनुभूति करना चाहते हैं। तीनों के लिये सौंदय साधन है और साध्य भी। तीनों ही सौंदय के निर्भर संकेतों में अपनी रंगीन कल्पना की छाया भरना चाहते हैं, तीनों में शृंगारिक भावनाएं और उन्मन हृदय की मनोज्ञ अतिशयता के कारण साम्य से अधिक प्रम विदग्धता और वासना का द्वंद्व ही अधिक मिलता है। वर्तमान् स असंतोष, अतीत से सहानुभूति और अन्तर्बाह्य दोना प्रकार के सौंदर्य को स्पष्ट करने की प्रवृत्ति तीनों कवियों में समान रूप से वर्तमान् है।

रवीन्द्र की कृतियों में सौंदय का सब से विशद प्रतिपादन हुआ है। दृश्य-जगत् के करुणतम कोमल चित्रों में उन्हें अनन्त सौंदय बिखरा हुआ दीख पड़ता है। अनादि विश्व-वीणा से स्वर निस्सृत होकर माना उनके लिये सौम्य रस की वृष्टि कर रहे हैं। कविक शब्दों में, "जब मैं निश्चेष्ट हो जाऊं तब भी मेरे जीवन का यह नृत्य मेरे प्रसुप्त शरीर के आसपास होता रहेगा! तब भी मेरे हृदय में कम्पन रहेगा, नसों में रक्त का प्रवाह बहता रहेगा और मेरे जीवन के लाखों परमाणु विश्व-गायक की वीणा की झंकार स झंकृत होते रहेंगे।"

सौंदय की मधु धारा विश्वास का कुहरा बनकर इस महाकवि के जीवन पर छाया रहा, जिससे वह सौंदय की साधना करते करते ही जिया और मरा। पन्त और कीट्स न भी मूलतः सौंदय के उन्मुक्त स्वरूप को अपनाया है। स्थूल और सूक्ष्म दोनों में ही उनकी वृत्ति रमी है। सौंदय की आत्मा में झांककर वे उसके बाह्य रूप रंग पर आकृष्ट हुए हैं। सूक्ष्म सौंदय की शालीनता और प्रणय का उन्मद राग उनकी धमनियों में साथ साथ प्रवाहित हुआ है। विश्व-जीवन के झिलमिल प्रतिबिम्बों में रम कर पन्त की सूक्ष्म चेता आत्मा इतनी तन्मय और तद्रूप हो गयी है कि जीवन की कुरूपता में भी उन्हें अनन्त छवि के दर्शन होते हैं।

> 'सुन्दर हैं विहग, सुमन सुन्दर,
> मानव! तुम सबसे सुन्दरतम,
> निर्मित सब की तिल सुषमा से
> तुम निखिल सृष्टि में चिर निरुपम।

हार्डी और प्रसाद का प्रकृति चित्रण और नियतिवाद

टामस हार्डी

जन्म—२ जून, सन् १८४०

मृत्यु—सन् १९२८

जन्मस्थान—डॉरचेस्टर (इंगलैण्ड)

यों तो हार्डी और प्रसाद की भावधारा उपन्यास-नाटक इन दो नितान्त भिन्न क्षेत्रों में विकसित हुई है, तथापि दोनों के महान् कृतित्व में भीतर का भीम-वेग भरा हुआ होने पर भी एक तटस्थ वृत्ति एवं निष्क्रिय निस्संगता के दर्शन होते हैं। उनके सूक्ष्म, चेतना-केन्द्रों में जो अनवरत संघर्ष चल रहा है, उनके अन्तर का कोलाहल जो बाहर की एकांत-साध बनकर व्यक्त हुआ है और जीवन के मूल में जो द्वयता और विसंवादी स्वर बज रहे हैं—उससे उनकी बौद्धिक-साधना निःस्व हो उठी है और कर्म का अंतरंग आग्रह जीवन के असामान्य क्रम में बदल गया है।

प्रकृति-चित्रण

असाधारण व्यक्तियों की आंतर-प्रेरणा मानवात्मा की शाश्वत पुकार है और उनका अमूर्त्त संसार भावाधिक्य में आत्म-मर्यादा से अनुप्राणित होकर बाह्य-गोचर में बिम्बित हो उठता है। हार्डी और प्रसाद दोनों ही सापेक्षवादी द्वैत चिन्तक हैं और दोनों ने अनुभूति की अखण्ड एकरूपता का अविकारी आत्मा से असीमित सम्बन्ध जोड़ कर निरपेक्षता में सापेक्ष तत्त्वों को आरोपित किया है। प्रकृति इन दोनों के लिए मानवी-भावों की प्रतिच्छाया है, वे उसके चित्रात्मक-रूप पर मुग्ध नहीं हैं, वरन् भौतिकवादी पार्थिव पदार्थों में अपनी अनेक सूक्ष्म परि-कल्पनाओं का व्यंजक रूप देखते हैं। दोनों की बुद्धि इतनी सजग और तत्पर है कि प्रकृति के भिन्न भिन्न दृश्यों को लेकर जीवन के वैयक्तिक पक्षों का सफल उद्घाटन

जगनी हुई दो विरोधी भावों जैसे सुख-दुःख, हर्ष-विषाद, आकर्षण-विकर्षण तथा आक्रोश एवं मानव की सम-विषम वृत्तियों का प्राकृतिक-वस्तुओं से स्थूल के साथ धारण द्वारा साम्य दर्शन करती है।

हार्डी की बोध-चेतना प्रसाद से भी अधिक सूक्ष्म और तीव्र है उसकी तीखी दृष्टि सार-वस्तुओं को तुरन्त पकड़ लेती है और मन्त्र-मुग्ध सी अपने आग्रह एवं अस्तित्व का न्यय करके आश्चर्यजनक तन्मयता से प्राकृतिक-उपादानों में चेतना के स्फुरण का अनुभव करता है। न केवल कला की विचित्रता को अपना कर हार्डी ने दृश्य जगत की मानसी झाँकी द्वारा उसकी अनिवार्य सौन्दर्य-साधना को पूर्ण किया है वरन् स्वाभाविक दृश्य चित्रों एवं ठेठ कौटुम्बिक-जीवन में एकात्मरूप होकर उसने ग्राम्य प्रकृति का मनोरम यथातथ्य चित्रण किया है, जिसमें निसर्ग शोभा-श्री एवं आनन्द हर्ष विषाद फूट पड़ा है। आर्द्र, सुगंधित वन का कोमल प्रसार शान्ति एवं प्रचण्ड वायावेग का आह्वान करती हुई हवा की तदनुरूप ध्वनि, रात और दिन की सूक्ष्म गति के साथ नित्य परिवर्तित होता हुआ मैदान की अव्यक्त सत्ता का अगोचर रूप और सबके अन्त में पहाड़ियों घाटियों एवं उन रम्य स्थलों से परिश्रमी किसानों का रहस्यमय सम्बन्ध जहाँ कि वे रहते खाते और श्वास लेते हैं—आदि गोचर यथार्थ के गहीत तत्वों को सुकुमार भावना-सूत्र में ग्रथित करके उसने अपना कल्पना का प्रसार किया है।

'गोल आवर्तों एवं गड्ढों का धूमिल विस्तार उठकर सच्ची संवेदना में सन्ध्या की सजनता से एकरूप होने की इच्छा रखता हुआ सा प्रतीत होता है। नभ से उतरता हुआ अंधकार जिस तेजी से चारों ओर फैल रहा है—उसी गति से मैदान भी अपनी जल्दी उच्छ्वास फेंक रहा है। अब वह स्थान एक अन्धकार से भर गया है क्योंकि जब अन्य वस्तुएँ खोई सी उनींदी हो जाती हैं तो मैदान मन में सजग होकर कुछ सुनता-सा ज्ञात होता है। प्रत्येक रात्रि को उसकी दानवी आकृति कुछ सुनती सी नजर आती है, किन्तु उसे विभिन्न वस्तुओं को संशयात्मक परिस्थितियों से गुजरकर इस प्रकार अविचल रूप से प्रतीक्षा करते करते शताब्दियाँ बीत गई हैं। वह सिर्फ अन्तिम विपत्ति अर्थात् अपने सर्वनाश की बाट जोह रहा है। ईगडन मैदान के दृश्यों में रमा हुआ सौम्य प्रकाश समस्त वातावरण को अवसाद रहित चारुता, आडम्बरहीन प्रभाव, जागरूक चेतावनी और सरल गरिमा से भर रहा है।"
(दि रिटर्न ऑफ दि नेटिव' से)

("The sombre stretch of rounds and hollows seemed to rise and meet the evening gloom in pure sympathy, the heath exhaling darkness as rapidly as the heavens precipitated it.............. The place became full of a watchful intentness now; for when other things sank brooding to sleep, the heath appeared slowly to awake and listen. Every night its titanic form seemed to await something; but it had waited thus unmoved during so many centuries through the crises of so many things, that it could only be imagined to await one last crisis—the final overthrow. Twilight combined with the scenery of Egdon Heath to evolve a thing majestic without severity, impressive without showiness, emphatic in its admonitions, grand in its simplicity.")

हार्डी की प्रतिभा खुले मैदानों और प्रकृति की उन्मादक छाया से हल्के-गहरे रंगों को लेकर भीतर ही भीतर एक विचित्र परिपूर्णता से प्रेरित होती रही है। आत्म-विह्वलता में स्मृतियों के असंख्य टुकड़े जुड़ जुड़ कर उसके हृदय के कोने में घनीभूत होते रहे हैं और उसकी अपनी आंतरिक सजगता के कारण जब जब वास्तविक संसार एक स्वप्नमय धुंध में परिणत हुआ है, तब तब अवचेतन मन के भीतर घुमड़ने वाली नीरव निस्तब्धता साकार होकर उसकी कल्पना में जाग्रत हो उठी है। हार्डी ने जैसे जानबूझ करअपने अंतर्द्वन्द्वों को प्रकृति में आरोपित किया है।जब वह प्रसन्न होता है तो उसे सारा विश्व हंसता नज़र आता है और जब उसका मन क्षुब्ध होता है तो उसे अपने साथ सारा संसार रोता हुआ दीखता है।कभी उसका स्वर तीव्र हो जाता है, कभी अपनी रुद्ध-भावनाओं को प्रकृति में उन्मुक्त करके वह अपने अव्यवस्थित स्वप्नों को उसमें बिखरा हुआ पाता है,कहीं कहीं प्राकृतिक माधुरी के साथ उसकी दार्शनिक जिज्ञासा का ऐसा सुन्दर समन्वय हुआ है कि मूलतः दोनों को पृथक् करने वाला भाग्यवादी द्वन्द्व मिट जाता है और एक निश्चित् नियति की अवतारणा होती है।

"चारों ओर अंधकार एवं नीरवता का साम्राज्य था। उनके ऊपर प्राचीन, जर्जरित चेज़ वन के 'यू' और 'ओक' वृक्ष खड़े थे, जिनमें बसेरा लेनेवाली चिड़ियां अपनी अन्तिम झपकी लेती हुई ऊंघ रही थीं और उनके आस पास उछलते-कूदते खरगोश चुपके से आश्रय खोज रहे थे। किन्तु क्या कोई बता सकता है कि टैस का संरक्षक-देवता उस समय कहां था? उसके सरल विश्वास का निर्णायक प्रभु तब कहां चला गया था?"('टैस' से)

('Darkness and silence ruled everywhere around. Above them rose the primeval yews and oaks of The Chase, in which were poised gentle roosting birds in their last nap, and about them stole the hopping rabbits and hares. But, might some say, where was Tess's guardian angel? Where was the Providence of her simple faith?)

हार्डी की करुण भावनायें उसकी उदात्त कल्पना के साथ समन्वित होकर इस मनुष्य संसार में अपनी आन्तरिक सहानुभूति का प्रसार करती हैं। उसका आग्रह सूक्ष्मतम प्रकृति के मर्म को हृदयंगम करने की चेष्टा करता है। जिस प्रकार सर वाल्टर स्काट ने ट्वीड (Tweed) और मॉरिस ने टेम्स (Thames) के दृश्यों का चित्रण किया है उसी प्रकार हार्डी ने भी अपनी हृदयस्पर्शी शैली में सरल और सुरुचिपूर्ण पद्धति से वेसक्स (Wessex) के दृश्यों का सूक्ष्मांकन किया है जो अत्यन्त सजीव और प्रभावोत्पादक बन पड़ा है। हार्डी ने दृश्य-जगत के प्रति होने वाली संवेदनात्मक मानसिक प्रतिक्रियाओं को विशेषतया जीवन के घात प्रत्याघातों से प्रकृति के सूक्ष्म पहलुओं का सम्बन्ध दिखा कर अपनी व्यक्तिगत अनुभूतियों और रुचियों को निहित करके उसे पृथक व्यक्तित्व प्रदान किया है। वह जन-शून्य एकान्त वनों से अधिक आकर्षित होता है उसे समुद्र से प्रेम है किन्तु उसकी दृश्यगत विशेषताओं एवं आंतरिक विकारों से अनभिज्ञ होने के कारण वह उसके वर्णन में अधिक प्रवृत्त नहीं होता। वह व्यावहारिक बाह्य संसार से पृथक उन वीरान जंगलों और बीहड़ स्थलों के चित्रण में अधिक दिलचस्पी लेता है, जहाँ की प्राकृतिक शोभा और ऋतुओं के परिवर्तित रूप साधारण प्रेक्षकों की कुदृष्टि से अछूते रहते हैं। घाटियाँ, लहलहाते खेत, चरागाहें, बसन गाँव की छोटी छोटी उदास पहाड़ियाँ, उजड़े हुए शून्य टीले जिनके साथ दूर तक जुड़ी हुई ऊबड़-खाबड़ रोमन सड़कें क्षितिज से जा मिलती हैं और मैदान की विस्तृत सघनता जो सदियों की मनहूसियत में मनुष्यों तक को निगल जाती है तथा सृष्टि की दुर्बल बेबसी में अपनी कल्पना का रंग भर कर वह जीवन रस उड़ेलता रहा है और दम घुटते वातावरण में उन्मुक्त पंछी सा अपने अन्तरतम के करुण कोमल कण लुटाता रहा है—

"आकाश स्वच्छ था, आश्चर्यजनक स्वच्छ और उसमें चमकते हुए तारों की झलमलाहट शरीर की धड़कन सी ज्ञात होती थी, जिसमें सहज स्पंदन-गति से प्रकम्पन हो रहा था।'

'नवम्बर मास में शनिवार का मध्याह्न सान्ध्य वेला में परिणत होता जा रहा था और उस वृहद् भू प्रदेश का विस्तृत प्रसार, जो ईगडन मैदान कहलाता

था, क्षण-प्रतिक्षण धुधला पड़ता जा रहा था। ऊपर आकाश को आच्छन्न किए हुए श्वेत-सा थोया बादल एक तम्बू-सा लगता था, जिसके नीचे मैदान उसके फर्श की भांति बिछा हुआ था।

("The sky was clear—remarkably clear—and the twinkling of all the stars seemed to be but throbs of one body, timed by a common pulse."

"A Saturday afternoon in November was approaching the time of twilight, and the vast tract of enclosed wild known as Egdon Heath embrowned itself moment by moment. Overhead the hollow stretch of whitish cloud shutting out the sky was as a tent which had the whole heath for its floor.")

वस्तुतः हार्डी की रागात्मिका वृत्ति ने अन्तः प्रकृति को अपने बौद्धिक-आचारों से प्रभावित किया है। प्रकृति के उपेक्षित, निष्प्राण और विस्मृत स्थलों को उसने अपनी विदग्ध कल्पना और आंतरिक-प्रेरणा से अनुप्राणित करके चमका दिया है। ठीक ऐसी ही आत्मस्थता प्रसाद के प्रकृति-चित्रण मे भी द्रष्टव्य है, जो प्रकृति की अनेक अव्यवस्थाओं एवं बिखरे रूपों में व्यापक-चेतन की प्रतिष्ठा और नैसर्गिक आर्य्यत्व की गरिमा भर सकी है। उन्होंने अपने प्रयोगो के अनूठेपन से प्रकृति-चित्रण मे नया निखार भर दिया है और अनन्त दृश्यपटी पर अंकित चित्रो को अपने अन्तर की तन्मयता और मधुरिमा से ओतप्रोत करके संगीत-सुषमा से मुखर कर दिया है—

"विश्व के प्रत्येक कम्प में एक ताल है, प्रत्येक परमाणु के संयोग में एक सम है, प्रत्येक हरी हरी पत्ती के मिलन में एक लय है, पक्षियों की चहचह, कलकल, छलछल में रागिनी है। पारिजात का अपने सौरभ की तान में, दक्षिण-पवन में कम्प उत्पन्न करना, कलियों को चटकाकर, ताली बजा बजा कर, झूम झूम कर नाचना और गाना संसृति के सनातन संगीत की सूचना है।"

हार्डी की अपेक्षा प्रसाद की उदात्त-चेतना अधिक गत्यात्मक है। प्रकृति की विराट् क्रोड में उन्होंने अपनी अंतरग अनुभूतियों को साकार पाया है और प्रेरणाओ की शह पाकर सूक्ष्म चित्रण प्रक्रिया के साथ साथ अपने अन्तर्विकारों को ग्रथित करके दृश्य और द्रष्टा, आश्रय एव आलम्बन मे तादात्म्य स्थापित किया है। उन्होने अपने हृदय के सौरभ को प्रकृति के अंचल मे लहराते देखा है और प्रकृति की एकांत, व्यापक साधना मे जीवन का नया अर्थ खोजा है।

"अन्तरिक्ष विशाल में है मिल रही,
चन्द्रमा पीयूष वर्षा कर रहा,
दृष्टि-पथ में सृष्टि है आलोकमय,
विश्व-वैभव से भरा यह धन्य है।"

प्रसाद स्वभावतः [illegible] प्रकृति के दृश्य-अदृश्य सौन्दर्यालोक में ही उन्होंने जीवन के [illegible] दर्शन किया है। प्रकृति-सौन्दर्य से आकृष्ट होकर उसे अनेक कोणों से निरख [illegible] पर स्तब्ध मुग्ध हो उठे हैं, उसके वैविध्य में इतने रम गये कि उनकी प्रखर दृष्टि सूक्ष्मतम रहस्यों को भेद कर उसके छाया प्रकाश को ग्रहण करती है। अनन्त असीम के प्रसार में, वातायन के सौरभदग्ध उच्छ्वासों में, क्षितिज के धूम्रगगन छायालोक में, हरे भरे वनों, कुसुमित वल्लरियों, वन पवन, प्रभात, [illegible] कलकल छलछल करती सरिताओं और अदम्य मनों के दिगन्तव्यापी गंभीर आह्वान में उन्होंने अपनी गहनतम अव्यक्त अनुभूतियों को व्यंजित किया है। उनकी अन्तस्तम चेतना शून्य होते हुए भी विश्व के विराट रंगमंच पर अनेक खेल खेला करती है। जब अज्ञात अलक्ष्य ध्वनि उन्हें सत्य के लोक में वहन करके ले जाती है तो देश और काल की सीमाओं का अतिक्रमण करके दुनिया के बिखरे हुए वैभव नये रूप में उनके नेत्रों के समक्ष बिछ जाते हैं और उनका अतृप्त मन अपनी समस्त ऐहिक इच्छाओं को दूसरी ओर फेंक कर किसी अज्ञात लोक में उड़ चलने के लिए आकुल हो उठता है। दृश्य जगत के सूक्ष्मातिसूक्ष्म अज्ञात भावों का अर्थ न समझ सकने पर भी उनकी भावुकता मन को भाती है और अन्तश्चेतना से बाहरी चेतना एकरस होकर निर्भर संकेतों में व्यक्त हो उठती है।

अपने सुख दुख से पुलकित
यह मूर्त विश्व सचराचर,
चिति का विराट वपु मंगल
यह सत्य सतत चिर-सुन्दर।

आत्म-विस्मृति के कारण प्रसाद और हार्डी का मस्तिष्क विशृंखल सा लगता है। जीवन की लम्बी राह पर भटकते हुए उनके मन में जो जो विकल्प उठते हैं उनकी जीवन-दृष्टि आशा आकांक्षा और अन्तर्विकार तथा मानवीय-जीवन के प्रतिदिन और प्रतिपल के भीतरी और बाहरी संघर्ष संवेदनाएं आवेग प्रवेग अन्तर्व्यथा कसक और प्राणों की सिहरन सभी मानो प्रकृति में घुल कर उनकी मनोवृत्तियों का परिचय देते हैं। कहीं प्रकृति में जीवन की सत्य अनुभूतियों के उद्घाटन का आग्रह है और कहीं पात्रों के मनोरागों में वेदना से अत्यन्त करुणार्द्र हो उठे हैं। जैसे किसी दुःस्वप्न से जाग कर दिल अनायास ही दहल उठता है, उसी प्रकार महाविश्व के महत्वपूर्ण क्रिया चक्रों में जीवन की अविरत अस्थिरता, चांचल्य और व्यस्तता में वे कभी कभी चौंक पड़े हैं। जीवन के झंझा प्रवाह में अपनी उदात्त और गरिमामयी वेदना को भर कर इन दोनों ने विराट शक्तियों की झाँकी देखी है। उनकी दार्शनिक अभिरुचि आत्म विसर्जन और निर्मम भावना ने उनके अहं को

परास्त न करके और भी अधिक गरिमान्वित एव जीवन की अटूट साधना के क्रम मे परिणत कर दिया है।

नियतिवाद .

प्रसाद और हार्डी दोनो ही भाग्यवादी है। वातावरण, सस्कार, परिस्थितिया तथा उनकी अपनी दार्शनिक-प्रवृत्ति, निराशा, विरक्ति और निष्क्रियता ने उनमे विरोध-वितृष्णा एव मानसिक-असतोष भर दिया है। उन्होने सब कुछ भाग्य पर छोड दिया है और अज्ञात नियति की प्रेरणा से ही उनके समस्त कार्यो का सचालन होता है। प्रसाद लिखते है, **"नियति दुस्तर समु को पार करती है। चिरकाल के अतीत को वर्तमान् से क्षण भर में जोड़ देती है, और अपरिचित मानवता-सिन्धु में उसीसे परिचय करा देती है, जिससे जीवन की अग्रगामिनी धारा अपना पथ निर्दिष्ट करती है।"**

प्रसाद और हार्डी—दोनो के ही मत से मानवीय-इच्छायें अशक्त, निर्बल और अशकापूर्ण परिस्थितियो से त्रस्त है। नियति की विधायक शक्ति कहा कहा और किस किस रूप मे अपनी इच्छा चरितार्थ करती हुई अमृत को विष और विष को अमृत बना देती है—इसका निर्णय करना अत्यन्त कठिन है। मनुष्य के लाख प्रयत्न करने पर भी अनेक अप्रिय प्रसग उसके मार्ग के अवरोधक हो जाते है और वे किसी प्रकार भी टाले नही टलते। किसी भी कर्म के भौतिक पार्श्व अथवा उसकी रहस्यमय . अदृश्य सत्ता से टक्कर लेना असम्भव है, नियति जैसे दोनो के बीच मे मध्यस्थ का कार्य करती है। जिस सिद्धात और निश्चित् कर्म की अवतारणा मनुष्य के हित के लिए की जाती है, उसमे प्रतिकूल घटनाओ एव सघर्षमय जीवन की प्रति-क्रिया से विक्षेप और विघ्न हो जाता है।

हार्डी की प्रेरक-शक्ति और धारणा बडी गूढ है। कर्म के भोग और अधिकार की स्पृहा के ध्वस पर वह मानवसृष्टि के चेतन रागो की स्थापना मानता है। उसकी फिलॉसफी गहन-चिंतन, अंतर्जिज्ञासा और ठोस ज्ञान से पुष्ट होकर प्रकट हुई है। आरम्भ से ही उसके उपन्यासो के पात्र नियति के स्वीकार्य बंधन मे बंधे है। न जाने कब, कैसे और कहा से आकस्मिक घटनाओ के अंकुर फूट कर उन्हे अपने प्रवाह मे बहा ले जाते है और वे उसी की विशालता में अपने अस्तित्व को लय कर देते है। अदृष्ट की दुर्भेद्य सघनता उनके अतीत, वर्तमान् और भविष्य - को वातावरण की स्तब्ध छाया में अनायास आकर समेट लेती है और अपरिचित, अनागत घटना-चक्र उनकी स्वाभाविक इच्छाओ, लालसाओ और जीवन की समस्त कामनाओ को कुचल कर अवांच्छित, अनियन्त्रित, विवश व्यग्रता से भर देते है।

हार्डी की प्रत्येक कृति म जीवन-संघर्ष, आन्दोलन विलोडन और दयनीय मानवता के मार्मिक मथन का साक्षी है। उनके सभी पात्र-पात्री नियति के क्रीडा कन्दुक है। जीवन-आगार के रक्ताभ पट पर उल्लसित पवन की मधुर सिहरन जब किसी आगत सुख का आभास देती है,तभी नियति का निर्मम अट्टहास हहराता हुआ उस कोलाहल पूर्ण अकूल सागर में घनेरा लगाता है। न जाने कौन अपने अदृश्य हाथों से उनकी सारी खुशियों को झकझोर देता है और जीवन की साध,आह और हृदय की चिनगारियाँ छितरा छितरा कर उनके अन्तर्बाह्य को आच्छन्न कर देती है।

प्रारम्भ से ही हार्डी का दृढ़ धारणा है कि मनुष्य केवल कर्म के लिए है। कर्म उसके स्वभाव का अंग है और उसके बिना वह रह नहीं सकता। कर्म का चक्र निरंतर घूमता रहने पर भी उसका फल मनुष्य के हाथ में नहीं है। अज्ञान, भ्रम और मिथ्या दर्प के वशीभूत होकर वह समझता है कि कर्म करने वाला वह स्वयं ही है किन्तु वस्तुतः ऐसा समझना निरी विडम्बना है। कर्म चाहे छोटा हो अथवा बड़ा, मनुष्य के अधीन नहीं वरन् वह ही पूर्ण रूप से उसके अधीन है। हार्डी की प्रारम्भिक कृतियाँ डसपरेट रेमीडीज (Desperate Remedies),'दि हैंड आफ् एथल्बेर्टा (The Hand of Ethelberta), ए पेअर आफ ब्लू आइज (A Pair of Blue Eyes) और दि ट्रम्पेट मेजर' (The Trumpet Major) में इस विश्वास के अंकुर उभर आये है, किन्तु उसकी परवर्ती रचनाओं 'फार फ्रॉम दि मैडिंग क्राउड' (Far from the Madding Crowd), 'दि रिटर्न ऑफ् दि नेटिव' (The Return of the Native), दि मेयर आफ कैस्टरब्रिज' (The Mayor of Casterbridge), 'दि वुडलैण्डर्स' (The Woodlanders) टेस'(Tess)और जूड दि आब्सक्योर, (Jude the Obscure) में मानव और परा शक्ति का द्वन्द्व द्रष्टव्य है, मानो अदृष्ट लिपि के असीम आलोकों में उनकी समस्त क्रियायें और प्राणों का प्रश्नवाचक अस्तित्व निगड-निबद्ध है।

जीवन के अपराह्न-काल में वह नियति के क्रूर शासन को निरुपाय मानव के मूल चेतन स्रोतों से ग्रथित देखता है। मर्म-वेधक छलना और निष्ठुर-दंश उसके द्वारा सृष्ट पात्रों की प्रगति में अवरोध और बाधा उपस्थित करते है। उसे लगता है जैसे अज्ञात, अमानवीय आत्मा एक व्यंग भरी मुस्कान से निर्वाक्, अपलक उन्हें निहारती रहती है और वे करुणा, व्यथा ग्लानि और विवशता से भरे बिना विरोध किये उसका अनुधावन करते रहते है। मानवीय कर्मों का सतुलन उपस्थित

करने के लिए हार्डी ने दुष्कर्मों का प्रतिवाद किया है। सद्-असद् कर्मों के अनुसार उसने 'भाग्य' और 'संयोग' की मीमासा की है।

"हमारे कुकृत्य प्रतिकूल परिस्थिति को प्राप्त करने के लिये अतीत पृष्ठ-भूमि में छिपे पड़े नही रहते, वरन् फलप्रद पौधों की भांति पुष्ट होते और पुनः पनपते है, जब तक कि उन्हें समूल नष्ट करने के लिए उनके महत्त्वपूर्ण विनाशक तत्व ध्वस्त नहीं हो जाते।"

("Our evil actions do not remain isolated in the past, waiting only to be reversed; like locomotive plants they spread and re-root, till to destroy the original stem has no material effect in killing them.")

हार्डी के प्राय सभी उपन्यासो मे दुर्बल मानव दुर्दम्य शक्ति द्वारा कुचल दिये जाते है, कभी विषम, प्रतिरोधी प्राकृतिक साधनो द्वारा और कभी आकस्मिक घटनाओं के प्रत्याक्रमण द्वारा जो अनजाने ही उनकी प्रच्छन्न संकल्प-शक्ति और भीतरी प्रेरणाओ में अन्तर्हित होते है। भले ही हार्डी 'दु खवाद' (Fatalism) अथवा 'संकल्पवाद' (Determinism) का पोपक हो, वह अदृष्ट क्रूर सत्ता की अनिवार्य विभीपिका को स्वीकार करता है, उसके विना वह पुरुप अथवा नारी के अस्तित्व की कल्पना नही कर सकता। उसके मत से यदि विश्व मे कोई निर्णायक शक्ति न हो तो मानव के पशु-मस्तिष्क मे न्याय और सचाई के महत्व को जागरूक नही किया जा सकता। शून्य, वीरान पथ पर टैस के सरल सतीत्व को जब कुचला जाता है तो हार्डी लिखता है—

"इस सुंदर नारी-शरीर पर, जो महीन तंतुओं सा सुकोमल और बर्फ की श्वेताभा सा पावन था, यह नियति का क्रूर, विधायक ताण्डव क्यों हुआ? इस प्रकार अच्छे-बुरे का साथ प्राय. क्यों हो जाता है? अनमिल स्त्री-पुरुषों के जोड़े क्यों अनायास ही एक दूसरे का अपकार करने में प्रवृत होते है? सहस्रों वर्षों की दार्शनिक-विवेचना और अनुचिंतन भी इस सृष्टि के व्यतिक्रम के रहस्य को नहीं समझा सकी है। उस तात्कालिक अनाचार का कारण किसी पुरातन घटना के प्रतिशोध की प्रच्छन्न संभावना में निहित समझा जा सकता है। निःसंदेह, टैस दर्बीविल के किन्हीं पूर्वजो के सुसज्जित सवार ने यहां युद्ध से घर लौटते समय इससे भी अधिक नृशंस व्यवहार किन्ही भोली कृषक वालि-काओं से किया था। यद्यपि पूर्वजो के पापों का परिणाम उनकी संतति द्वारा भोग जाना नैतिक दृष्टि एवं धर्माचार्यों के अनुसार मान्य है, तथापि मानवीय-सिद्धान्त से यह घृणास्पद है और इससे परिस्थिति में कुछ सुधार नहीं होता।"

(Why it was that upon this beautiful feminine tissue sensitive ... as gossamer and practically blank as snow as yet there should have been traced such a coarse pattern as it was doomed to receive; why so often the coarse appropriates the finer thus, the wrong man the woman, the wrong woman the man, many thousand years of analytical philosophy have failed to explain to our sense of order. One may indeed, admit the possibility of a retribution lurking in the present catastrophe. Doubtless some of Tess d'Urberville's mailed ancestors rollicking home from a fray had dealt the same measure even more ruthlessly towards peasant girl of their time. But though to visit the sins of the fathers upon the children may be a morality good enough for divinities, it is scorned by average human nature and it therefore does not mend the matter.)

उपन्यास का उपसंहार करते हुए हार्डी लिखता है "न्याय किया गया और देवाधिपति ने टैस से अपना क्रीडा कौतुक समाप्त कर दिया। दर्बीविल के शूरवीर योद्धा और महिलाएं बिना कुछ जाने चुपचाप अपनी समाधि में सोते रहे।

(Justice was done, and the president of the Immortals had ended his sport with Tess. And the d'Urberville knights and dames slept on in their tombs unknowing.)

एक और स्थल पर हार्डी ने लिखा है, "कुछ निराशाएं हमें विचोड़ डालती हैं और कुछ ऐसा घाव बना जाती हैं, जिसका चिन्ह मृत्यु पर्यन्त नहीं मिटता। वे निराशाएं ऐसी तीव्र होती हैं कि कोई भी अनुकूल भावी उपचार उनको चोट कम नहीं कर सकता वरन् वे तो चिरंतन दुःख की छाप बनकर हमारे मस्तिष्क को आच्छन्न कर लेती हैं।"

("There are disappointments which wring us and there are those which inflict a wound whose mark we bear to our graves. Such are so keen that no future gratification of same desire can ever obliterate them, they become registered as a permanent loss of happiness.)

काल समुद्र की गंभीर हलचल और लालसाओं के थपेड़ों से उत्पादित मानव की चारित्रिक त्रुटियों से अवगत हार्डी सत्ता की अपेक्षा पापियों से अधिक प्रेम करता है। उसके उपन्यासों के कथानक साधारण होते हुए भी प्रेम, द्वेष, महत्त्वाकांक्षा, ज्ञान-पिपासा और अन्तर्द्वन्द्वों से आविर्भूत हुए हैं और मनोवैज्ञानिक बारीकियों से सुधारे-संवारे गये हैं। ज्यों ज्यों उसकी कलात्मक टेकनीक विकसित हुई है त्यों त्यों उसके उपन्यासों के विषय गंभीर उलझे हुए और अधिक चिन्तनीय होते गये हैं तथा मन के भीतरी सकल सूक्ष्म अनुभूतियों और इच्छा-अनिच्छाओं का द्वन्द्व अधिका-

धिक स्पष्ट होता गया है। इन्हीं इच्छाओ को प्रवर्तित करने वाली आकस्मिक घट-नायें उपन्यासो की स्वाभाविक प्रगति मे बाधा उपस्थित करती है, कभी कभी मानव-जीवन के स्वस्थ सम्बन्धो को विच्छिन्न करने के लिये घृणित, दुःखदाई संयोग बीच बीच मे आ धमकते है और तब ऐसा ज्ञात होता है मानों विराट् काल-चक्र को घुमाने वाली कोई अदृश्य महाशक्ति है, जो दार्शनिक-परिधान पहिने चुप-चाप मानव-जीवन की बागडोर आकर सम्हाल लेती है। मनुष्य मिथ्या दम्भ एव आत्म-वंचना के कारण इसकी अवहेलना करता है, किंतु उसके द्वारा अनजाने, असमय मे ही पीस दिया जाता है। हार्डी के उपन्यासो का मनहूस, विषादमय वातावरण भाग्य की नृशस प्रक्रियाओ का ही परिणाम है।

हार्डी की भांति प्रसाद के नाटको मे भी नियति के अदृष्ट प्रयोगो का निदर्शन है। मनुष्य के समस्त कार्य-व्यापार अदृष्ट की डोरी पर झूलते है। **"मनुष्य क्या है? प्रकृति का अनुचर और नियति का दास।"** अत्यन्त सावधान और जागरूक रहने पर भी आकस्मिक घटना-चक्र उन्हें आ दबोचते है। मनुष्य, जो कुछ चाहता है अथवा नही चाहता, उसका नियति पर कोई प्रभाव नही है। घटनाओं का क्रम बद-लना उसकी सामर्थ्य से परे है।

प्रसाद की बौद्धिक-चेतना, पुरातन-सस्कार और न्याय-बुद्धि ने उन्हे घोर भाग्यवादी बना दिया है। बौद्ध-दर्शन और निराशावाद ने भी उनके चितन और विचारधारा को प्रभावित किया है। वे लिखते है, **"समस्त आलोक, अंधकार और चैतन्य-शक्ति प्रभु की दी हुई है। मृत्यु के द्वारा वही उसे लौटा लेता है। जिस वस्तु को मनुष्य दे नहीं सकता, उसे ले लेने की स्पर्द्धा से बढ कर दूसरा दम्भ नहीं।"**

प्रसाद के अनुसार वैयक्तिक-पूर्णता पूर्णता नही है। कर्म के सिद्धात को स्वी-कार करके भी अदृष्ट को कैसे बाधा जा सकता है। नियति पाश है और मनुष्य की कमजोरियो के फंदे उसे और भी दृढ करते है। एक स्थल पर प्रसाद लिखते है,

"जीवन एक प्रश्न है और मरण है उसका अटल उत्तर।

जागरण का अर्थ है कर्मक्षेत्र में अवतीर्ण होना। और कर्मक्षेत्र क्या है? जीवन-संग्राम।

अधिक हर्ष, अधिक उन्नति के बाद ही अधिक दुःख और पतन की बारी आती है।"

मनुष्य दुर्बल होते हुए भी [illegible] है। उसके अहं पर जो कुछ है, जो सब लोहे-सी लालसाओं की मनमानी अपने मूर्तिमेय अन्धकार में उनकी धधकती लालसाओं को समेटे रखता है। नियति की दुस्तर रेखा लाँघ जाना नितान्त कठिन है। [illegible] के समक्ष [illegible] ही होगा। प्रसाद ने अपने सभी नाटकों और उपन्यासों में नियति के रहस्य का उद्घाटन किया है। 'तितली' में शैला नील-कोठी के प्रस्तर-खण्ड पर बैठ कर अज्ञात प्रेरणा पर आश्चर्य प्रकट करती है—

'शैला को दृढ़ विश्वास हो गया कि जिस पत्थर पर वह बैठी है, उसी पर उसकी माता जेन आकर बैठती थी। जिस दिन से उसे वाटसन और जेन का सम्बन्ध इस भूमि से विदित हुआ, उसी दिन से उसकी मानस-लहरियों में हलचल हुई। बाल्यकाल की सुनी हुई बातों ने उसे विश्वास दिलाया कि उसकी माता जेन ने अपने जीवन के सुखी दिनों को यहीं बिताया है। अब सन्देह का कोई कारण नहीं रहा। अज्ञात नियति की प्रेरणा उसे किस सूत्र में यहाँ खींच लाई है, यही उसके हृदय का प्रश्न था।'

प्रसाद के उपन्यास और नाटकों के पात्र-पात्री जब अपनी सफलताओं पर फूल जाते हैं तभी नियति का क्रूर हाथ उनकी गर्दन आ दबोचता है। प्रसाद लिखते हैं—

'सौभाग्य और दुर्भाग्य मनुष्य की दुर्बलता के भय है। अभावमयी लघुता में मनुष्य अपने को महत्त्वपूर्ण दिखाने का अभिनय न करे तो क्या ही अच्छा हो?

विधान की स्याही का एक बिंदु गिर कर भाग्य लिपि पर कालिमा चढ़ा देता है।

कहना न होगा कि प्रसाद और हार्डी दोनों ही नियति के द्वार पर मनुष्यता को सदैव कसते रहे हैं। अदृष्ट के प्रति उनकी अवनिरोध की भावना ही उन्हें धकेल कर आगे बढ़ाती रही है और वे अन्धकार में टटोलते हुए की भाँति अज्ञात प्रकाश छाया की छटपटाहट एवं भाग्यवाद की कुहेलिका में यत्र-तत्र अपने आपको लय करते रहे हैं।